योगिराजमत्स्येन्द्रनाथ-प्रणीतः

कौलज्ञान निर्णयः



हिन्दी व्याख्याकारः

डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

(प्रथम खण्डः)

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

बिठ्ठलदास संस्कृत सीरीज

१७

***

योगिराजमत्स्येन्द्रनाथ-प्रणीतः

कौलज्ञान निर्णयः

(मत्स्येन्द्रनाथगोरक्षनाथ-परिचय-दृष्टिसमन्वितः
'सरोजिनी' व्याख्या संवलितश्च)

हिन्दी व्याख्याकारः

डा० श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

एम. ए., एम. एड., व्याकरणाचार्य
पी-एच्. डी., डी. लिट्.
(उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी के 'शङ्कर' एवं 'विविध'
पुरस्कारों से सम्मानित एवं पुरस्कृत)

(प्रथम खण्डः)



चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि०सं० २०६६, सन् २००९

ISBN : 978-81-218-0271-7

के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० ११२८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३५०२०

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : (आफिस) (०५४२) २३३३४५८
(आवास) (०५४२) २३३५०२०, २३३४०३२
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice@satyam.net.in

BITTHALDAS SANSKRIT STUDIES
17
****

KAULAJÑANA-NIRṆAYA

OF

Matsyendranath

Edited with an Exhaustive Introduction and with Commentary 'Sarojini'

Edited and Translated by

Dr. Shyamakant Dwivedi

M.A., M.Ed., Ph.D., D.Litt.

Vyakarnacharya

(Awarded by 'Sanskrit Sansthanam' Of U. P. Govt.
With 'Shankar' And 'Vividha' Samman)



CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY
VARANASI

Publisher : Chowkhamba Krishnadas Academy, Varanasi
Printer : Chowkhamba Press, Varanasi

ISBN : 978-81-218-0271-7

Oriental Publishers & Distributors
K. 37/118, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1118, Varanasi- 221001
(INDIA)
Phone : (0542) 2335020

Also can be had from :
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
Publishers and Oriental and Foreign Book-sellers
K . 37/99, Gopal Mandir Lane
At the North Gate of Gopal Mandir
Near Golghar (Maidagin)
Post Box No. 1008, Varanasi- 221001 (India)
Phone { Office : (0542) 2333458
Resi. : (0542) 2334032, 2335020
Fax : 0542-2333458
e-mail : cssoffice@satyam.net.in

दो शब्द

नाथ-सम्प्रदाय एक ऐसा गंगा-यमुनी संगम है जहाँ आकर दो नदियाँ परस्पर मिलकर एक नए तीर्थ का निर्माण करती हैं। इनमें एक नदी तो योग की है और दूसरी तंत्र की है। इसमें जो तंत्र की नदी है उसी का जलामृत लेकर मत्स्येन्द्रनाथ ने 'कौलज्ञान निर्णय' का निर्माण किया है।

मत्स्येन्द्रनाथी नाथ-पंथ की मन्दाकिनी[1] के जो दो तट हैं उनमें एक है योग साधना का तो दूसरा है तंत्र-साधना का। योग-साधना का सम्बन्ध[2] 'शिव' से है तो तंत्र-साधना का 'शक्ति' से। यद्यपि शैव एवं शाक्त दो भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय हैं और उनके उपास्य (इष्ट) देवता भी भिन्न हैं और क्रमशः वे 'शिव' एवं 'शक्ति' हैं तथापि नाथ-पन्थ में दोनों की उपासना उसी प्रकार एक साथ प्रचलित है जैसे काश्मीर के शैवों में। काश्मीरी शैव तांत्रिकों में **'प्रत्यभिज्ञा सम्प्रदाय'** के अनुयायी शिवोपासना करते हैं तो **'स्पन्द सम्प्रदाय'** के अनुयायी शक्ति की उपासना। तथापि वे तत्त्वतः शिव और शक्ति को अभिन्न मानते हैं।

नाथ-सम्प्रदाय में जो तांत्रिक साधना का संचार है उसका सम्बंध मात्र शाक्त तांत्रिकों की 'कौलधारा' से है। शाक्त तंत्र की साधना (१) कौलमार्ग, (२) समय मार्ग एवं (३) मिश्रमार्ग तीनों मार्गों द्वारा की जाती है, किन्तु मत्स्येन्द्रनाथ ने शाक्त साधना की कौल धारा को अङ्गीकृत किया था। अपने द्वारा आत्मीकृत तंत्र की इसी कौलधारा की नींव पर ही उन्होंने 'कौलज्ञाननिर्णय' का भवन निर्मित किया है।

'कौलज्ञाननिर्णय' (इस समय) प्रकाशनाभाव के कारण कहीं से भी प्राप्त नहीं हो पा रही है। अतः इसकी आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी के माननीय प्रकाशक ने इसे प्रकाशित करने की जो सहमति व्यक्त की उसके लिए मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

१५-७-२००८

श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

जमुआ. पो. वैढ़न, सीधी मध्यप्रदेश

मो. ०९८२६३०७०१७

---

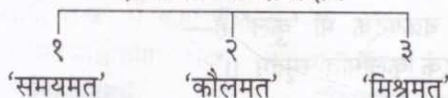
१. शाक्त दर्शनम् (१८।४।२४), २. शाक्तदर्शनम् ।

प्रस्तावना

योगीश्वर मत्स्येन्द्रनाथ तांत्रिक योगी थे। योगियों के मुख्यत: तीन वर्ग हैं— १. पातञ्जल योग के अनुयायियों का वर्ग, २. तांत्रिक योग के अनुयायियों का वर्ग और ३. जैन-बौद्ध आदि मतों के योगानुयायियों का वर्ग।

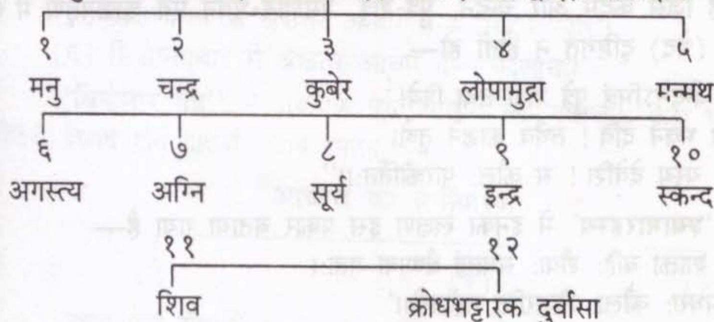
नाथ-सम्प्रदाय का योग पातञ्जल योग का अनुवर्ती योग नहीं है। यह तांत्रिकों के योग का अनुवर्ती है। इस पर जैन-बौद्ध योग का प्रभाव नगण्य है। तांत्रिक शाक्तमत, तांत्रिक शैवमत और काश्मीरी शैव मत (त्रिकमत) इन तीनों मतों का नाथमत पर प्रभाव है।

शाक्तमत के सम्प्रदाय



'यद्वा समयमतं कौलमतं मिश्रमतं चेति विद्योपास्तौ मतत्रयम्। शुकवसिष्ठादि संहितापंचकोक्तं वैदिकमार्ग करम्बितमाद्यम् । चन्द्रकुलादितन्त्राष्टकोक्तं तु चरमम् । कुलसमयोभयानुसारित्वात् । एतद्भिन्न तन्त्रोदितं **'कौलमार्गम्'**। कौलैर्मृग्यत् इत्यर्थे कर्मणि घञ्। 'स्व स्व वंशपरम्परा-प्राप्तो मार्ग: कुलसंबंधित्वात् कौल:।।'[१]

त्रिपुरा सम्प्रदाय की श्रीविद्या (शाक्तमत) के द्वादश सम्प्रदाय



श्री विद्या के १२ सम्प्रदाय

'मनुश्चन्द्र: कुबेरश्च लोपामुद्रा च मन्मथ:।
अगस्तिरग्नि: सूर्यश्च इन्द्र: स्कन्द: शिवस्तथा।
क्रोधभट्टारको देव्या द्वादशामी उपासका।।

यद्यपि नाथों ने शाक्तमत की 'श्रीविद्या' एवं 'दशमहाविद्या' या 'त्रिपुरासम्प्रदाय' की स्पष्टत: अनुवर्तिता तो नहीं की किन्तु शाक्तमत के 'कौलमार्ग' एवं 'समय-मार्ग'

१. भास्करराय: 'सौभाग्य भास्कर' भाष्य।

का अनुवर्तन अवश्य किया और इसी कारण मत्स्येन्द्रनाथ के दर्शन पर कौलमत एवं त्रिपुरोपासना का प्रभाव दृष्टिगत होता है।

'कुल' क्या है? भास्करराय कहते हैं—

(१) 'कुः पृथ्वीतत्त्वं लीयते यत्र तत्कुलमाधारचक्रं।

(२) 'तत्सम्बंधाल्लक्षणया सुषुम्णा मार्गोऽपि।

(३) 'अतः सहस्रारात्स्रवदमृतं कुलामृतम् ॥

'कुल'—(१) आधार चक्र (२) सुषुम्णा मार्ग।

'कुलं' सजातीय समूहः। स चैकज्ञातविषयत्वरूप साजात्यापन्न 'ज्ञातृ' 'ज्ञेय' 'ज्ञान' रूप त्रयात्मकः।[१]

मूलाधारादिक चक्रषट्क भी 'कुल' हैं—

'मूलाधारादिकं चक्रषट्कं कुलमिति स्मृतम् ॥'

'कौल' कौन है? जो 'कुल' (कुण्डलिनी = "कु = पृथ्वीतत्वात्मक मूलाधार चक्र में। "ल" = लीन। (अर्थात् परा शक्ति कुण्डलिनी) को मूलाधार चक्र से ऊपर उठाकर सहस्रारचक्रस्थ 'अकुल' (परात्पर शिव। परमशिव) से मिला दे—('कुल' एवं 'अकुल' में सामरस्य स्थापित कर दे) उसे ही 'कौल' कहते हैं।

'भावचूड़ामणि' में समत्वयोगी को 'कौल' की आख्या दी गई है। यह वह योगी है जिसे कर्दम और चन्दन, पुत्र-शत्रु, श्मशान-भवन एवं काञ्चनतृण में कोई भिन्नता (भेद) दृष्टिगत न होती हो—

'कर्दमे चन्दनेऽभिन्नं पुत्रे शत्रौ तथा प्रिये।
श्मशाने भवने देवि! तथैव काञ्चने तृणे।
न भेदो यस्य देवेशि! स कौलः परिकीर्तितः॥"

'श्यामारहस्य' में इनका लक्षण इस प्रकार बताया गया है—

'अन्तः शाक्ता बहिः शैवाः सभायां वैष्णवा मताः।
नानारूपधराः कौलाः विचरन्ति महीतले॥'

'भावरहस्य' में कहा गया है कि 'कुल' का अर्थ है कुण्डलिनी एवं 'अकुल' का अर्थ है शिव। वह कुलीन साधक जो दोनों को परमतत्त्व के रूप में स्वीकार करता है वह अत्याश्रमी साधक ही कौल है—

'कुलं कुण्डलिनी ज्ञेया महाशक्तिस्वरूपिणी।
अकुलन्तु शिवः प्रोक्तः शुद्धसत्वमयो विभुः।

---

१. सौभाग्य भास्करः 'साजात्यतत्समुदाय प्रतिपादकं शास्त्रमपि कुलम् (तथा च कल्पसूत्रे प्रयोगः) : सौ० भास्कर।

तयोस्तु परमं तत्त्वं यो वै जानाति साधकः।
कुलीनः परमः सोऽपि वर्णभेद-विवर्जितः।।

अन्यत्र यह भी कहा गया है—

'क्वचित् शिष्टः क्वचित् भ्रष्टः क्वचिद् भूतपिशाचवत्।
नानावेषधराः कौलाः विचरन्ति महीतले।।'

'कौलाचार' क्या है? तांत्रिकों ने सात आचारों का उल्लेख किया है, उनमें से एक आचार 'कौलाचार' भी है जो कि व्यावहारिक अद्वैतवाद है—ज्ञानियों का सैद्धान्तिक अद्वैतवाद नहीं। सप्ताचारों में से ही एक आचार 'कौलाचार' है।

'सप्ताचार' कौन से हैं?

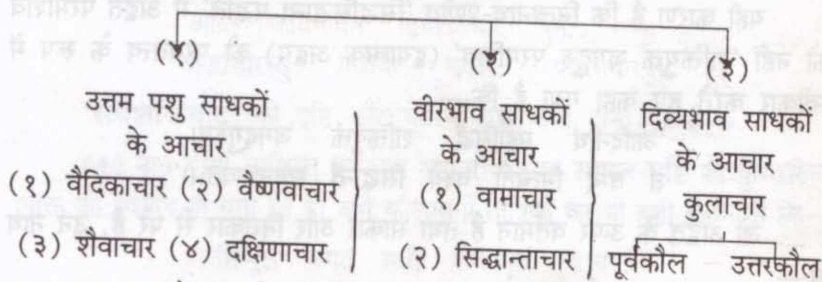
'कौलावली तन्त्र' में कहा गया है—

'सर्वेभ्यश्चोत्तमा वेदा, वेदेभ्यो वैष्णवं मतम्।
वैष्णवादुत्तमं शैवं, शैवाद्दाक्षिण्यमुत्तमम्।
सिद्धान्तादुत्तमं कौलं, कौलात्परतरं नहि।।'

(१) श्रेष्टतम आचार है—'वेदाचार'।
(२) वेदाचार से श्रेष्ठतर आचार है—'वैष्णवाचार'।
(३) वैष्णवाचार से श्रेष्ठतर आचार है—'शैवाचार'।
(४) शैवाचार से श्रेष्ठतर आचार है—'दक्षिणाचार'।
(५) दक्षिणाचार से श्रेष्ठतर आचार है—'सिद्धान्ताचार'।
(६) सिद्धान्ताचार से श्रेष्ठतर आचार है—'कौलाचार'।

''विश्वसार तंत्र'' में प्राथमिक चार आचारों को 'पश्वाचार' कहा गया है—
'वैदिकं वैष्णवं शैवं दक्षिणं पाशवं स्मृतम् ।'

आचारों का वर्गीकरण



'वैदिकं वैष्णवं शैवं दक्षिणं पाशवं स्मृतम्।
सिद्धान्तवामे वीरे तु दिव्यं सत्कौलमुच्यते।।''

कौलाचार का महत्व—जब ज्ञान की मथानी से वेद एवं आगम के समुद्र को मथा गया, तब उससे जो सार अंश उद्भूत हुआ उसे ही 'कौलाचार' कहते हैं—

'मथित्वा ज्ञानदण्डेन वेदागम-महोदधिम्।
सारमेतन्महादेवि ! 'कौलाचारं' प्रकल्पितम्।।'

मत्स्येन्द्रनाथ और गोरक्षनाथ के दर्शन में जिस द्वैताद्वैतविर्जित मत (द्वैताद्वैतविलक्षणवाद) को अंगीकृत किया गया है, वह नाथों की मौलिक देन या नव्य स्थापना नहीं थी प्रत्युत् वह उनके पूर्ववर्ती कौल तांत्रिकों की दृष्टि है। 'कुलार्णवतंत्र' में भी कहा गया है—

'अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे।
मम तत्त्वं विजान्तो द्वैताद्वैतविवर्जितम्।।'

—कुलार्णव तन्त्र

'गोरक्षसिद्धान्त संग्रह' में भी यही बात कही गई है—

'यद् द्वैताद्वैतविवर्जितं पदं निश्चलं दृश्यते तदेव सत्यमित्यभ्युपगमिष्यामः।।'

'गोरक्षोपनिषद्' में कहा गया है कि वेदान्तियों का परमसत्य भले ही अद्वैत हो, किन्तु नाथ सम्प्रदाय का परम तत्त्व तो उससे भी ऊपर है क्योंकि—

'अद्वैतोपरि सदानन्ददेवता।'

इसीलिए 'अवधूतगीता' में कहा गया है कि—

'अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे।
सम तत्त्वं न विन्दन्ति द्वैताद्वैतविलक्षणम् ।।'

ऐसा क्यों? नाथ योगी कहता है—

यदि सर्वगतो देवः स्थिरः पूर्णो निरन्तरः।
अहो माया महामोहो द्वैताद्वैतविकल्पना।।[१]

यही कारण है कि नित्यनाथ-प्रणीत 'सिद्धसिद्धान्त पद्धति' में अद्वैत परमशिव को नहीं 'शक्तियुक्त जगद्गुरु परमशिव' (द्वयात्मक अद्वय) को परमतत्त्व के रूप में स्वीकार करते हुए कहा गया है कि—

'आदिनाथं महासिद्धं शक्तियुक्तं जगद्गुरुम्।
तं वन्दे नित्यतो वक्ष्ये सिद्धान्तं स्वानुभावतः।।'

जो अद्वैत के ऊपर वर्तमान है तथा साकार और निराकार से परे है, उन नाथ से—

(१) निराकार ज्योतिस्वरूप नाथ उत्पन्न हुए।

(२) उनसे साकारनाथ उत्पन्न हुए।

---

१. अवधूत गीता (१/३६, ६१)

(३) उनकी इच्छा से सदाशिव भैरव उत्पन्न हुए।

(४) उन्हीं से भैरवी शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ।

(५) नाथ से दो प्रकार की सृष्टि उत्पन्न हुई।

(क) नादरूपा सृष्टि (शिष्य क्रम), (ख) बिन्दुरूपा सृष्टि (पुत्र-क्रम)

नाथों का आदर्श अद्वैत से भी अतीत है—

'परमावस्थायां भेदाभेदपरे द्वैताद्वैतपरे न कोऽप्ययं लोको न कोऽपि परो लोकोऽयं तु लोकोऽयं तु तेषां परमसिद्धान्त इति।।'[१]

यह आदर्श काश्मीरी तांत्रिक शैवों का है जो कि 'द्वयात्मक अद्वयवाद' है और जिसे कौलमार्ग में (यथा 'कुलार्णव तंत्र' में) स्वीकार किया है—

कौलमत में 'योगभोगसाहचर्यवाद' भी स्वकृत है—

'योगी चेन्नैव भोगी स्याद् , भोगी चेन्नैव योगवित्।
योगभोगात्मकं कौलं तस्मात् सर्वाधिक: प्रिये।।'

इसी कौलसाधना में निरत होकर मत्स्येन्द्रनाथ कदली वन में नारियों के मध्य साधना कर रहे थे।

मत्स्येन्द्रनाथ भी जीवन्मुक्ति को आदर्श मानते थे और कौलतांत्रिक भी—

'जीवन्मुक्ति सुखोपायं कुलशास्त्रेषु गोपितम् ।।' —(कुलार्णव तन्त्र)

कौलाचार के दो प्रकार हैं—१. आर्द्र , २. शुष्क।

(१) आर्द्र कौलाचार—पञ्चमकार-समन्वित कौलाचार।

(२) शुष्क कौलाचार—पञ्चमकार-रहित कौलाचार।

'आर्द्र-शुष्कविभागेन द्विधाऽऽचारं पुन: सृणु।
आर्द्राचारस्तु विज्ञेयो मकारै: पञ्चभिर्यत:।।'

'सर्वशक्तिवाद' की दृष्टि कौलाचारियों एवं नाथों दोनों की है—

(१) नाथ योगी 'सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता' कहकर समस्त सृष्टि को कुण्डलिनी शक्ति का स्वरूप ही बता रहे हैं। वहीं कौलमार्गी तांत्रिकों का भी यही कहना है कि—

'शक्तिमूलं जगत् सर्वं, शक्तिमूलं परन्तप:।
शक्तिमाश्रित्य निवसेद, यत्र कुत्राश्रमे वसन् ।।'[२]

---

१. गोरक्षसिद्धान्त संग्रह।

२. कुलचूड़ामणि।

योग एवं भोग में भिन्नता तो पशुओं की दृष्टि में होती है, नाथों एवं कौलों की दृष्टि में नहीं। इसी कारण 'वज्रोली' 'सहजोली' 'अमरोली' 'लता साधना' आदि सारी क्रियायें कौलतंत्र में भी स्वीकृत हैं और मत्स्येन्द्र की कौल-साधना में भी। कौलतंत्र में भोग ही मोक्ष एवं पाप ही पुण्य बन जाता है—

'भोगो योगायते साक्षात् पातकं सुकृतायते॥'

इतना ही नहीं नरक का द्वार यह संसार भी मोक्ष बन जाता है—

'मोक्षायते च संसारः कुलधर्मे कुलेश्वरि।'[१]

मत्स्येन्द्रनाथ तांत्रिक योगी थे। तंत्र ग्रंथों में चार खण्ड पाये जाते हैं—(१) ज्ञानखण्ड, (२) योगखण्ड, (३) क्रियाखण्ड, (४) चर्याखण्ड। नाथों की तांत्रिक साधना में 'क्रियाखण्ड' का अभाव है, किन्तु 'ज्ञानखण्ड', 'योगखण्ड' एवं 'चर्याखण्ड' अवश्य पाया जाता है।

आचार्य लक्ष्मीधर ने 'लक्ष्मीधरा' में कौल मार्ग के जिस सर्वाङ्गीण एवं व्यापक स्वरूप का निदर्शन किया है, उस प्रकार का व्यापक एवं सर्वाङ्गीण विवेचन 'कौलज्ञान-निर्णय' में नहीं पाया जाता तथापि कौल-साधना पर प्रकाश तो डाला ही गया है।

'कौलज्ञाननिर्णय' में चौबीस (२४) पटल हैं।

सृष्टि प्रलय की प्रक्रिया—इस ग्रंथ का आरंभ (प्रथम पटल) तत्त्वों की सृष्टि के वर्णन के साथ हुआ है और इसमें कहा गया है कि अंगुष्ठ के नखाग्र से तत्त्वसन्तति का उदय हुआ है और ज्ञान के अष्टादश भेद हैं। यही सृष्टि-क्रम है—

'मूलाङ्गुष्ठनखाग्रञ्च एते तत्त्वसन्ततिः।
अष्टादशविधं देवि! ज्ञानञ्च कुलगोचरे।
कथितं सृष्टिसंयोगं यथा तथा न भैरवि॥'

उक्त कथन के पूर्व भैरव ने पंचाग्नि एवं सृष्टि-क्रम को समझाया था और बाद में प्रलय-क्रम को। नखाग्र में 'कालाग्निरुद्र' स्थित हैं। जब यह ऊपर की ओर उठता है तब प्रलय का आरंभ होता है। तत्त्व शरीर के मध्य में स्थित है। प्रलय-क्रम में सारे पदार्थ एवं सारी सत्तायें शक्ति में लयीभूत हो जाती हैं—'संलीनं लयञ्च शक्तिगोचरे।'' **'शक्ति'** शिव में लीन हो जाती है। **'शिव'** क्रिया में लयीभूत हो जाते हैं। 'क्रिया' ज्ञान में संलीन हो जाती है। **'ज्ञान'** 'इच्छा' में लयीभूत हो जाता है। **'इच्छा'** परमा शक्ति (पर शिव के तेज) में लीन हो जाती है—

---

१. कुल

'शिवमध्ये गता शक्तिः क्रियामध्यस्थितः शिवः।
ज्ञानमध्ये क्रिया लीना क्रिया लीयति इच्छया।
इच्छाशक्तिर्लयं याति यत्र तेजः परः शिवः।।

इसके बाद भगवान् भैरव यह बताते हैं कि भुक्ति से मुक्ति श्रेष्ठतर है—

'अधस्था संस्थिता भुक्तिः ऊर्ध्वं मुक्तिर्वरानने।।'

भैरव यह भी कहते हैं कि मैंने सृष्टिसंहारन्याय के द्वारा 'कुलाधार' का वर्णन किया है।

शरीर में चतुष्पत्र, अष्टार, द्वादशार, पञ्चार, षोडशार, चतुःषष्टिदल,शतपत्र, सहस्रदल, कोटिपत्र, अर्द्धकोटिसमायुक्त, कोटित्रयसमन्वित, कर्णिकाकेशरयुक्त पद्म स्थित हैं।

'इच्छासृष्टिवाद' का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि जो व्यापक, नित्योदित, अखण्डित, स्वतंत्र एवं अचल एवं सर्वव्यापी निरञ्जन है, उसकी इच्छा से ही सृष्टि-लय दोनों होते हैं—

'तस्येच्छया भवेत् सृष्टिर्लयन्तत्रैव गच्छति।।'

समस्त सृष्टि का लय 'लिङ्ग' में हो जाता है—

'तेन लिङ्गन्तु विख्यातं यत्र लीनं चराचरम् ।।'[१]

बिन्दुसृष्टिवाद—ब्रह्मा, देवतागण, असुर, तपोधन, यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध, तृण, गुल्म से चींटी पर्यन्त जीव एवं ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि सभी स्थावर जंगम (सभी) 'बिन्दु' से उत्पन्न होते हैं—

'निष्क्रान्ता बिन्दुमध्ये तु लौलीभूतन्तु तत्समम् ।।'

लिङ्ग की श्रेष्ठता—लिंग से ही समस्त विश्व की सृष्टि होती है और उसी में सभी का लय हो जाता है। अतः इस लिंग-ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है—

'सृष्टिसंहारकर्तारं तल्लिंगं सिद्धपूजितम्।
'एतल्लिंगवरं ज्ञात्वा दृष्ट्वा मोक्षस्य भाजनः।।'[२]

लिङ्ग-पूजा का विधान—लिंग की पूजा मानस पुष्पों, सुगन्ध, धूप-दीप आदिसे करनी चाहिए। इसमें पूजा के पुष्प इस प्रकार हैं—

प्रथम पुष्प—अहिंसा, द्वितीय—इन्द्रिय-निग्रह, तृतीय—दया, चतुर्थ—भाव, पंचम—क्षमा, षष्ठ—क्रोधराहित्य, सप्तम—ध्यान, अष्टम—ज्ञान पुष्प। इस प्रकार—

---

१. कौलज्ञाननिर्णय (३।१०),
२. कौलज्ञाननिर्णय (३।२१-२२)

'एतत् पुष्पविधिं ज्ञात्वा अर्चयेल्लिंगमानसम् ।'[१]

इस देहलिङ्ग के अर्चन से भुक्तिमुक्ति दोनों प्राप्त होती है।[२]

इसे ही 'कौलिक देह लिङ्ग' कहा जाता है जिसके पूजन से भुक्ति-मुक्ति, सिद्धि एवं आत्मसंवित्ति की प्राप्ति होती है।[३]

चतुर्थ पटल में भगवती ने निग्रहानुग्रह, क्रामणहरण, प्रतिमा-जल्पन, घट-पाषाणस्फोटन आदि की विधि पूछी है। भैरव ने बताया है कि सबसे पहले साधक को 'कुलपिण्ड' का निर्माण करना चाहिए। इसे नाड़ियों से निर्मित करना चाहिए। यह पिण्ड 'विद्यामंत्र' से निर्मित होता है। यह दिव्य है और भुक्ति-मुक्ति दोनों का प्रदाता है। साधक को प्रत्येक नाड़ी के नीचे-ऊपर एक दीपशिखा जलाकर 'वं' को देखते हुए उसका उच्चारण करना चाहिए। इस 'वं' को पिघले हुए सोने के रंग का बना हुआ ध्यान में लाना चाहिए। इससे साधक किसी भी पशु या अन्य देह में प्रविष्ट हो सकता है।

आगे भैरव, भूत एवं भविष्य के दर्शन की प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हैं। इसी समय भैरव मारण, मोहन, उच्चाटन, स्तंभन, शान्तिक, पौष्टिक, आकर्षण एवं वशीकरण सिद्धि की विधि पर भी प्रकाश डालते हैं।

गोपनीयतावाद—यह भी कहा गया है कि—

'गोपितव्यं प्रयत्नेन दुष्टानां भक्तिवर्जितम्।
न देयं भक्तिहीनस्य कौलिकीं सिद्धिमिच्छताम्॥'

ज्ञानाभ्यास एवं ध्यानाभ्यास का महत्व—ज्ञानोदय एवं ध्यानाभ्यास के द्वारा कोई भी साधक सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्त होकर समस्त समीहितार्थ प्राप्त कर सकता है।[४]

आगे मत्स्येन्द्रनाथ ने जरा-मृत्यु पर विजय की विधि बतायी है।[५] प्रकिया यह है कि व्यक्ति को कल्पना करनी चाहिए कि सामने क्षीरसमुद्र है और उसके मध्य १०० करोड़ दलों वाला एक श्वेत कमल है और मैं उसमें श्वेत वस्त्र एवं श्वेत आभूषण पहने हुए स्थित हूँ। साधक को इस कमल से अपने को अभिन्न भी देखने का प्रयास करना चाहिए। ऐसे ध्यान से साधक सारे रोगों से मुक्त हो जाता है। साधक रोग, ज्वर, बंधन एवं मृत्यु सभी से मुक्त हो जाता है।[६]

---

१. कौलज्ञाननिर्णय (३।२४-२६)
२. कौलज्ञाननिर्णय (२७)
३. कौलज्ञान निर्णय (३।२७-२८)
४. कौलज्ञाननिर्णय (५।२-३)
५. कौलज्ञाननिर्णय (५।७)
६. कौ० ज्ञा० नि० (५।८-१०)

मृत्युञ्जयत्व-प्राप्ति की द्वितीय विधि—मत्स्येन्द्रनाथ कहते हैं कि यदि साधक सहस्रारस्थ (बैन्दवस्थानीय) चन्द्रमा का ध्यान करता हुआ और यह ध्यान करता हुआ कि उसकी मनतरंग चन्द्रमा की शीतल किरणों से पूर्णतः सींची (भींगी हुई) हुई है तो वह सारे ज्वरों एवं यहाँ तक कि मृत्यु से भी मुक्त हो जाता है। इसका अभ्यास कम से कम एक वर्ष करना चाहिए। सम्पूर्ण रूप से पूर्ण चन्द्रमा का ध्यान करने से साधक जराव्याधि से मुक्त हो जाता है[१]—

'ध्यायमानमिदं देवि ! जराव्याधिर्विनश्यति।'

यदि इस चन्द्रमा को (१) नाभि, (२) हृदय एवं (३) मूर्द्धा पर स्थित देखकर इसका ध्यान एक वर्ष तक किया जाय तो भी वह जरामरण से मुक्त हो जाता है।

यदि गोक्षीरधवल एवं सहस्रदलशोभाढ्य श्वेत पङ्कज का ध्यान किया जाय तथा यह भी ध्यान किया जाय कि अधोवर्ती समस्त चक्र ऊर्ध्ववर्ती चक्र के अमृत से सिञ्चित हो रहे हैं और यह भी ध्यान किया जाय कि मेरा शरीर भी अमृत के छिड़काव से सिञ्चित हो रहा है तो वृद्धावस्था एवं सारे रोगों से मुक्त हो जाता है।[२]

अन्य प्रक्रिया यह है कि साधक को यह कल्पना (ध्यान) करनी चाहिए कि "१६ दलों का एक कमल है जो कि बर्फ के समान सफेद है और उसका प्रत्येक दल शिवा एवं आद्या शक्ति के प्रकाश-तरंग से सुशोभित है और मेरा शरीर अमृतप्रवाहों से संसिक्त है। ये अमृत-प्रवाह मानों हिमवत श्वेतदुग्ध धारायें हैं जो कि सारे शरीर को आसिञ्चित कर रही हैं।" इस ध्यान से भी साधक जरा-मरण-व्याधि से मुक्त हो सकता है। शिवतुल्यस्वतंत्र एवं स्वेच्छागति वाला हो सकता है।[३]

देवी षष्ठ पटल में 'जीव' के विषय में प्रश्न करती हैं। सप्तम पटल में तत्त्वत्रय के विषय में प्रश्न करती हैं और जरा-मृत्यु के निवारण के उपाय भी पूछती हैं। अष्टम पटल में देवी भैरव से 'अकुल' से 'कुल' के सृजन, क्षेत्रज्ञ, पीठज्ञ, योगज, मंत्रज, सहज, कुलज एवं चौंसठ योगिनियों के विषय में प्रश्न करती हैं। वे 'कुलसिद्ध' एवं गुरुपूजा-विधान के विषय में जिज्ञासा व्यक्त करती हैं।

नवम पटल में देवी भैरव से गुरुपंक्ति, सिद्धपंक्ति, योगिनीपंक्ति, सर्वसिद्ध योगिनी, सर्वभूचरी, खेचरी, चतुर्युग-विभाग, योगिनीसिद्धि आदि की जिज्ञासा व्यक्त करती हैं और भैरव उनकी समस्त जिज्ञासाओं का समाधान करते हैं।

---

१. कौ० ज्ञा० नि० (५।८-१०)

२. कौ० ज्ञा० नि० (५।१८-२०)

३. कौ० ज्ञा० नि० (५)

दशम पटल में देवी पिण्डस्थ चक्रों के विषय में प्रश्न करती हैं। भैरव मातृकाओं का स्थान इस प्रकार बताते हैं—

(१) 'क्ष'—ब्रह्मरंध्र में (२) 'ल'—ललाट में।
(३) 'ह'—भ्रूमध्य में (४) 'स'—वक्त्रमण्डल में।
(५) 'ष'—कण्ठदेश में (६) 'श'—हृद् देश में।
(७) 'व'—नाभिमध्य में (८) ह'—लिंग देश में।

उसके बाद भैरव सारे चक्रों की ध्यान-प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हैं और अष्ट चक्रों पर प्रतिदिन सदैव ध्यान करने का उपदेश देते हैं।

एकादश पटल में भैरव (देवी द्वारा प्रश्न किये जाने पर) अद्वैतभाव पर प्रकाश डालते हैं। वे कुलसिद्धों के पञ्चामृतों पर भी प्रकाश डालते हैं। वे यह भी कहते हैं— 'पंचपवित्र' निम्नांकित है—

'विष्ठं धारामृतं शुक्रं रक्तमज्जाविमिश्रितम्।
एतत् पञ्चपवित्राणि नित्यमेव कुलागमे॥'[1]

वे गोमांस, गोघृत, रक्त, गोक्षीर एवं दधि—इन पाँच पदार्थों को भी नित्य समर्पित करने का उपदेश देते हैं।

द्वादश पटल में (देवी के पूछने पर) भैरव कौल पूजा में प्रयुक्त पात्र एवं कौल-चर्या के विषय में सविस्तार वर्णन करते हैं।

चतुर्दश पटल में (देवी के पूछने पर) भैरव ने चक्रसिद्धि, कालसिद्धि, अष्ट-सिद्धि, आकाश गमन, दीर्घायुष्य प्राप्ति, ग्रंथित्रय, वृषणोत्थकौल, वह्निकौल, कौल-सद्भाव, पदोतिष्ठकौल आदि के लक्षण, निर्विचार ध्यान, आत्मध्यान, उन्मनीभाव, जीव का लय, नादों के प्रकार, कामकला आदि विषयों पर प्रकाश डाला है।

पञ्चदश पटल में वज्रयोग, वाजीकरण-विधि एवं अष्टदल कमल आदि का तथा षोडश पटल में भैरव, नाथ, इच्छा, ज्ञानक्रियाशक्ति, वटुक कार्तिकेयकौल ज्ञान की कार्तिकेय द्वारा चुराया जाना और महा मत्स्य द्वारा इसका निगला जाना, मत्स्यघ्न का जन्म आदि का वर्णन किया गया है।

सप्तदश पटल में आत्मा के स्वरूप, प्राणों के रहने के एकादश स्थान, हृदयस्थ सहज देव, ह-स, सृ एवं ही (सृष्टि-प्रलय) 'हूं ह', प्रेतासन, द्वादशान्त ब्रह्माण्ड के साथ आत्मैक्य, ध्यान एवं ध्यानातीतावस्था, हंस, वामा, द्वादशान्त, शरीरमध्यस्थ हंस, नाथ तत्त्व, पिण्ड, वज्र, परमात्मा आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

---

१. कौलज्ञाननिर्णय (११।११)

अष्टादश एवं उन्नीसवें पटलों में कुलद्वीपविधान, कौलाभिषेक, कुलदीप, ह्रीं बीज का जप, भुक्ति-मुक्ति, कौलाभिषेक की अन्य प्रणालियाँ, वामामृत, सुरा-रक्त-घृत-शुक्र आदि और 'ह्रीं क्लीं म्हौ जुं स:' मंत्र का जप, वेश्या कुमारिका, जया देवी, उपचार, गुरु के साथ तादात्म्य (ऐक्य), सुरा-मांस-घृत-शर्करा, वीरसाधना, योगिनीसिद्धि, योगिनी के साथ श्रीनाथ का ध्यान आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

बीसवें और इक्कीसवें पटल में योग के पचपन मत, शम्बर, सृष्टिकौल, महाकौल, तिमिर, अमृतसिद्ध, कुलकौलमत, शक्तिभेद कौल, ऊर्मिकौल, ज्ञानकौल, वज्रकौल, वज्रामृत, पञ्चमकार आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

बाईसवें एवं तेईसवें पटल में महाकाल के षड्मुख (कालिका योगिनी, नन्दीश, भट्टका, द्रोणका विजया, महाभागा) ६ योगिनी माताएँ, कुलसिद्ध, गुप्तलिङ्ग, गुरुपूजा, साढ़े दस करोड़ ज्ञान-तत्त्व, कामरूप के प्रत्येक घर में योगिनियों की साधना, चन्द्रद्वीप, आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

तेईसवें एवं चौबीसवें पटल में कौल योगिनियों का सञ्चरण, मर्त्यलोक में देवों का सञ्चरण, योगिनियों का कपोतिका, गृध्री, हंसी, नखी, उलूकी, पेचकी, सररी, गूली, शृगाली, अजा, महिषी, कुक्कुटी आदि अनेक रूपों में सञ्चरण, ६४ योगिनियों का विभिन्न पशुओं का रूप धारण करके पृथ्वी पर संचरण, नारियों के साथ कथमपि कठोर व्यवहार न करने की चर्या और उनकी पूजा आदि तथा महाकौल, महाज्ञान, कुलकौल, अज्ञान, सिद्धपूजा, कौलपूजा, कौलसिद्ध, योगिनीवृन्द, रुद्रगण एवं देवीचक्र की हृदय एवं शिर में स्थिति, बाह्यपूजा, ध्यान, रक्त वस्त्र, रक्तगन्धानुलेपन, सुरा आदि विषयों का सविस्तार विवेचन किया गया है।

बहिस्थ पूजा पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि—

'सुगन्धकुन्दकेतक्या मालिकाजातिकोत्पलैः।
चम्पकैः किङ्करातैश्च नीलोत्पलसुगन्धिभिः।
पुष्पैर्नानाविधैश्चैव शतपत्रैश्च..............।
तरुजातत्रवरादेया द्रव्यापि मधुमिश्रिताम्।
मांसम्पलम्बलिर्देया ताम्बूलं चन्द्रसंयुतम्।
धूपचन्दनसौरभ्यं अगुरुं मृगनाभिकम्॥
रक्तपुष्पैर्विशेषेण सुगन्धधूपदीपितम्।
उग्राणि यानि पुष्पाणि गन्धहीनं न दापयेत्॥
बहिस्थं पूजनं प्रोक्तं अध्यात्मं शृणु साम्प्रतम्।
—(कौलज्ञान निर्णय—चतुर्विंशतितमः पटलः)

—०—

विषयानुक्रमणिका

—०—

॥श्री:॥

योगिराज मत्स्येन्द्रनाथप्रणीत:

कौलज्ञान-निर्णयः

(प्रथम खण्ड:)

योगिराज मत्स्येन्द्र नाथ और गोरक्षनाथ

(परिचय और दृष्टि)

"आदिनाथो गुरुर्यस्य गोरक्षस्य च यो गुरु:।
मत्स्येन्द्रं तमहं वन्दे महासिद्धं जगद्गुरुम्॥"

—(वज्रयोगिनी शिलालेख)

"अन्तर्निश्चलितात्मदीपकलिका, स्वाधारवेधादिभि:
र्यो योगी युगकल्पकाल कलनात् तत्त्वं च यो गीयते॥

ज्ञानान्मोदमहोदधि: समभवद् यत्रादिनाथं स्वयं
व्यक्ताव्यक्तगुणाधिकं तमनिशं, श्रीमीननाथं भजे॥"

—(गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह)

'आदिनाथ उमा बीज प्रगटलें, मत्स्येन्द्रा लाधले सहज स्थिती।
तेचि प्रेम मुद्रा गोरक्षा दिधली, पूर्ण कृत्वा कैली गैनीनाथ॥'

—(निवृत्तिनाथ)

"जैसे-जैसे नाथ सम्प्रदाय के विस्तार और प्रभाव की जानकारी प्राप्त होती जा रही है, वैसे-वैसे इसका असाधारण महत्व भी स्पष्ट होता जा रुहा है। भारतीय धर्मसाधना के इतिहास में इस संप्रदाय का बहुत महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भक्ति-आन्दोलन के पूर्व यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण धार्मिक आन्दोलन रहा है और बाद में भी पर्याप्त शक्तिशाली रहा है।"

'आधुनिक भारतीय भाषाओं में से प्राय: सबके साहित्यिक प्रयत्नों की पृष्ठभूमि में इसका प्रभाव सक्रिय रहा है।'

आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य की प्रेरक शक्तियों का अध्ययन इस संप्रदाय के अध्ययन के बिना अधूरा ही रह ज़ायेगा।

—डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी 'नाथ सम्प्रदाय'

मत्स्येन्द्र नाथ

"श्रीनाथचरणाम्भोजं यस्यां दिशि विराजते।
तस्यै दिशे नमस्कुर्यात् भक्त्या प्रतिदिनं प्रिये।
न पादुकात्परो मन्त्रो न देवो श्रीगुरोः परः।
नास्ति शाक्तात्परो मार्गो न पुण्यं कूलपूजनात्॥"

योगेश्वर मत्स्येन्द्रनाथ शैव योगियों एवं नाथ शैव योगियों के आदिसिद्ध एवं 'मानवौघ' में सर्वोच्च आचार्य हैं।

महासिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ **बौद्ध-जैन परम्परा** के भी आदि देव हैं। बौद्ध-परम्परा में तो वे परमाराध्य **अवलोकितेश्वर** के नाम से भी पूज्य हैं।

वे **जैन-परम्परा** में पार्श्वनाथ-नेमीनाथ के पूर्वज पिता तथा जैन-समाज के आदि गुरु आदिनाथ के रूप में समाहत हैं। उन्होंने कामरूप में कौलसाधना की।

नाथ **योगियों की द्वादशपंथी** परम्परा में वे आदिनाथ के बाद सर्वोच्च गुरु हैं एवं ८४ सिद्धों के पूर्वाग्रणी एवं **६४ योगिनियों के गुरु** हैं।

एशिया महाद्वीप के दक्षिणी भू-भाग में मत्स्येन्द्रनाथ आदि नाथ योगियों के नाम पर इतने मठ तथा मन्दिर एवं जागीरें हैं कि वे भारत की ही नहीं प्रत्युत् एशिया की अनेक प्राचीन संस्कृतियों एवं परम्पराओं की अमिट पहचान हैं।

मत्स्येन्द्रनाथ ने भगवान शिव के मुख से अमृतविद्या, कालवञ्चनीविद्या एवं योगविद्या का श्रवण करके और उसकी साधना करके उसे अनेक साधना-प्रणालियों द्वारा अभिव्यञ्जित (पुष्पित-पल्लवित-प्रसारित) करके योग-क्रान्ति का बिगुल फूँक दिया। सारा भारत 'अलख निरञ्जन' की ध्वनि से गूँज उठा, मूमूर्षु जीवन में चेतना की वल्लकी झनझना उठी। उन्हें **'हठविद्या' का आविष्कारक** भी माना जाता है—

'हठविद्यां हि मत्स्येन्द्रगोरक्षाद्या विजानते।
श्रीआदिनाथ मत्स्येन्द्र शाबरानन्द भैरवाः॥'

—हठयोगप्रदीपिका

उनके ही कारण अवधूत-समाज या नाथयोगसमाज का गठन हुआ। 'आदिनाथ' भारत के इतिहास की पौराणिक महाविभूति हैं। वे **योग, तंत्र एवं अन्य गुह्य विद्याओं के उद्गम** (स्रोत) हैं। उनका प्रभाव भारत की ही नहीं भारत से बाहर की अनेक संस्कृतियों पर भी पड़ा है। इस्लाम का सूफी-सम्प्रदाय तो मत्स्येन्द्र के योग से पूर्णतया प्रभावित है। नेपाल में दो मछंदरनाथ माने जाते हैं—

(१) ठुलो मछन्दर नाथ एवं (२) सानु मछन्दरनाथ अर्थात् (१) बड़ा मछन्दर (ठुलो) एवं (२) छोटा मछन्दर (सानु)।

बड़े मत्स्येन्द्रनाथ को **'मत्स्येन्द्रनाथ'** एवं छोटे मत्स्येन्द्रनाथ को **'मीननाथ'** कहते हैं।

(क) तिब्बती इतिहासकार तारानाथ की दृष्टि में ये दोनों परस्पर भ्राता हैं।

(ख) बंगाली जनश्रुति के अनुसार ये दोनों अभिन्न हैं।

(ग) नेपाल देश में 'बड़ा मछन्दर' एवं 'पद्मपाणि' बोधिसत्व एवं आर्य अवलोकितेश्वर अभिन्न माने जाते हैं।

डॉ० राइट द्वारा संपादित एवं कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस से १८७७ ई० में प्रकाशित हिस्ट्री आफ नेपाल के पृष्ठ १४४ में लिखा है कि—

जब आचार्य बंधुदत्त ने पुरश्चरणात्मक मंत्र-प्रयोग एवं डाकिनी की सहायता से आर्य अवलोकितेश्वर मछन्दरनाथ का उनके निवास स्थान कापोटल पर्वत से आवाहन किया था; तब उनकी आत्मा मक्षिका के रूप में आई, किन्तु उसे कलश में बन्द कर लिया गया और तदुपरान्त एक मूर्ति में उसे प्रतिष्ठित कर दिया गया।

डॉ० पीताम्बरदत्त बड्थ्वाल का मत—डॉ० बड्थ्वाल ने 'योगप्रवाह' ('हिन्दी कविता में योग प्रवाह') में कहा है कि—

बड़ा मछंदर कल्पना मात्र था। मेरा तो विचार है कि छोटे मछंदरनाथ का माहात्म्य बढ़ाने के लिए बौद्धों ने उसी को 'अवलोकितेश्वर' का रूप माना होगा। किन्तु पीछे से गोरखनाथ के प्रभाव में आ जाने के कारण यह 'सानु' माना गया। परन्तु जनसाधारण ने 'सानु' मछन्दर की पूजा न छोड़ी। यह मछंदरनाथ भी कम सिद्ध न था, परन्तु यह अपनी सिद्धता का दुरुपयोग करता था। व्यावहारिक योग में यह गोरखनाथ का गुरु था परन्तु गोरखनाथ विवेकमय तत्त्वज्ञान में इससे बढ़ा चढ़ा था। मछन्दरनाथ आज भी नेपाल की अधिकांश जनता के इष्टदेव होकर पूजे जाते हैं।[१]

किंवदंती है कि महादेव ने सबसे पहले पार्वती को योग का रहस्य बतलाया था। इसको मछंदरनाथ ने नदी में मछली होकर सुना। इसी कारण उसको महादेव का शाप हुआ था। जिससे गोरखनाथ ने उसका उद्धार किया। संभव है कि मछंदरनाथ ने महादेव-पार्वती के संवाद में अपने परिवर्तित मत को लिखा हो, जिसकी भाषा में देशकालानुसार फेरफार हुआ हो।[२]

मछंदरनाथ तांत्रिक थे—

बौद्ध तांत्रिक सम्प्रदाय का आरंभ लगभग सातवें शतक में हुआ। तिब्बत, नेपाल और बंगाल में उसका खूब प्रसार हुआ। विक्रमशिला उसका प्रधान केन्द्र था।

---

१. योग प्रवाह (पृ० ६७-६८)

२. योगप्रवाह (पृ०६६)

पाल राजा महीपाल ने नवीं शताब्दी में विक्रमी शिला के विहार की स्थापना की थी। 'वज्र' उपाधिधारी भिक्षु कामुकता को निर्वाण का साधन मानकर दुराचार में पड़े थे। ग्यारहवें शतक के आरंभ में बौद्धों का तांत्रिक सम्प्रदाय अपने मध्याह्न में था। जान पड़ता है मछंदरनाथ इन्हीं तांत्रिको में से था।[१]

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी इस बात को अस्वीकार करते हुए कहते हैं कि मछन्दरनाथ बौद्ध कभी थे ही नहीं।

मत्स्येन्द्रनाथ शिव के मानस पुत्र हैं—'शाबर चिन्तामणि' (जिसे मत्स्येन्द्र की ही रचना माना गया है) में भगवान शिव पार्वती से कहते हैं कि 'हे देवि! मत्स्येन्द्रनाथ नामक एक महाशक्तिशाली योगी है और वह मेरा मानस पुत्र है—

'मम मानस पुत्रोस्ति मत्स्येन्द्राख्यो महाबल:॥'

ब्रह्मदेव उसकी तपस्या से प्रसन्न हो उठे थे और उन्होंने उसे वर दिया था—

'तत: प्रसन्नो भगवान् हंसरूपी परात्पर:।[२]

मत्स्येन्द्रनाथ का बहुआयामी विराट व्यक्तित्व

(१) हठयोग

(१) मत्स्येन्द्रनाथ 'हठयोग' के प्रवर्तक हैं।

(२) वे 'हठयोग' के प्रथम आचार्य एवं महासिद्ध हैं।

(२) नाथसम्प्रदाय

(३) वे 'नाथसम्प्रदाय' के प्रथम मानवगुरु एवं नाथमार्ग के प्रवर्तक हैं।

(३) कौलमार्ग

(४) वे 'योगिनीकौलमार्ग' के प्रवर्तक हैं।

(५) वे 'सिद्धान्तमार्ग' के साधक एवं सिद्ध हैं। इसे 'सिद्ध कौल सम्प्रदाय' भी कहते हैं।

(४) शाक्त सम्प्रदाय

(६) वे 'शाक्ततांत्रिक मार्ग' के भी आचार्य हैं, क्योंकि वे कौलमार्ग के अनुयायी एवं उसकी एक शाखा ('योगिनी कौलमार्ग) के प्रवर्तक भी हैं।

'कौल मार्ग' शाक्तों का सम्प्रदाय है।

---

१. योग प्रवाह (पृ० ६०)

२. शाबर तंत्र (१/८)

शाक्त सम्प्रदाय के भेद

(१)	(२)	(३)
कौलशाखा	मिश्रशाखा	समयाचार शाखा

मत्स्येन्द्रनाथ इसी 'शाक्तकौल' मत के अनुयायी हैं।

(५) काश्मीरी शैव मार्ग

(७) वे काश्मीरी शैवमार्ग के भी आचार्य हैं इसीलिए स्वयं अभिनवगुप्त ने भी उन्हें नमस्कार किया है।

(६) बौद्ध मत

(८) वे बौद्धों के भी आचार्य हैं; इसीलिए नेपाल के बौद्ध उन्हें 'अवलोकितेश्वर का अवतार' मानते हैं।

'सद्धर्मपुण्डरीक' में 'अवलोकितेश्वर' की यह व्याख्या की गई है कि—

"अवलोकितेश्वर भगवान बुद्ध का वह करुणामय स्वरूप है जो कि संसार में एक भी व्यक्ति के बंधनग्रस्त रहने तक निर्वाण नहीं प्राप्त करता। मत्स्येन्द्र उन्हीं के अवतार हैं।

(७) मत्स्येन्द्रनाथ जैन योग के भी आचार्य हैं—

जैनधर्म के पार्श्वनाथ आदि तीर्थङ्करों से उनका अविच्छेद्य सम्बन्ध है। 'नेमिनाथ' एवं 'पारसनाथ' मत्स्येन्द्र के पुत्र थे।

(८) मत्स्येन्द्रनाथ 'त्रिपुरासम्प्रदाय' के भी आचार्य हैं—

त्रिपुरा सम्प्रदाय के अनेक आचार्यों के वे भी नाम हैं जो कि नाथ-सम्प्रदाय के हैं। मूलाधार चक्र में 'भैरवी' एवं त्रिपुरा की स्थिति नाथ-सम्प्रदाय में भी मान्य है। कुण्डलिनी त्रिपुरा ही हैं।

(९) मत्स्येन्द्र तन्त्रमार्ग के भी आचार्य हैं—

तांत्रिकों का श्रेष्ठतम आचार कौलाचार है।

शाक्तमतानुसार मुख्यत: चार आचार हैं—

(१) वैदिक, (२) वैष्णव, (३) शैव एवं (४) शाक्त।

शाक्त आचार

(१)	(२)	(३)	(४)
वामाचार	दक्षिणाचार	सिद्धान्ताचार	कौलाचार

या (१) वेदाचार, (२) वैष्णवाचार, (३) शैवाचार, (४) दक्षिणाचार, (५)

सिद्धान्ताचार, (६) कौलाचार। कौलाचार श्रेष्ठतम आचार माना गया है। इनमें वरीयता का क्रम इस प्रकार है—

'सर्वेभ्यश्चोत्तमा वेदा,वेदेभ्यो वैष्णवं परम्।
वैष्णवादुत्तमं शैवं, शैवाद्दाक्षिण्यमुत्तमम्।
सिद्धान्तादुत्तमं कौलं कौलात्परतरं नहि॥

(१) पश्वाचार = 'वैदिकं वैष्णवं शैवं दक्षिणं पाशवं स्मृतम्।

(२) दिव्याचार = 'सिद्धान्तवामे वीरे तु दिव्यं सत्कौल मुच्यते॥'

मत्स्येन्द्रनाथ तांत्रिकों के सर्वोत्तम आचार 'कौलाचार' के अनुयायी एवं प्रवर्तक दोनों थे।

(१) मत्स्येन्द्रनाथ गोरक्ष के गुरु एवं महासिद्ध थे—

'आदिनाथो गुरुर्यस्य गोरक्षस्य च यो गुरुः।
मत्स्येन्द्रं तमहं वन्दे महासिद्धं जगद्गुरुम्॥

—वज्रयोगिनी शिलालेख

(२) भैरव ही मत्स्येन्द्रनाथ थे—

'कदाचित् कार्तिकेयेन कौलागमशास्त्रमपहृत्य समुद्रे प्रक्षिप्तम्, तच्चैकेन मत्स्येन निगीर्णम्, तदा स्वयं भैरवो मत्स्येन्द्ररूपेणावतीर्य समुद्रं प्रविश्य तस्य मत्स्यस्योदरं विदार्य तच्छास्त्रं समुद्दधार, स एवायं मत्स्येन्द्रनाथः मत्स्यघ्न इत्यप्युच्यते।

—कौलज्ञान निर्णय

ये ही मत्स्येन्द्रनाथ 'मच्छन्द' 'मच्छन्दरनाथ' 'मत्स्यघ्न' 'मत्स्येन्द्र' एवं 'मीननाथ' आदि अनेक नामों से पुकारे जाते हैं।

(३) मत्स्येन्द्रनाथ समुद्र के एक मत्स्य थे—

(१) 'आदिनाथः शिवः सर्वेषां नाथानां प्रथमो नाथः। ततो नाथसंप्रदायः प्रवृत्त इति नाथसंप्रदायिनो वदन्ति।

(२) मत्स्येन्द्राख्यश्च आदिनाथशिष्यः।

(३) अत्रैव किंवदन्ती। कदाचिदादिनाथः कस्मिंश्चिद् द्वीपे स्थितः तत्र विजनमिति मत्वा गिरिजायै योगमुपदिष्टवान्। तीरसमीपनीरस्थः कश्चन मत्स्यः तं योगोपदेशं श्रुत्वा एकाग्रचित्तो निश्चलकायोऽवतस्थे। तं तादृशं दृष्ट्वा 'अनेन योगः श्रुत इति' तं मत्वा कृपालुरादिनाथो जलेन प्रोक्षितवान्। स च प्रोक्षणमात्राद‌द्दिव्यकायो मत्स्येन्द्रः सिद्धोऽभूत तमेव **मत्स्येन्द्रनाथ** इति वदन्ति।

—ब्रह्मानन्द—'ज्योत्स्ना'

(४) मत्स्येन्द्रनाथ अवलोकितेश्वर के अवतार थे—

नेपाल देश के लोगों के अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ अवलोकितेश्वर के अवतार थे।

(५) मत्स्येन्द्रनाथ नाथसम्प्रदाय के (प्रथम) मानवाचार्य थे—

नाथसम्प्रदाय के प्रवर्तक तो आदिनाथ (शिव) थे, किन्तु प्रथम मानव आचार्य मत्स्येन्द्रनाथ ही थे।

(६) मत्स्येन्द्रनाथ हठयोग के प्रथम मानवाचार्य थे—

'हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद्धठयोगो निगद्यते॥' (सि० सि०प०)

—के स्वरूप वाले 'हठयोग' के प्रथम उपदेष्टा तो आदिनाथ थे, जिसे कि उन्होंने सर्वप्रथम गिरिजा को सुनाया था, किन्तु इसके प्रथम मानव उपदेष्टा मत्स्येन्द्रनाथ ही थे।

इस 'हठयोगविद्या' को ही 'हठयोगशास्त्र' भी कहा जाता है, जो कि 'ह' एवं 'ठ' का योग है।

यह 'सूर्य' एवं 'चन्द्र' का योग है।

इस योग का उद्देश्य ही 'राजयोग'-साधना है; क्योंकि—

'हठं विना राजयोगं राजयोगं विना हठः।
न सिध्यति ततो युग्यमानिष्पत्तेः समभ्यसेत्॥'

—हठयोगप्रदीपिका (१।७६)

'राजयोगसमारूढः पुरुषः कालवञ्चकः। (४।१०३)
'सर्वाण्यपि हठाभ्यासे राजयोगफलावधि।'
'राजयोगं विना पृथ्वी, राजयोगं विना निशा।
राजयोगं विना मुद्रा विचित्राऽपि न शोभते॥ (३।१२६)

इस हठयोग की सिद्धि के लक्षण निम्नाङ्कित हैं—

वपुः कृशत्वं वदने प्रसन्नता,
नादस्फुटत्वं नयने सुनिर्मले।
अरोगता बिन्दुजयोऽग्निदीपनं,
नाडी-विशुद्धिर्हठयोग लक्षणम् ॥

प्र०—'राजयोग' का स्वरूप क्या है? इस 'मत्स्येन्द्रनाथी हठयोग' के चरमलक्ष्य 'राजयोग' का यथार्थ स्वरूप क्या है?

ब्रह्मानन्दजी **'ज्योत्स्ना'** में कहते हैं—

(१) 'वृत्यन्तरनिरोधपूर्वकात्मगोचरधारावाहिकनिर्विकल्पकवृत्ती राजयोगः॥'' (३।१२६)

(२) 'राजयोगश्च सर्ववृत्तिनिरोधलक्षणोऽसंप्रज्ञात समाधिः॥' (१।१)

(३) **'राजयोग'** और **'समाधि'** तथा **'उन्मनी'** पर्यायवाची हैं—

'राजयोगः समाधिश्च उन्मनी च मनोन्मनी।
अमरत्वं लयस्तत्त्वं शून्याशून्यं परं पदम्॥
अमनस्कं तथाऽद्वैतं निरालम्बं निरञ्जनम्।
जीवन्मुक्तिश्च सहजा तुर्या चेत्येकवाचकाः॥

प्र०—यदि 'राजयोग' समाधि है तो **'समाधि' क्या** है?

'सलिले सैन्धवं यद्वत्साम्यं भजति योगतः।
तथाऽऽत्ममनसोरैक्यं समाधिरभिधीयते।
यदा संक्षीयते प्राणो मानसं च प्रलीयते।
तदा समरसत्वं च समाधिरभिधीयते॥
तत्समं च द्वयोरैक्यं जीवात्मपरमात्मनोः।
प्रनष्टसर्वसंकल्पः समाधिः सोऽभिधीयते।
राजयोगस्य माहात्म्यं को वा जानाति तत्त्वतः।
'ज्ञानं' 'मुक्तिः' 'स्थितिः' 'सिद्धि'र्गुरुवाक्येन लभ्यते॥

—'राजयोगप्रभावमाह'—(ज्योत्स्ना)

प्र०—'राजयोग' का प्रभाव क्या है?

(१) 'ज्ञान'—'ज्ञानं स्वस्वरूपापरोक्षानुभवः॥'

(२) 'मुक्ति'—'मुक्तिर्विदेहमुक्तिः।'

(३) 'स्थिति'—'स्थितिर्निर्विकारस्वरूपस्थितिरूपा जीवन्मुक्तिः।'

(४) 'सिद्धि'—सिद्धिरणिमादिः गुरुवाक्येन गुरुवचसा लभ्यते। राजयोगादितिः शेषः।"

—ज्योत्स्ना

प्र०—'राजयोग 'सहजावस्था' है तो **'सहजावस्था' क्या है**?

(१) 'दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभं तत्त्वदर्शनम्।
दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करुणां विना॥ (४।९)

(२) 'विविधैरासनैः कुम्भैर्विचित्रैः करणैरपि।
प्रबुद्धायां महाशक्तौ प्राणः शून्ये प्रलीयते॥ (४।१०)

(३) 'उत्पन्नशक्तिबोधस्य व्यक्तनिःशेष कर्मणः।
योगिनः **सहजावस्था** स्वयमेव प्रजायते॥ (४।११)

(४) **'सहजावस्था** तुर्यावस्था।'

प्र०—यदि राजयोग का प्रभाव ज्ञान एवं मुक्ति (मोक्ष) है तो उस ज्ञान एवं मुक्ति (मोक्ष) का स्वरूप क्या है?

'ज्ञानं कुतो मनसि संभवतीह तावत्,
प्राणोऽपि जीवति मनो म्रियते न यावत्।
प्राणो मनो द्वयमिदं विलयं नयेद्यो,
मोक्षं स गच्छति नरो न कथंचिदन्य:॥ (४।१५)
—हठयोगप्रदीपिका

(२) राजयोग **'अमनस्क योग'** है—

'अमनस्क' एवं अमनस्क योग' (अन्तर्योग)—जिस 'राजयोग' को 'अमनस्क कहा गया है उसका स्वरूप क्या है?। गोरक्षनाथ ने योग के दो प्रकार स्वीकार किये हैं— (१) 'पूर्वयोग' (२) 'अपरयोग'

'बर्हियोग' या (१) 'तारक योग' तथा (२) 'अमनस्क योग'

'तारक योग' समनस्क योग है किन्तु **'अमनस्क योग'** मन से अतीत योग है। **'तारक योग'** बाह्ययोग है। **'अमनस्क योग'** अन्तर्मुद्रात्मक एवं यथार्थ योग है। यही 'राजयोग' है—'राजयोग' शांभवीमुद्राप्रधान है—

'राजयोग: स कथित: स एव मुनिपुंगव।
राजत्वात् सर्वयोगानां **राजयोगं** इति स्मृत:॥
राजानं दीप्यमानं तं परं ब्रह्माणमव्ययम्।
देहिन: प्रापयेद् यस्तु **राजयोग:** स उच्यते॥
राजयोगस्य माहात्म्यं को वा जानाति तत्त्वत:।
ज्ञानात् सिद्ध्यति मुक्तिर्हि गुरोर्ज्ञानं च लभ्यते॥
—अमनस्क योग

हठयोग का लक्ष्य 'राजयोग' है—

राजयोगमजानन्त: केवलं हठकर्मिण:।
एतानभ्यासिनो मन्ये प्रयासफलवर्जितान्॥ (४।७९)

प्र०—यदि 'प्राण' एवं 'मन' का जीवन जब तक शेष है तब तक राजयोग का लक्ष्य 'ज्ञान' एवं 'मुक्ति' संभव ही नहीं है; तब प्राण एवं मन का जीवन क्या है?

(१) प्राण का जीवन क्या है?
(२) मन का जीवन क्या है?

(१) प्राण का जीवन : 'इडापिङ्गलाभ्यां वहनं प्राणस्य जीवनं।'

(२) इन्द्रियों का जीवन : 'स्वस्वविषयग्रहणमिन्द्रियाणां जीवनं।'

(३) मन का जीवन : 'नानाविषयाकारवृत्त्युत्पादनं मनसो जीवनम्।'

'प्राणो मनः इदं द्वयं यो योगी विलयं नाशं नयेत्स मोक्षमात्यन्तिकस्वरूपावस्थान-लक्षणं गच्छति प्राप्नोति।।'
—ज्योत्स्ना (४।१५)[१]

प्राण एवं मन का जय क्या है?

'नानाविधैर्विचारैस्तु न साध्यं जायते मनः।
तस्मात्तस्य जयः प्रायः प्राणस्य जय एव हि।।'

प्र०—यदि राजयोग 'उन्मनी' एवं 'मनोन्मनी' है तो 'उन्मनी' एवं 'मनोन्मनी क्या है?

(१) 'तत्त्वं बीजं हठः क्षेत्रमौदासीन्यं जलं त्रिभिः।
उन्मनीकल्पलतिका सद्य एव प्रवर्तते।।' (४।१०४)

(२) 'उच्छिन्नसर्वसङ्कल्पो निःशेषाशेषचेष्टितः।
स्वावगम्यो लयः कोऽपि जायते वागगोचरः।।' (४।३२)

(३) 'प्रनष्टश्वासनिश्वासः प्रध्वस्तविषयग्रहः।
निश्चेष्टो निर्विकारस्य लयो जयति योगिनाम्' (४।३०)

(४) 'मनः प्राणलये कश्चिदानन्दः सम्प्रवर्तते।।' (४।३०)

राजयोग 'लय' है

प्र०—'लय' क्या है?

'ब्रह्मरन्ध्रे निर्व्यापारस्थितिः प्राणस्यः लयः। (ज्योत्स्ना)
'विषयान्तरेऽव्यापारेण मनसो लयोऽन्यः।। (ज्योत्सना)

'अमनस्क योग' ही **राजयोग** है—

'लयोलय इति प्राहुः कीदृशं लय लक्षणम्।
अपुनर्वासनोत्थानाल्लयो विषयविस्मृतिः।।' (४।३४)

प्र०—यदि हठयोग के 'लक्ष्यभूत राजयोग' के बिना हठयोग व्यर्थ है तो 'राजयोग' की प्राप्ति का साधन क्या है?

---

१. 'अलीनप्राणोऽलीनमनाश्च कथञ्चिदुपाय शतेनापि न मोक्षं प्राप्नोति।।'
(—ज्योत्स्ना)

'एतेन योगं विना ज्ञानं मोक्षश्च न सिद्ध्यतीति सिद्धम् ।
'नान्यमार्गैः सुखप्रायं कैवल्यं परमं पदम् ।
सिद्धमार्गेण लभ्येत नान्यथा शिवभाषितम् ।।
—सिद्धमार्गो योगमार्गः —(ज्योत्स्ना)

(१) 'राजयोगपदं प्राप्तुं सुखोपायोऽल्पचेतसाम्।
सद्य: प्रत्ययसन्धायी जायते नादजो लय:।।'

(२) **'राजयोग'** तुर्यावस्था है—
'राजयोगो योगानां राजा तदेव पदं राजयोगपदं तुर्यावस्थाख्यम्।

इस तुर्यावस्था को प्राप्त करने के लिए (स्वात्माराम मुनीन्द्र के मतानुसार)— 'भ्रूध्यान' सर्वोच्च साधन है और 'लय' इसका स्वरूप है—

'उन्मन्यवाप्तये शीघ्रं भ्रूध्यानं मम सम्मतम् ।। (४।८०)
'नादज: नादाज्जातो लयश्चित्तविलय: सद्य: शीघ्रं
प्रत्ययं प्रतीतिं सन्दधाति प्रत्ययसन्धायी।।' —(ज्योत्स्ना)
'अस्तु वा मास्तु वामुक्तिरत्रैवाखण्डितं सुखम् ।
लयोद्भवमिदं सौख्यं राजयोगादवाप्यते।। (४।७८)

अर्थात् लयोद्भूत अनिर्वचनीय सौख्य तो 'राजयोग' से ही प्राप्य है, भले ही मुक्ति प्राप्त हो या न हो।

यह लय-साधना 'नादानुसन्धान' से भी हो सकती है, क्योंकि यह गुरुनाथैकगम्य अनिर्वचनीय और अगम्य आनन्द का साधन है—

'नादानुसन्धान समाधिभाजां,
योगीश्वराणां हृदि वर्धमानम्।
आनन्दमेकं वचसामगम्यं,
जानाति तं श्री गुरुनाथ एक:।। (४।८१)

नादानुसन्धानाभ्यास की पद्धति क्या है?

'कर्णौ पिधाय हस्ताभ्यां यं शृणोति ध्वनिं मुनि:।
तत्र चित्तं स्थिरीकुर्याद्यावत्स्थिरपदं व्रजेत्।। (४।८२)

राजयोग का अन्य फल क्या है?

'एकीभूतं तदा चित्तं राजयोगाभिधानकम्।
सृष्टिसंहारकर्ताऽसौ योगीश्वरसमो भवेत्।।' (४।७७)

नादाभ्यास का फल क्या है?

अभ्यस्यमानो नादोऽयं बाह्यमावृणुते ध्वनिम्।
पक्षाद्विक्षेपमखिलं जित्वा योगी सुखी भवेत् ।। (४।८३)
'श्रूयते प्रथमाभ्यासे नादो नानाविधो महान्।
ततोऽभ्यासे वर्धमाने श्रूयते सूक्ष्मसूक्ष्मक: ।। (४।८४)

(२) आदौ जलधिजीमूतभेरी झर्झरसंभवाः।
मध्ये मर्दलशंखोत्था घण्टाकाहलजास्तथा ॥
(३) अन्ते तु किङ्किणीवंशवीणाभ्रमरनिस्वनाः।
इति नानाविधा नादाः श्रूयन्ते देहमध्यगाः॥
(४) महति श्रूयमाणोऽपि मेघभेर्यादिके ध्वनौ।
तत्र सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं नादमेव परामृशेत्॥
(५) काष्ठे प्रवर्तितो वह्निः काष्ठेन सह शाम्यति।
नादे प्रवर्तितं चित्तं नादेन सह लीयते॥
(६) नादोऽन्तरङ्गसारङ्ग बन्धने वागुरायते।
अन्तरङ्गकुरङ्गस्य वधे व्याधायतेऽपि च॥
(७) अन्तरङ्गस्य यमिनो वाजिनः परिघायते।
नादोपास्तिरतो नित्यमवधार्या हि योगिना॥
(८) नादश्रवणतः क्षिप्रमन्तरङ्गभुजङ्गमः॥
विस्मृत्य सर्वमेकाग्रः कुत्रचिन्न हि धावति।
(९) मकरन्दं पिबन् भृङ्गो गन्धं नापेक्षते यथा।
नादासक्तं तथा चित्तं विषयान्न हि कांक्षते॥
(१०) सर्वचिन्तां परित्यज्य सावधानेन चेतसा।
नाद एवानुसन्धेयो योगसाम्राज्यमिच्छता॥ (४।९३)
(११) अनाहतस्य शब्दस्य ध्वनिर्य उपलभ्यते।
ध्वनेरन्तर्गतं ज्ञेयं ज्ञेयस्यान्तर्गतं मनः।
मनस्तत्र लयं याति तद्विष्णोः परमं पदम्॥ (४।१००)

अन्तिम निष्कर्ष यह है कि 'हठयोग' के सारे उपाय **'राजयोग'** की सिद्धि के लिए ही हैं—

'सर्वे हठलयोपाया राजयोगस्य सिद्धये।
राजयोगसमारूढः पुरुषः कालवञ्चकः॥ (४।१०३)

यदि राजयोगी की सिद्धि 'कालवञ्चन' है तो स्पष्ट है कि नाथ-सम्प्रदाय मृत्युञ्जयत्व एवं अमृतत्त्व की प्राप्ति को प्रधान उपलब्धि मानता है।

योगशिखोपनिषद् की दृष्टि से राजयोग का स्वरूप

'योगशिखोपनिषद्' में कहा गया है—

योनिमध्ये महाक्षेत्रे जपाबंधूकसन्निभम्।
रजो वसति जन्तूनां देवीतत्त्वं समावृतम्॥

रजसो रेतसो योगाद्राजयोग इति स्मृतः।
अणिमादि पदं प्राप्य राजते राजयोगतः॥ (१३६-१३७)

नारदोक्त राजयोग का स्वरूप

नारदोक्त राजयोग अद्वैताश्रित है—

'एवमद्वैतयोगेन विमुक्तिर्वो मयोदिता॥'

विज्ञानभिक्षु ने **नारदोक्त राजयोग की पद्धति** अपने योग ग्रन्थ में उद्‌धृत की है।[1] इसका स्वरूप इस प्रकार है—

'विलाप्य विस्तरं कृत्स्नं चिदेकरसबोधने।
राजयोगं प्रवक्ष्यामि तं शृणुध्वं द्विजोत्तमाः॥
वेदान्तेभ्यः सतां सङ्गात् सद्गुरोश्च स्वतस्तथा।
ज्ञेयोऽन्तः प्रकृतेरन्य आत्मा सम्यङ् मुमुक्षुभिः॥
इत्यात्मानं दृढं ज्ञात्वा संगं सर्वं ततस्त्यजेत्।
अद्वैतसिद्धौ यतमामन्यसङ्गो ह्यरिः स्फुटम्।
एकान्ते स्वासनो धीरः शुचिर्दक्षः समाहितः।
यततोपनिषद् दृष्टमायाभिन्नात्मदर्शने।
पराक्प्रवृत्ताक्षगणं योगी प्रत्यक् प्रवाहयेत्।
रुद्ध्वा मार्गं तदत्यन्तं मुक्तास्त्रौघमिवार्जुनः।
स्थापयित्वा पदेऽक्षाणि स्वे स्वेऽन्तस्तु मनः शनैः।
निवृत्तसैन्यं राजानं वेश्मेवान्तः प्रवेशयेत्॥
अन्तः स्थिते च मनसि न चलन्तीन्द्रियाण्यपि।
अभ्राणि स्तिमितानीव चोदकेऽन्यगतेऽनिले।
ततो वपुरहङ्कार बुद्धिभ्योऽन्ये चिदात्मनि।
तासां प्रवर्तयितरि स्वात्मनि स्थापयेन्मनः।
मुधा कर्तृत्वभोक्तृत्वमानिनं तमथामलम्॥
सर्वात्मनि चिदानन्दघने विष्णौ सु योजयेत्।
सलिले करकाश्मेव दीपोऽग्नाविव तन्मयः।
जीवो मौढ्यात्पृथग्बुद्धौ युक्तो ब्रह्मणि लीयते।
अयं च जीवपरयोर्योगो योगाभिधो द्विजाः।
सर्वोपनिषदामर्थो मुनिगोप्यः परात्परः॥

---

१. योगसार संग्रह

एवं ब्रह्मणि युक्तात्मा सन्निरन्तरचिद्रसः।
आसीताभ्यन्तरं बाह्यं विलाप्य जगदात्मनि॥
क्रमाद्विलापयन्नेव कठिनांशोपमं जगत्।
विस्तरं स्वात्मविद्योगी निर्विशेषं विलापयेत्॥
एवं सततयुक्तात्मा क्रमाद्विष्णुमयो भवेत्।
न हि सैन्धवशैलोऽपि क्षणादम्बुमयो भवेत्॥
व्युत्थितोऽपि जगत्कृस्त्नं विष्णुरेवेति भावयन्।
निर्ममो निरहङ्कारश्चरेच्छिथिल संसृतिः।
एवं सततमभ्यासाल्लीनबुद्धेः परात्मनि।
कर्माणि बुद्धिपूर्वाणि निवर्तन्ते स्वतो द्विजाः।
पूर्वाभ्यासबलात्कार्यो न लौक्यो न च वैदिकः।
अपुण्यपापः सर्वात्मा जीवन्मुक्तः स उच्यते।
तद्देहपाते च पुनः सर्वगो न स जायते।
एवमद्वैतयोगेन विमुक्ति र्वो मयोदिता॥"

विज्ञान भिक्षु—योगसार संग्रह

राजयोग 'अमनस्क योग' है।

अमनस्क का स्वरूप क्या है?

(१) अमनस्केऽपि संजाते चित्तादि विलयो भवेत् ।'

प्र०—'अमनस्क' का आविर्भाव कैसे होता है?

'तत्त्वस्य संमुखे जाते अमनस्क प्रजायते।'

प्र०—'तत्त्व' संमुख होता कैसे है?

'न किंचिन्मनसा ध्यायेत्सर्वचिन्ताविवर्जितः।
स बाह्याभ्यन्तरे योगी जायते तत्त्वसंमुखः॥

प्र०—'अमनस्क' की साधना-प्रक्रिया क्या है?

'विविक्तदेशे सुखसन्निविष्टः समासने किंचिदुपेत्य पश्चात्।
बाहुप्रमाणं स्थिरदृक् स्थिरांगश्चिन्ताविहीनोऽभ्यसनं कुरुष्व॥

गोरक्षनाथ का 'अमनस्क योग'

'दृष्टिः स्थिरा यस्य विना निमेषाद्,
वायुः स्थिरो यस्य विना निरोधात्।
चित्तं स्थिरं यस्य विनावलम्बनात्,
स एव योगी स गुरुः स सेव्यः॥

न किञ्चिच्चिन्तयेद् योगी औदासीन्यपरो भवेत्।
न किञ्चिच्चिचिन्तनादेव स्वयं तत्त्वं प्रकाशते।
औदासीन्यामृतौघेन वर्धमानेन योगिनाम्।
उन्मूलितमनो मूलो जगद्वृक्षः पतिष्यति।
—गोरक्षनाथ अमनस्कयोग

शिथिलीकृत सर्वाङ्गं आनखाग्रशिखाग्रतः।
'चिन्ताचेष्टाविवर्जितः॥
—गोरक्षनाथ

मत्स्येन्द्रनाथ का आविर्भाव-काल

महायोगी एवं महातांत्रिक सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ के आविर्भाव-काल के विषय में कोई सुनिश्चित मत स्थापित नहीं हो सकता है और इस दिशा में मतैक्य का अभाव है।

अभिनव गुप्तपादाचार्य ११वीं शताब्दी के हैं।[१] अभिनव गुप्त ने अपने ग्रंथ 'तन्त्रालोक' में मत्स्येन्द्रनाथ को नमस्कार किया है—

'रागारुणं ग्रन्थिविलावकीर्णम् यो जालमातानवितानवृत्तिः।
कलोम्भितम् बाह्यपथे चकारस्तन्मे स मच्छन्दविभुः प्रसन्नः॥

'तंत्रालोक' के टीकाकार जयरथ ने मत्स्येन्द्रनाथ को **'सकल कुलशास्त्र अवतारक'** कहा है।

यदि अभिनव गुप्त का आविर्भावकाल ११वीं सदी है तो स्पष्ट है कि मत्स्येन्द्रनाथ का समय ११वीं सदी पूर्व का था।

निष्कर्ष—

(१) मत्स्येन्द्रनाथ ११हवीं सदी के पूर्व विद्यमान थे। उनका जन्म कामरूप के निकट चन्द्रगिरि में हुआ था। गोरक्षनाथ मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य थे—

'आदिनाथें उपदेश पार्वतीसी केला।
मत्स्येन्द्रे ऐकिला मच्छगर्भी।
शिवहृदयींचा मन्त्र पै अगाध।
जालासे प्रसिद्ध भक्तियोगें।
तेणेत्या गोरक्षा केलें कृपादान॥
तेथोनि प्रकट जाण गहिणी प्रति॥
गहिनीनें दया केली निवृत्तिनाथा।

१. डॉ० बलदेव उपाध्याय।

बालक असतों योगरूप।
तेयो ज्ञानेश पावले प्रसाद।
जाले ते प्रसिद्ध सिद्धासनीं॥''

गोरक्षनाथ का आविर्भावकाल—[१]

(१) डॉ० बड्थ्वाल का मत	: (संवत् १०५० के आस-पास)
(२) डॉ० राम कुमार वर्मा का मत	: (१३वीं सदी)
(३) इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका	: (१३वीं सदी)
(४) डॉ० शहीदुल्ला का मत	: (सं० ७२२)
(५) राहुल सांकृत्यायन का मत	: (संवत् ९०२)
(६) डॉ० मोहन सिंह का मत	: (विक्रम की ९वीं १०वीं सदी)
(७) डॉ० फर्कुहर का मत	: (सं० १२५७)
(८) डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत	: (वि० सं० १०वीं सदी)
(९) डॉ० प्रबोध चन्द्र बागची का मत	: (९०० A. D.)

(१०) (त्र्यम्बकपन्त गोरक्ष के शिष्य थे। त्र्यम्बक पन्त ने सं० १२७० में गोरक्ष से शिष्यत्व ग्रहण किया। अत: गोरक्षनाथ का आविर्भाव काल सं० १२५७ भी अनुमानत: लगाया गया है।

मत्स्येन्द्रनाथ के आविर्भावकाल के विषय में—

डॉ० प्रबोध बागची का मत—डॉ० बागची कहते हैं कि अभिनव गुप्त का आविर्भाव ११वीं सदी (११A. D.) में हुआ था। अत: यदि मत्स्येन्द्र का आविर्भाव-काल १०० वर्ष पूर्व का भी मान लिया जाय तो भी मत्स्येन्द्रनाथ का आविर्भावकाल ९०० A. D. में हुआ—''मत्स्येन्द्र लिव्ड ऐट लीस्ट हण्ड्रेड ईयर्स अर्लियर, से एबाउट ९००A. D.

—'कौलज्ञान निर्णय की भूमिका

जालन्धर नाथ का भी आविर्भाव-काल—९०० A. D. ही है। (प्रबोध चन्द्र बागची)।

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि आचार्य अभिनव गुप्त ने सन् ९९१ ई० में 'क्रमस्तोत्र' की रचना की थी एवं सन् १०१५ ई० 'ईश्वर प्रत्यभिज्ञा' पर 'बृहती' नामक टीका लिखी थी। उन्होंने मत्स्येन्द्र नाथ की 'तंत्रालोक' में स्तुति की है। अत: उनका आविर्भावकाल सन् ईसवी की दसवीं शताब्दी के अन्त में और ११वीं शताब्दी के आदि में है। यदि अभिनव गुप्त का आविर्भाव काल १०वीं सदी

---

१. डॉ० हजारी प्रसाद का कथन है कि नाथमार्ग के आदि प्रवर्तकों का समय नवीं शताब्दी का मध्य भाग है। ('नाथसम्प्रदाय' द्वि० सं०—पृ० ५९)

के अन्त एवं ११हवीं सदी के प्रारंभ का है तो मत्स्येन्द्रनाथ का आविर्भाव काल दसवीं सदी के अन्त के पूर्व का है।

राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार मत्स्येन्द्रनाथ का आविर्भाव काल ९वीं सदी का मध्यकाल है।

राजा देवपाल ८०९-४९ तक राज्य करते रहे। वे मत्स्येन्द्र (मीनपा) के समकालीन थे। अत: मत्स्येन्द्रनाथ का काल भी ८०९-४९ माना जाना चाहिए।

अभिनव गुप्त ने मत्स्येन्द्रनाथ का नामोल्लेख किया है। अत: मत्स्येन्द्रनाथ अभिनव गुप्त के पूर्ववर्ती हैं।

अभिनवगुप्ताचार्य का आविर्भाव काल क्या है?

उन्होंने ९९१ ई० में 'क्रमस्तोत्र' की रचना की। इसके पूर्व मत्स्येन्द्रनाथ थे।

नेपाल के एक शिलालेख में लिखा है—

'अतीत कलिवर्षेषु शून्यद्वन्द्वरसाग्निषु।
नेपाले जयति श्रीमानार्यावलोकितेश्वर:॥'

इससे तो यह सिद्ध होता है कि ५२० ईसवीय संवत्सर में कदलीदेशस्थ मत्स्येन्द्रनाथ का गोरक्षनाथ ने उद्धार किया और वे इसी समय नेपाल में प्रथम बार अवलोकित हुए अत: उनका नाम 'अवलोकितेश्वर' पड़ा—

'मत्स्येन्द्रनाथ: नेपालभागतस्तत्र च प्रथमं जनैरवलोकित इत्यवलोकितेश्वर इत्युच्यते।'

इस आधार पर तो मत्स्येन्द्रनाथ का आविर्भाव छठवीं शताब्दी के प्रारंभ में हुआ—

'एवमीसवीयषष्ठशत्या: प्रारम्भे पूर्णसिद्धस्य तस्य स्थिति: सिद्ध्यति सम्भाव्यते चैतत् ॥[1]

मत्स्येन्द्रनाथ की रचनायें

मत्स्येन्द्रनाथ के द्वारा प्रणीत ग्रंथों में प्रमुख ग्रंथ निम्नाङ्कित हैं—

१. मत्स्येन्द्र संहिता
२. कौलज्ञान निर्णय
३. अकुलवीर तन्त्रम्
४. कुलानन्द
५. कुलार्णव
६. कौलार्णव
७. महाकौलार्णव
८. शाबर चिन्तामणि

१. गोरक्ष संहिता : भूमिका जनार्दन शास्त्री।

इन ग्रंथों के अतिरिक्त अन्य अनेक मत्स्येन्द्र-प्रणीत ग्रन्थ नेपाल दरबार ग्रंथ संग्रहालय एवं जोधपुर राजसंग्रहालय में उपलब्ध हैं। 'मुक्तापुर मङ्गलूर से प्रकाशित एक बृहदाकार 'मत्स्येन्द्र संहिता' भी मिलती है। शाक्त मतावलम्बी तांत्रिकों की भाँति मत्स्येन्द्रनाथी कौलधारा का विश्वास है कि—

'यत्रास्ति भोगो न तु तत्र मोक्षो,
यत्रास्ति मोक्षो न तु तत्र भोगः।
श्री सुन्दरीसाधकपुङ्गवानां,
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥

मत्स्येन्द्रनाथ का जन्मस्थान—मत्स्येन्द्रनाथ चन्द्रगिरि में उत्पन्न हुए थे। चन्द्रगिरि कामरूप के निकट था या बंगाल के समुद्री किनारे पर था।

तिब्बती परम्परा के अनुसार उनका जन्म-स्थान ब्रह्मपुत्र से आच्छादित किसी द्वीपाकार अंचल में था।

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत—(१) मत्स्येन्द्रनाथ का जन्मस्थान कामरूप के सन्निकट स्थित चन्द्रगिरि नामक स्थान है या

(२) बंगाल के समुद्री तट पर है।

(३) इतना निश्चित है कि यह स्थान पूर्वी भारतवर्ष में कामरूप के समीप था।

इनका प्रादुर्भाव ९वीं शताब्दी में किसी समय हुआ था। उन्होंने स्त्री-साहचर्य-प्रधान साधना 'कौलसाधना' कदली वन (स्त्री देश) में की जो कि कामरूप ही हो सकता है। 'कदली देश' आसाम का उत्तरी भाग है। ब्रिग्स मत्स्येन्द्र के शिष्य गोरक्षनाथ का आविर्भावकाल १२०० ई० से पूर्व संभवतः ११वीं शताब्दी का **आरंभकाल** मानते हैं और उनका जन्म बंगाल में मानते हैं। इतना होने पर भी ब्रिग्स अपनी मान्यता को अन्तिम सत्य स्वीकार नहीं करते। अतः निश्चित रूप से जोर देकर कुछ भी नहीं कहते। अतः मत्स्येन्द्र का काल **११वीं सदी सदी के पूर्व का ही** निश्चित होता है।

मत्स्येन्द्रनाथ की साधना का परवर्ती स्वरूप जिस सिंहलद्वीप में रूपायित हुआ उसकी स्थिति कहाँ है? वर्तमान गढ़वाल और कुमायूं के मध्य का अंचल **'स्त्रीराज्य'** कहा जाता है और कदलीवन भी **'स्त्रीराज्य'** कहा जाता है।[1] कुलूत देश (कुल्लू) को भी **'स्त्रीदेश'** कहा जाता है। हुएन्स्वांग ने सतलज के उद्गमस्थान के निकट के किसी स्थान को **'स्त्रीराज्य'** कहा है।[2] कोई-कोई 'कामरूप' को ही **'स्त्रीदेश'** कहते हैं।

---

१. नाथ-सम्प्रदाय। २. नाथ-सम्प्रदाय

महाभारत में जिस 'कदलीवन' का उल्लेख है उसमें अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य एवं परशुराम सदा निवास करते हैं। (महाभारत वनपर्व)

* मत्स्येन्द्रनाथ–एक विहंगमावलोकन *

मत्स्येन्द्रनाथ—मत्स्येन्द्रनाथ नाथ-पन्थ के आदि सिद्ध एवं इस पंथ के प्रवर्तक थे। वे महायोगी एवं महासिद्ध थे।

योगी चौरंगीनाथ कहते हैं—(१) सत्य गुर मछंद्रनाथ प्रसादे अम्हारा फीटला भ्रांति, सत्य सत्य भारवन्त चौरंगीनाथ अनंत पिंडेरा होइ मुक्ति॥' —प्राण सांकली

(२) 'ई अम्हारा भइला सासत, पाप कल्पना नहीं हमारे मन, हाथ पाँव कटाय रलाई लायला निरंजन वने, सोष संताप मने परभेव सनमुख देखीला श्री मछंद्रनाथ गुरुदेव नमसकार करीला नमाईला माथा।'' —चौरंगीनाथ

प्रेमदास कहते हैं—

'नमो आदिनाथ भए हैं सुनाथ
नमो सिध मछिन्द्रं बड़ो जोगिन्द्रं॥' —प्रेमदास

'आदिनाथो गुरुर्यस्य गोरक्षस्य च यो गुरुः।
मत्स्येन्द्रं तमहं वन्दे महासिद्धं जगद्गुरुम् ॥'

नाथपरम्परा में आदिनाथ भगवान शंकर के बाद सबसे महान आचार्य, सिद्ध एवं मान्यतम विभूति के रूप में मत्स्येन्द्रनाथ उच्चतम शीर्ष पर अवस्थित हैं। चूँकि आदिनाथ तो शिव का ही दूसरा नाम है, अतः नाथपरम्परा में मत्स्येन्द्रनाथ ही प्रथम आचार्य हैं और इस दृष्टि से उन्हें नाथसम्प्रदाय का प्रवर्तक कहना भी अतिशयोक्ति नहीं है। मानव-गुरुओं एवं आचार्यों में नाथसम्प्रदाय के प्रथम गुरु एवं प्रथम आचार्य मत्स्येन्द्रनाथ ही हैं।

यदि हम नेपाली-आस्था एवं नेपाली-जनश्रुति पर विचार करें तो मत्स्येन्द्रनाथ 'अवलोकितेश्वर' के अवतार थे। नाथ-परम्परा के आदि गुरु मत्स्येन्द्रनाथ **'कौलाचार' के भी सिद्ध पुरुष हैं। काश्मीरीय शैवागम में भी मत्स्येन्द्रनाथ** एक महान् सिद्ध पुरुष के रूप में मान्य हैं। क्या वे मीननाथ के पुत्र थे?

तिब्बती-अनुश्रुति के अनुसार तो वे **मीननाथ के ही पुत्र थे**। 'कौलज्ञाननिर्णय' के अनुसार **मीननाथ एवं मत्स्येन्द्रनाथ अभिन्न** हैं।

नेपाली-आस्था के अनुसार **'मीननाथ' मत्स्येन्द्र के अनुज** थे। स्वात्माराम मुनीन्द्र के मत से **'मीननाथ' एवं 'मत्स्येन्द्रनाथ' भिन्न-भिन्न** थे। 'बौद्धगान ओ दोहा' (गङ्गा पुरातत्त्वांक) तथा तिब्बती-अनुश्रुति के अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ **मीननाथ**

के पुत्र थे। 'वर्णरत्नाकर' से ज्ञात होता है कि मीननाथ एवं मत्स्येन्द्रनाथ एक ही सिद्ध के **दो नामान्तर** हैं।

चौरंगीनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ

मत्स्येन्द्रनाथ चौरंगीनाथ के गुरु थे। गोरखनाथ और चौरंगीनाथ गुरुभाई थे—'मछंदरनाथ गुरु अम्हारा, गोरखनाथ भाई।'' —चौरंगीनाथ

मत्स्येन्द्रनाथ अमर हैं क्योंकि—

'इत्यादयो महासिद्धा हठयोगप्रभावतः।
खण्डयित्वा कालदण्डं ब्रह्माण्डे विचरन्ति ते॥'

—हठयोग प्रदीपिका (१।९)

गुरु मत्स्येन्द्रनाथ ने ही चौरंगीनाथ के मन में उत्पन्न समस्त भ्रांतियों का उच्छेद किया था। चौरंगी नाथ कहते हैं—

'मूर्ति सतगुरु मछिंद्रनाथ प्रसादे आहारी फीटीला भ्रांति॥'

गोरक्षनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ

(क) गोरक्षनाथ अपने को मत्स्येन्द्र का दास कहते हैं—

'प्यण्ड ब्रह्मण्ड निरन्तर बास। भणंत गोरख मछंयद्र का दास।'

(ख) गोरखनाथ एवं मत्स्येन्द्र का परिचय देते हुए प्रतीकात्मक गुह्य भाषा में कहते हैं कि—

'अवधू ईश्वर हमारै चेला भणींजै।
मछींद्र बोलिए नाती॥'

(ग) वे फिर सरल भाषा में कहते हैं कि—

'भणंत गोरखनाथ मछींद्रनाथपूता अबिचल थीर रहांना॥'

(घ) गोरक्षनाथ मत्स्येन्द्र नाथ की कृपा के आभारी हैं—

(१) 'मछिन्द्र प्रसादैं गोरख बोल्या नित नवेलड़ी थाये।'
(२) 'गंगजमुन विच खेलै गोरख गुरु मछिन्द्र प्रसाद॥'
(३) 'मछिंद्र प्रसादै जती गोरख बोल्या निरंजन सिधि नै थानं।'

(ङ) गोरक्षनाथ अपने को मत्स्येन्द्र का पुत्र कहते हैं—

'भणत गोरखनाथ मछिंद्र नां पूता
मार्‌यो मृघ भया अवधूता॥'
'आदिनाथ-नाती, मछेंद्रनाथ पूता।
आरती करै गोरख औधूता॥'

(च) गोरक्षनाथ मत्स्येन्द्रनाथ को अपना गुरु कहते हैं—

'ॐ नमो सिवाई ॐ नमो सिवाइ, गुरु मछींद्रनाथ पादुका नमस्तते इति प्राण सकली ग्रंथ।'

मत्स्येन्द्रनाथ को **बँगला भाषा का आदि कवि** भी कहा जाता है।

'ज्ञानेश्वरी' (१८। ओ० १७५४) में कहा गया है कि समाधि के आकांक्षी मीन ने शिवोपदिष्ट योग को गोरक्षनाथ को दिया—

'मग समाधि अव्यत्या भोगावी वासना यया।
ते मुद्रा श्री गोरक्षराया दिघलीं मीनी॥'

मत्स्येन्द्र ही 'नारदपुराण' (६६।२७) के **'सिद्धनाथ'** हैं—

'सुतो ममायं किल मत्स्यनाथो विज्ञाततत्त्वोऽखिल सिद्धनाथ:।'

बौद्धसिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ को इन्द्रजाल का ज्ञाता, शक्तिसाधक तथा अवलोकितेश्वर कहते हैं और उन्हें तांत्रिक वज्रयानी, परम्परा के मंत्र—"ओम् मणि पद्मे हुम्।" का आराधक भी मानते हैं।

*** मत्स्येन्द्रनाथ शिवावतार के भी गुरु हैं ***

गोरखनाथी सम्प्रदाय के अवधूत गोरखनाथ को शिव का साक्षात् अवतार मानते हैं। मत्स्येन्द्रनाथ गोरक्षनाथ के गुरु हैं। जो गोरक्षनाथ स्वयं शिव के अवतार हैं, उनके भी गुरु मत्स्येन्द्रनाथ हैं अर्थात् मत्स्येन्द्र शिव के भी गुरु हैं। इससे बड़ी महिमा मत्स्येन्द्रनाथ की और क्या हो सकती है?

मत्स्येन्द्रनाथ आदि नाथ के शिष्य हैं—'हठयोगप्रदीपिका' के टीकाकार ब्रह्मानन्द ने अपनी 'ज्योत्स्ना' नामक टीका में मत्स्येन्द्रनाथ का परिचय देते हुए कहा है—

'सर्वेषां नाथानां प्रथमो नाथ: ततो नाथसम्प्रदाय: प्रवृत्त इति नाथसम्प्रदायिनो वदन्ति। मत्स्येन्द्राख्यश्च आदिनाथ-शिष्य:॥'

इस प्रकार मत्स्येन्द्रनाथजी नाथपरम्परा में आदिनाथ के शिष्य एवं नाथ परम्परा के प्रथमाचार्य हैं। वे नाथ-सम्प्रदाय के आदि गुरु (नाथ-सम्प्रदाय प्रवर्तक) और कौलाचार (कौलमत) के सिद्ध हैं। उन्हें नेपाल में भगवान अवलोकितेश्वर के अवतार के रूप में स्वीकार करके उनकी पूजा की जाती है।

गोरक्षनाथ का कथन है कि—(१) शिव हमारे शिष्य हैं और (२) मत्स्येन्द्रनाथ हमारे नाती शिष्य हैं। यदि यह उल्टी स्थापना नहीं की जाती तो सारी पृथ्वी के लोग 'निगुरे' (बिना गुरु के) रह जाते और प्रलय में समा जाते—

'अवधू स्यो हमारा चेला भणीजे मछिन्द्र बोलिए नाती।
निगुरी पृथिवी परले जाती ताथै उल्टी थापना थापी॥'

—गोरखबानी

यह कथन अभिधावृत्ति की दृष्टि से सत्य नहीं है। इसका 'कौलिकार्थ' या 'तत्त्वार्थ' पृथक ही है। इसके विपरीत गोरक्ष ने मत्स्येन्द्रनाथ को गुरु मान कर उनकी आरती भी की है और अपने को उनका पुत्र भी कहा है—

'आदिनाथ नाती मछेन्द्रनाथ पूता।
आरती करे गोरख अवधूता॥'

वे अपने को मत्स्येन्द्र का 'दास' भी कहते हैं—

'भणंत गोरखनाथ मछीन्द्र नां दासा।'

क्या मत्स्येन्द्रनाथ बौद्ध थे?

(१) बौद्धों के लुईपाद एवं मत्स्येन्द्र एक नहीं हैं।

(२) हर प्रसाद शास्त्री एवं डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि मत्स्येन्द्रनाथ कभी भी बौद्धधर्मावलम्बी नहीं थे। नेपाली बौद्ध मत्स्येन्द्रनाथ को 'अवलोकितेश्वर' का अवतार अवश्य मानते हैं।

(३) तारानाथ की दृष्टि—गोरक्षनाथ पहले बौद्ध तांत्रिक थे। तिब्बती इतिहासकार तारानाथ के अनुसार पहले गोरक्ष का नाम अनंगवज्र था। शास्त्रीजी के मत से 'रमणवज्र' नाम था।

* मत्स्येन्द्रनाथ विषयक विभिन्न उपाख्यान *

ज्ञानेश्वर की दृष्टि—श्री ज्ञानेश्वर 'भावार्थदीपिका' (ज्ञानेश्वर) के अठारहवें अध्याय में श्लोक क्रमांक ७८ (ओवी क्र० १७५०) पर प्रकाश डालते हुए मत्स्येन्द्रनाथ के विषय में यह कहते हैं—

'क्षीरसमुद्र के तट पर श्री शंकरजी ने पार्वती के कानों में न जाने कब एक बार जो उपदेश दिया वह क्षीरसागर की लहरों में किसी मत्स्य के पेट में, जो मत्स्येन्द्र-नाथ गुप्त थे, उनको प्राप्त हुआ। वे मत्स्येन्द्रनाथ सप्त शृंगपर्वत पर **चौरङ्गीनाथ** से मिले, जिनके हाँथ-पैर नहीं थे। मिलते ही **चौरङ्गीनाथ** सर्वाङ्ग हो गए। फिर अचल समाधि का उपभोग करने की आकांक्षा से मत्स्येन्द्रनाथ ने गोरक्षनाथ को उपदिष्ट किया।

बँगला साहित्य और मत्स्येन्द्रनाथ—बँगला-साहित्य में वर्णित नाथोपाख्यान मुख्यतः दो कथावृत्तों पर आधृत है। प्रथम में आदिनाथ (शिव) के मीननाथ (मत्स्येन्द्रनाथ) को शाप देने एवं उनका कदली भूमि में जाकर कामिनियों की संगति

में रहना और अपने महान शिष्य गोरखनाथ की योगशक्ति और उद्बोधन से पूर्ववत स्थिति को प्राप्त होने की कथा वर्णित है।

द्वितीय वृत्त में राजा गोपीचन्द (गोविन्द चन्द्र) के संसार-त्याग एवं शाश्वत जीवन की गवेषणा में नाथ योगी का व्रत लेने की कथा है।

मराठी साहित्य और मत्स्येन्द्रनाथ—पंजाबी और मराठी साहित्य में भी नाथ सिद्धों का वृत्तान्त तथा नाथों की योगोपासना का वर्णन मिलता है। इसी प्रसंग में मत्स्येन्द्रनाथ का वृत्त भी आया है।

मराठी साहित्य आदिनाथ से बिठोवा खेचर पर्यन्त अपनी गुरुपरम्परा स्वीकार करते हुए मत्स्येन्द्रनाथ को भी अपनी परम्परा में जोड़ता है—

'आदिनाथ गुरु सकल सिद्धाचा,
मच्छिन्द्र तयाचा मुख्य शिष्य,
मच्छिन्द्रा ने बोध गोरक्षासीं केला।
गोरक्ष वलला गाहिनी प्रती।।' आदि।।

मत्स्येन्द्रनाथ का लौकिक परिचय

नाथ-सम्प्रदाय के प्रथम मानव आचार्य, कौलमत के 'सिद्धामृतमार्ग' के अनुवर्ती एवं 'योगिनीकौलमार्ग' के प्रवर्तक तथा तंत्र एवं योग के समन्वयक मत्स्येन्द्रनाथ नाथपरम्परा के आदि सिद्ध हैं और भगवान शिव के शिष्य हैं।

नेपाल दरबार के पुस्तकालय में उपलब्ध **'नित्याह्निकतिलकम्'** नामक ग्रंथ में २५ कौलसिद्धों के नाम, उनकी जाति, उनके जन्मस्थान, उनकी चर्या का नाम, उनके गुप्त नाम, उनके कीर्तिनाम एवं उनकी शक्तियों के नाम का पूर्ण परिचय प्रस्तुत किया गया है जो इस प्रकार है—

मत्स्येन्द्रनाथ का परिचय

(१) **नाम**—विष्णु शर्मा (२) **जाति**—ब्राह्मण (३) **जन्मभूमि**—बारणा (बंगदेश) (४) **चर्यानाम**—श्रीगौडीशदेव (५) **पूजानाम**—श्रीपिप्लीश देव (६) **गुप्तनाम**—श्रीभैरवानन्दनाथ (७) **कीर्तिनाम**—वीरानन्दनाथ, इन्द्रानन्ददेव, मत्स्येन्द्रनाथ (तीन नाम) (८) **शक्ति नाम**—श्रीललिता भैरवी अम्बा बापू (८) **पुस्तकें**—कौलज्ञाननिर्णय, अकुलवीर तन्त्र, ज्ञानकारिका, कुलानन्द।

'तन्त्रालोक' में मत्स्येन्द्रनाथ को अद्वैतवादी 'त्र्यम्बक शाखा' के दुहित वंश में समुत्पन्न कहा गया है।

फ़यजुल्ला की दृष्टि में मत्स्येन्द्रनाथ—

'फ़यजुल्ला' ने 'गोरखविजय' में मत्स्येन्द्रनाथ का परिचय इस प्रकार दिया है—

''विषयजन्य माया-मोह का त्याग करके मीननाथ ध्यान में लीन हो गए और मन ही मन उन्होंने आदिनाथ गुरु के वचनों का स्मरण किया और क्रमशः ब्रह्मज्ञान से योगपूर्ण काया का उद्धार किया। उन्होंने योगाकांक्षा से अपनी काया को योगबल से पूर्ण करके सुस्थिर किया। महाज्ञान का स्मरण करने से माया नष्ट हो गई।''—

'माया छाड़ि मीननाथ वसिलेक ध्याने,
गुरुवचन सब सोइरिया मने।
ब्रह्मज्ञाने योगपूर्ण शरीर सकल,
क्रमे-क्रमे आपना सकल उद्धारिल।
योग साधि **मीननाथ** स्थिर कैल काया,
महाज्ञान पाइया **मीन** दूर कैल माया।।'

अघोर शिवाचार्य की दृष्टि—'मृगेन्द्रवृत्तिदीपिका' के 'विद्यापाद' में कहा गया है—'हिरण्यगर्भ-कपिलमत्स्येन्द्रादयो वेदसांख्यकौलादि तन्त्राणाम्।' इस प्रकार अघोरशिवाचार्य ने मत्स्येन्द्रनाथ को **कौलमार्ग के प्रवर्तक एवं प्रथम आचार्य** के रूप में प्रस्तुत किया है।

आचार्य अभिनव गुप्त की दृष्टि—आचार्य अभिनव गुप्त पादाचार्य ने **'तन्त्रालोक' के प्रथमाह्निक** में मत्स्येन्द्र नाथ को **'सकलकुलशास्त्रावतारक'** कहकर उनकी स्तुति की है। ये ही **'मच्छन्दविभु'** मत्स्येन्द्रनाथ हैं। कौलसम्प्रदाय में नाथ नामान्त अनेक आचार्य हो चुके हैं। 'कौल-सम्प्रदाय' से **'सौभाग्यविद्या सम्प्रदाय'** का अभिन्न सम्बन्ध है। कतिपय विद्वानों के मतानुसार 'सौभाग्य विद्या सम्प्रदाय' का प्रवर्तन भी इसी **'कौल-सम्प्रदाय'** से हुआ।

आचार्य अभिनवगुप्त मत्स्येन्द्रनाथ ('मच्छन्द') की स्तुति करते हुए कहते हैं—

'रागारुणं ग्रन्थिबिलावकीर्णं यो जालमातानवितानवृत्तिः।
कलोम्भितं बाह्यपथे चकार स्तान्मे स मच्छन्दविभुः प्रसन्नः।।'

टीकाकार जयरथ 'मच्छन्द' की व्याख्या करते हुए 'मच्छ' शब्द का अर्थ 'पाश' स्वीकार करके पाश अर्थात् चपल चित्तवृत्ति रूप पाशों का उच्छेद करने वाले सिद्ध को 'मच्छन्द' कहते हैं और प्रसन्नता की याचना करते हैं—

'मच्छाः पाशाः समाख्याताश्चपलाश्चित्तवृत्तयः।'
छेदितास्तु यदा तेन मच्छन्दस्तेन कीर्तितः।।

—श्रीतन्त्रालोक (प्रथमाह्निक १।७)

जयरथ मत्स्येन्द्र को **'सकल कुलशास्त्रावतारक'** कहते हैं।[१]

मत्स्येन्द्रनाथ ने भैरव-भैरवी से प्राप्त योग का विस्तार भी किया और महापीठ कामरूपपीठ में रहकर उसका उल्लेख भी दिया। निम्नाङ्कित श्लोक में 'मीननाथ' एवं 'मच्छन्द' दोनों शब्दों का उल्लेख किया गया है—

'भैरव्या भैरवात्प्राप्तं योगं व्याप्य ततः प्रिये।
तत्सकाशात्तु सिद्धेन **मीनाख्येन** वरानने।
कामरूप महापीठे **मच्छन्देन** महात्मना।।'

इन्हीं **'मच्छन्द विभु'** को जयरथ ने **'तुर्यनाथ'** कहा है।

जिस जाल का भञ्जन मत्स्येन्द्र ने किया, उसका स्वरूप क्या है? इस दिशा में जयरथ ने यह श्लोक उद्धृत किया है—

'मायारूपं भवेज्जालं दारयेत्कुलचिन्तकः।
विश्वाकारं महाजालं नाडीसूत्रनियोजितम्।
भुवनाक्षसमोपेतं तत्त्वग्रन्थिदृढ़ीकृतम्।
कला रागयुतं चैव...................।।'[२]

अभिनव गुप्तपादाचार्य ऐसे ही कौलमार्ग एवं महायोगी 'मच्छन्द' की प्रसन्नता (कृपा) के याचक हैं—

'स्तान्मे स मच्छन्दविभुः प्रसन्नः।।'[३]

नाथ पन्थ और मत्स्येन्द्रनाथ

हठयोगप्रदीपिकाकार की दृष्टि—स्वात्माराम मुनीन्द्र ने 'हठयोगप्रदीपिका' के प्रथम पटल में हठयोग के जिन महासिद्धों का नामोल्लेख किया है, उसमें आदिनाथ के पश्चात् मत्स्येन्द्रनाथ ही हैं—

'श्रीआदिनाथमत्स्येन्द्रशाबरानन्द भैरवाः।
चौरङ्गी-मीन-गोरक्ष-विरूपाक्ष-बिलेशयाः।।'

इसमें मत्स्येन्द्रनाथ के बाद शाबरानन्द आदि का नामोल्लेख करते हुए पृथक् से 'मीनगोरक्ष' नाम भी उल्लिखित किए गए हैं। क्या ये 'मीननाथ' मत्स्येन्द्रनाथ से पृथक् सिद्ध थे? स्वात्माराम ने 'मीननाथ' को पृथक सिद्ध माना है।

* मत्स्येन्द्रनाथ का आविर्भाव *

टीकाकार ब्रह्मानन्द 'ज्योत्स्ना' में कहते हैं कि नाथ सम्प्रदाय में मत्स्येन्द्रनाथ के आविर्भाव के विषय में एक प्रख्यात जनश्रुति है। कहा जाता है कि किसी समय

---

१. विवेक २. जयरथ : विवेक (१।७) ३. तन्त्रालोक (१।७)

नाथ-सम्प्रदाय के प्रसिद्ध महासिद्ध आदिनाथ भगवान शिव किसी द्वीप में स्थित होकर वहाँ एकान्त में भगवती गिरिजा को योग का उपदेश दे रहे थे। उस स्थान के निकट स्थित तट के जल में कोई मत्स्य था। उस योगोपदेश को उस मत्स्य ने भी सुन लिया और उसने इतनी एकाग्रता से सुना कि वह निश्चल हो गया। भगवान आदि नाथ ने यह जानकर कि इसने योगोपदेश तो सुन ही लिया,अपनी करूणा एवं अनुकम्पा के कारण उसका जल से प्रोक्षण किया। वह मत्स्य प्रोक्षण मात्र से दिव्यकाय मत्स्येन्द्र नामक सिद्ध हो गया। इसी मत्स्य के रूपान्तर को 'मत्स्येन्द्रनाथ' कहते हैं।

'स च प्रोक्षणमात्राद्दिव्यकायो मत्स्येन्द्रः सिद्धोऽभूत्।'
तमेव मत्स्येन्द्रनाथ इति वदन्ति।[१]

हठयोग के इन महासिद्धों में आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, शाबरानन्द, चौरङ्गीनाथ, मीननाथ, गोरक्षनाथ, विरूपाक्ष, बिलेशय, मन्थान भैरव, सिद्धिबुद्ध, कन्थडि, कोरण्टक, सुरानन्द, सिद्धिपाद, चर्पटि, कानेरी, पूज्यपाद, नित्यनाथ, कपाली, बिन्दुनाथ, काकचण्डीश्वर, अल्लाम, प्रभुदेव, घोडाचोली, टिण्टिणि, भानुकी, नारदेव, खण्डकापालिक इत्यादि महासिद्ध कालदण्ड का भी खण्डन करके ब्रह्माण्ड में विचरण करते रहते हैं— 'इत्यादयो महासिद्धा हठयोग-प्रभावतः।
'खण्डयित्वा कालदण्डं ब्रह्माण्डे विचरन्ति ते॥'[२]

मत्स्येन्द्रनाथ एवं मीननाथ—यद्यपि स्वात्माराम मुनीन्द्र ने 'हठयोगप्रदीपिका' में मत्स्येन्द्र एवं मीननाथ को पृथक-पृथक व्यक्ति स्वीकार किया है, किन्तु प्रबोधचन्द्र बागची महोदय ने 'कौलज्ञाननिर्णय' की भूमिका में कहा है कि 'मत्स्येन्द्रनाथ' एवं 'मीननाथ' दोनों एक ही नाथ सिद्ध के दो नाम हैं।

मीननाथ और मत्स्येन्द्रनाथ—अन्तर्सम्बन्ध

(१) तिब्बती जनश्रुति के अनुसार 'मीननाथ' मत्स्येन्द्रनाथ के पिता थे। ('बौद्ध गान ओ दोहा।')

(२) तिब्बती परम्परा के अनुसार 'मीननाथ' मत्स्येन्द्रनाथ के पिता थे।

(३) नेपाली परम्परा के अनुसार 'मीननाथ' मत्स्येन्द्रनाथ के अनुज थे।

(४) साम्प्रदायिक जनश्रुति के अनुसार 'मीननाथ' मत्स्येन्द्रनाथ के पुत्र थे।

(५) 'कौलज्ञाननिर्णय' के अनुसार[३] 'मीननाथ' एवं मत्स्येन्द्रनाथ दोनों अभिन्न हैं।

---

१. ज्योत्स्ना (१।५)

२. हठयोगप्रदीपिका (१।९)

३. 'कौलज्ञाननिर्णय'—मच्छन्द सकल कुल शास्त्रों के अवतारक के रूप में प्रथित हैं। 'स च सकलकुलशास्त्रावतारकतया प्रसिद्धः॥''

(६) तंत्रालोक की टीका 'विवेक' में उद्धृत एक प्रमाण यह सिद्ध करता है कि 'मीननाथ' एवं 'मच्छन्द' दोनों एक हैं, क्योंकि उसमें कहा गया है कि शिव ने पार्वती से कहा कि 'मीननाथ' नामक महासिद्ध 'मच्छन्द' ने कामरूप नामक महापीठ में मुझसे योग पाया था—

'तत्सकाशात्तु सिद्धेन **मीनाख्येन** वरानने।
कामरूपे महापीठे **मच्छन्देन** महात्मना॥'

(७) 'वर्णरत्नाकर' में प्रस्तुत विवरण के अनुसार—'वर्णरत्नाकर' नामक ग्रंथ में सिद्धों की जो सूची प्रस्तुत की गई है उसके अनुसार तो—

(क) प्रथम सिद्ध 'मीननाथ' हैं और (ख) ४१वें सिद्ध 'मीन' हैं।

इसमें प्रथमोल्लिखित 'मीननाथ' तो 'मत्स्येन्द्रनाथ' से अभिन्न हैं, किन्तु ४१वें 'मीन' नामक सिद्ध मीननाथ (मत्स्येन्द्रनाथ) की शिष्य-परम्परा के कोई परवर्ती सिद्ध का नाम है। इसी परवर्ती 'मीन' का उल्लेख (मत्स्येन्द्रनाथ से पृथक सिद्ध के रूप में) स्वात्माराम मुनीन्द्र ने भी 'हठयोगप्रदीपिका' में किया है।

(८) 'कौलज्ञान निर्णय' की पुष्पिका के अनुसार मच्छन्द या मत्स्येन्द्रनाथ 'योगिनीकौल ज्ञान' के अवतारक हैं।

(९) डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि—'प्राचीन काल में मत्स्येन्द्रनाथ का नाम ही मीन या मीननाथ माना जाता था।'[१]

मत्स्येन्द्रनाथ का नामकरण और उसमें निहित उद्देश्य—यदि मत्स्येन्द्रनाथ जल के मत्स्य थे तब तो 'मत्स्येन्द्र' नाम पड़ना ही था। किन्तु क्या मत्स्येन्द्रनाथ के नाम के रहस्यार्थ या प्रतीकार्थ को प्रामुख्य देकर उनके नाम को महिमान्वित नहीं किया गया और उसी प्रतीकार्थ के अनुरूप उनके स्वरूप को स्वीकार करके उसे महत्ता प्रदान नहीं की गई?

अभिनव गुप्त पाद की दृष्टि—अभिनव गुप्त पाद ने उनके मछुआरे के रूप में स्वीकार न करके उनके नाम के निहितार्थ—'चपल इन्द्रिय रूप मत्स्यों को उच्छिन्न करने वाले एवं माया के महाजाल को तोड़ने वाले महासिद्ध''—के रूप में ग्रहण किया—

'रागारूणं ग्रंथिबिलावकीर्णं
यो जालमातानवितानवृत्तिः।
कलोम्भितं बाह्यपथे चकार,
स्तान्मे स **मच्छन्दविभुः** प्रसन्नः॥'

१. नाथ सम्प्रदाय (पृ० ४३)

जयरथ की दृष्टि—आचार्य जयरथ ने भी मत्स्येन्द्र के नाम को इसी प्रकार परिभाषित करके उसके प्रमाण में दो उद्धरण प्रस्तुत किए हैं—

'मच्छाः पाशाः समाख्याताश्चपलाश्चित्तवृत्तयः।
छेदितास्तु यदा तेन मच्छन्दस्तेन कीर्तितः।।'

वे कहते हैं—'पाशखण्डनस्वभावो मच्छन्द एव परमेश्वरसमावेशशालित्वात् विभुः मम् प्रसन्नः स्तात् स्वात्मदर्शनसंविभागपात्रतामाविष्कुर्यात्। यो जालं मत्स्यबन्धनम् इन्द्रजालप्रायां च मायां।। आदि।।[1]

मीनपा—तारानाथ के अनुसार 'मीनपा' मत्स्येन्द्रनाथ के पिता और गुरु दोनों थे। वे कामरूप के मछुआरा थे। वे एक बार जाल में फँस कर स्वयं भी मछली के पेट में चले गए और उसमें कई वर्षों तक रहे। वे मछली के पेट में ही ब्रह्मपुत्र में बहते-बहते 'उमागिरि' के समीप पहुँचे। यहाँ उमा एवं शिव में तंत्र-वार्ता चल रही थी। मीनपा नामक इस मत्स्य रूप सिद्ध ने उस उमा-शिव की तन्त्र-वार्ता को सुनकर उसके रहस्य को जान लिया और उससे सिद्धि प्राप्त की।

उनके तीन शिष्य हुए—१. हाली, २. माली, ३. तम्बूली। मीननाथ के काल में बौद्ध एवं शैव दोनों परम्परायें बहुत निकट आकर परस्पर मिश्रित होने लगी थीं। इनका झुकाव शैव मत की ओर अधिक था।[2]

गोरक्षनाथ ने 'गोरक्षशतक' में मत्स्येन्द्रनाथ को 'मीननाथ' कहकर उनकी इस प्रकार वन्दना की है—

'श्री गुरुं परमानन्दं वन्दे स्वानन्दविग्रहम्।
यस्य सान्निध्यमात्रेण चिदानन्दायते तनुः।।
अन्तर्निश्चलितात्मदीपकलिका स्वाधारवेधादिभिः।
यों योगी युगकल्पकालकलना तत्त्वं च जेगीयते।
ज्ञानामोदमहोदधिः समभवद यत्रादिनाथः स्वयं।
व्यक्ताव्यक्तगुणाधिकं तमनिशं श्रीमीननाथं भजे।।'

—गोरक्ष शतक १-२

यह भी आश्चर्य की बात है कि गोरक्षनाथ ने 'गोरक्षसंहिता', 'योग बीज',

---

१. विवेक (१/७)
'मायारूपं भवेज्जालं दारयेत्कुलचिन्तकः।
विश्वाकारं महाजालं नाडीसूत्र नियोजितम्।। आदि।
२. सिद्ध साहित्य (धर्मवीर भारती)

'सिद्धसिद्धान्तपद्धति', 'योगमार्तण्ड', 'अमनस्कयोग' आदि योग-ग्रंथों में मत्स्येन्द्रनाथ का नामोल्लेख करते हुए भी गुरु वन्दना नहीं की है। हाँ—'अमरौघ प्रबोध' में 'मीननाथ' कहकर, 'गोरक्षशतक' में 'श्री गुरुं परमानन्द' कहकर, 'विवेकमार्तण्ड' में भी 'श्रीगुरुं परमानन्दं वन्दे स्वानन्द विग्रहं' कहकर, गुरु-वन्दना अवश्यक की है, किन्तु आदिनाथ शिव को कहीं भी विस्मृत नहीं किया है। **इस उपेक्षा का क्या कारण है**? 'योगमार्तण्ड' में तो उन्होंने 'आदिनाथ' को भी विस्मृत कर दिया है।

'लुईपा', 'मीननाथ' एवं मत्स्येन्द्रनाथ—यह भी कहा गया है कि—

(१) लुईपा (संभवतः) मत्स्येन्द्र से कुछ पहले हुए थे क्योंकि **मत्स्येन्द्र के पिता 'मीननाथ'** कहे गए हैं और मीननाथ बौद्ध थे। मीननाथ प्रत्येक बौद्ध-परम्परा में लुईपा के बाद आते हैं। इतिहासकार तारानाथ ने मीननाथ को कुक्कुटी का शिष्य बताया है और कहा है कि कुक्कुटी ने लुईपा का आम्नाय ग्रहण किया था।

(१) लुईपा—(२)सिद्ध कुक्कुटी— (३) मीननाथ।

लुईपा मत्स्येन्द्र से कुछ पूर्व हुए थे।

सिद्ध मीनपा या मीननाथ 'लुईपा' के बाद हुए। मत्स्येन्द्र एवं लुईपा को अभिन्न मानने का कोई भी सबल आधार नहीं मिलता। केवल नामसाम्य के आधार पर दोनों को एक सिद्ध करने का आग्रह ठीक नहीं है।[१]

'अमरौघ प्रबोध' में 'मीननाथ' एवं 'मीनोदरे' दोनों शब्दों का एक साथ प्रयोग करने वाले ग्रंथ 'श्री सम्पुट' को उद्धृत किया गया है। 'श्री सम्पुट' में कहा गया है कि—

'विभ्राणः पवनं हठान्नियमितं ग्रासोऽस्ति **मीनोदरे**।
कैवल्यो भगवान्विमुच्य सहसा यावन्न चेतत्यसौ।
तं चोक्त्वा गिरिशेन भाषितमिदं कालो न चेतः परं।
पार्वत्या सह **मीननाथ**मवदन्नित्यं चिरं जीमहि।।'[१]

यहाँ 'मीनोदरे' 'पार्वत्या सह मीननाथ' दोनों शब्दों का प्रयोग 'पार्वती' के साथ किया गया है।

(१) मीननाथ की मत्स्य के उदर में स्थिति ('मीनोदरे)।

(२) पार्वती का मीननाथ के साथ सम्पर्क ('पार्वत्या सह मीननाथमवदन)।

(३) मीननाथ द्वारा चिरंजीवत्व के वरदान की प्रार्थना—आदि तत्त्व मत्स्येन्द्र के मत्स्योदर में पलने एवं पार्वती की कृपा से सिद्ध बनना संकेतित करते हैं।

---

१. धर्मवीर भारती—सिद्ध साहित्य।

राहुल सांकृत्यायन की दृष्टि—राहुल जी ने 'गंगा पुरातत्त्वाङ्क' नामक ग्रंथ में अनेक तर्क प्रस्तुत करके सिद्ध किया है कि बौद्ध सिद्धों में मछुआरा जाति का कोई न कोई एक 'मीनपा' नामधारी सिद्ध हुआ था।

तारानाथ का कथन है कि गोरक्षनाथ पहले बौद्ध थे और उनका नाम 'अनङ्गवज्र' था। (**शास्त्री जी के अनुसार** 'अनङ्गवज्र' नहीं 'रमणवज्र' था।)

यह कथन प्रमाणित नहीं होता कि गोरक्ष नाथ कभी बौद्ध थे। नेपाली बौद्ध गोरक्ष से घृणा करते हैं; अतः यह सिद्ध नहीं होता कि गोरक्षनाथ पहले बौद्ध थे, किन्तु बाद में बौद्ध धर्म का त्याग करके नाथ पंथ में दीक्षित हो गए और इसी कारण नेपाली बौद्धों की दृष्टि में घृणास्पद बने।

सारांश यह है कि मत्स्येन्द्रनाथ एवं गोरक्षनाथ दोनों ही कभी बौद्ध नहीं थे। 'तारानाथ' का यह कथन कि सेन राजवंश के पराजयोपरान्त गोरक्षनाथ मुसलमान विजेताओं के कोपभाजन नहीं बनना चाहते थे। अतः उन्होंने बौद्ध धर्म का त्याग करके हिन्दुओं के शिव के आराधक बन गए—प्रमाण-सिद्ध नहीं है। अतः मान्य भी नहीं हो सकता। एक सिद्ध योगी (शिव का अवतार माना जाने वाला एवं अनन्त सिद्धियों का स्वामी एक महान योगी) ने मुसलमानों से डरकर अपना धर्म छोड़ दिया; यह बिल्कुल अप्रामाणिक प्रतीत होता है। गोरक्षनाथ एवं मत्स्येन्द्रनाथ दोनों ईश्वरवादी थे जबकि बौद्ध अनीश्वरवादी। गोरक्ष एवं मत्स्येन्द्र ने बौद्ध दर्शन का खण्डन भी किया है। दोनों के पीठ एवं तीर्थ भी पृथक हैं और दार्शनिक सिद्धान्त भी।

*** अन्तः साक्ष्य के आधार पर मत्स्येन्द्र नाथ ***

'गोरक्षशतक', 'विवेकमार्तण्ड' एवं 'गोरक्षसिद्धान्त संग्रह' में (तीनों में) 'श्रीमीननाथं भजे' वाला श्लोक (किञ्चित परिवर्तन के साथ) पाया जाता है। इसमें 'मीननाथ' की स्तुति की गई है—

'अन्तर्निश्चलितात्मदीपकलिका स्वाधारवेधादिभि-
र्यो योगीयुगकल्पकालकलनात्तत्त्वं च यो गीयते।
ज्ञानान्मोदमहोदधिः समभवद्यत्रादिनाथं स्वयं।
व्यक्ताव्यक्तगुणाधिकं तमनिशं श्रीमीननाथं भजे।'

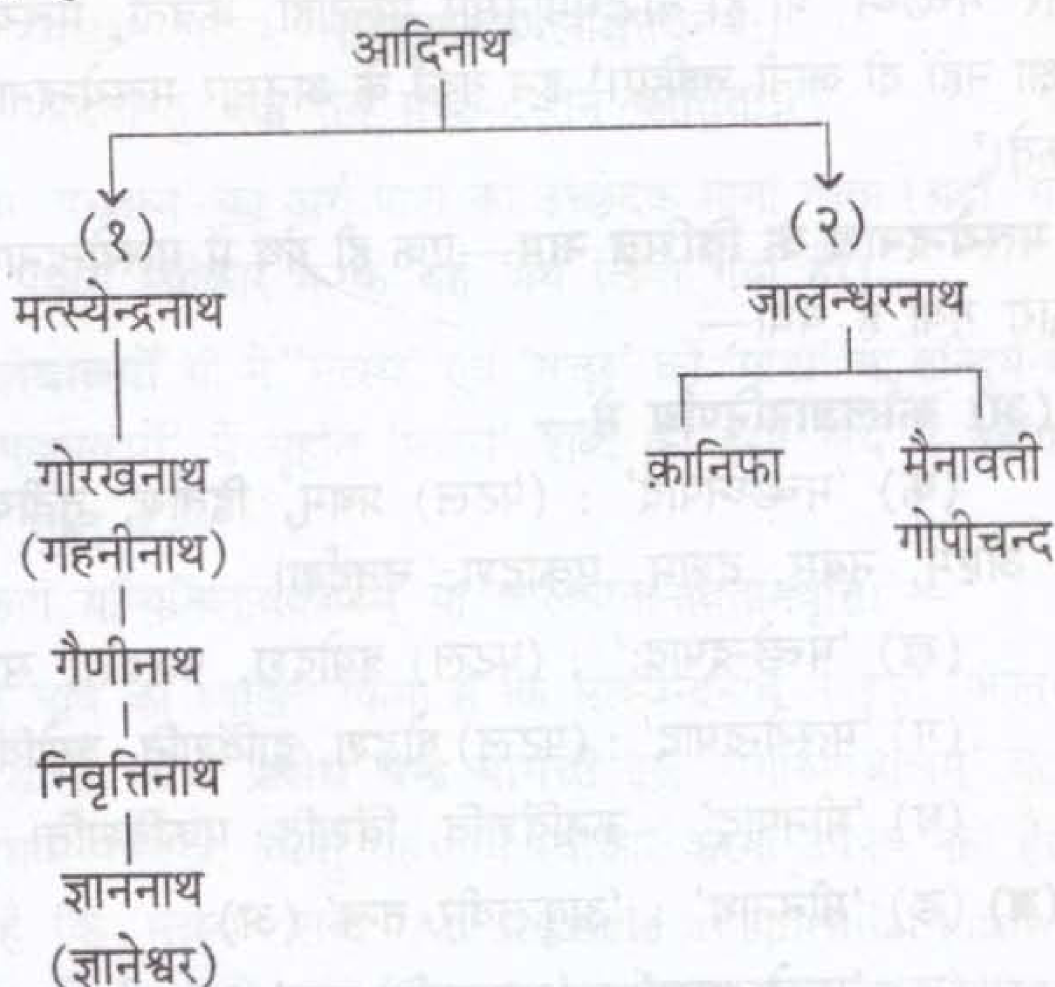
अतः यह प्रमाणित होता है कि भले ही बौद्ध-परम्परा में कोई 'मीनपा', 'मीननाथ' या 'मीन' नामक सिद्ध रहे हों किन्तु 'मीननाथ' नाम वाला एक सिद्ध नाथ-पन्थ में ही सदा से रहा है और वह मत्स्येन्द्रनाथ से अभिन्न है।

रागमार्गी बौद्ध तांत्रिक सिद्ध लतासाधन, योगिनी-साहचर्य व 'महामुद्रा-साधना'

आदि में विश्वास रखते थे; किन्तु नाथपन्थी ब्रह्मचर्य में विश्वास करते थे। अतः इस दृष्टि से भी बौद्धों और नाथ-सिद्धों में दृष्टि-भेद है।

* नाथ सम्प्रदाय और महाराष्ट्रीय वारकरी सम्प्रदाय *

महाराष्ट्र के वारकरी-सम्प्रदाय ने 'नाथ-सम्प्रदाय' की भाँति अपने सम्प्रदाय का आदि प्रवर्तक 'आदिनाथ' को एवं (मानव रूप में) आदि सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ को स्वीकार करते हुए अपने वंशवृक्ष का 'स्वरूप ('अमृतानुभव' एवं 'ज्ञानेश्वरी' में) इस प्रकार प्रस्तुत किया है—



(गोरखनाथ ज्ञानेश्वर के प्रपतिमाह श्री त्र्यम्बक पन्त के समकालीन थे। त्र्यम्बक पन्त भी गोरखनाथ की शरण में गए थे।) गहिणीनाथ गोरखनाथ के शिष्य थे।

बौद्ध-परम्परा और मत्स्येन्द्रनाथ—कतिपय विद्वान मत्स्येन्द्रनाथ को बौद्ध-परम्परा से जोड़कर उन्हें बौद्धों के ८४ सिद्धों में अन्तर्गणित करते हुए लुईपाद एवं मत्स्येन्द्रनाथ दोनों को अभिन्न स्वीकार करते हैं।

सहजयानी बौद्ध सिद्धों में आदि सिद्ध 'लुईपाद' माने जाते हैं। यद्यपि **राहुल सांकृत्यायन** सहजयानी बौद्धों के आदिसिद्ध लुई को नहीं प्रत्युत् सरोरुह वज्र (सरहपाद) को स्वीकार करते हैं तथापि सहजयानी लुई को आदि सिद्ध मानते हैं।

('लोहित' = रोहित = मत्स्य = रोहित—लोहित—लुई (मछली)॥

तिब्बती अनुश्रुति और लुईपाद—'बौद्धगान ओ दोहा' के प्रामाण्यानुसार तिब्बती किंवदन्ती की मान्यता यह है कि 'लुई' का नामान्तर 'मत्स्यान्त्राद' (मत्स्यों

की 'अँतड़ी खाने वाला) है। 'मत्स्यान्त्राद' से मिलता जुलता 'मच्छघ्न' शब्द भी है अतः लुई एवं मत्स्येन्द्र अभिन्न हैं।

हरप्रसाद शास्त्री की दृष्टि—यद्यपि नेपाली बौद्ध मत्स्येन्द्रनाथ को अवलोकितेश्वर का अवतार स्वीकार करते हैं; तथापि **हर प्रसाद शास्त्री** का कथन है कि मत्स्येन्द्रनाथ कभी बौद्ध नहीं थे। अपने कथन के प्रमाण के रूप में वे यह तर्क देते हैं कि बौद्धों का सिद्धान्त है—

"अहिंसा परमो धर्मः"—किन्तु मत्स्येन्द्रनाथ तो मत्स्यघ्न थे और उनका नामान्तर 'मच्छघ्न' भी है। बौद्धधर्मानुसार मल्लाहों, कैवर्तों, मत्स्यघ्नों को बौद्ध धर्म की दीक्षा नहीं दी जानी चाहिए।[1] इन तर्कों के अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ कभी बौद्ध नहीं हो सकते।[2]

मत्स्येन्द्रनाथ के विभिन्न नाम—एक ही ग्रंथ में मत्स्येन्द्रनाथ को अनेक नामों से पुकारा गया है यथा—

(अ) कौलज्ञाननिर्णय में—

(क) 'मच्छघ्नपाद' : (पटल) प्रथम्, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम्, सप्तम्, अष्टम्, नवम्, दशम्, एकादश, चतुर्दश।

(ख) 'मच्छेन्द्रपादः' : (पटल) त्रयोदश, पञ्चदश, सप्तदश।

(ग) 'मत्स्येन्द्रपाद' : (पटल) षोडश, द्वाविंशति, त्रयोविंशति, चतुर्विंशति।

(घ) 'मीनपाद' :- ऊनविंशति, विंशति, एकविंशति।

(ब) (ङ) 'मीननाथ' : 'अकुलवीर तन्त्र' (अ)

(च) 'मच्छेन्द्रपाद' : 'अकुलवीर तन्त्र' (ब)

(स) (छ) 'मत्स्येन्द्र' : 'कुलानन्द कारिका।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वयं मत्स्येन्द्र-प्रणीत ग्रंथों में भी मत्स्येन्द्र के विभिन्न नाम उल्लिखित हैं।

(द) (ज) 'ज्ञानकारिका' (तृतीय) में मत्स्येन्द्रनाथ का नाम—'मच्छिन्द्रनाथपाद' लिखा हुआ है।

* मच्छघ्न नाम और उसका अर्थ *

'मत्स्याभिघातिनैर्विप्रा मत्स्यघ्नमेति विश्रुताः।
कैवर्तत्त्वं कृतं यस्मात् कैवर्त्तो विप्रनायकः॥'

---

१. बौद्ध गान ओ दोहा।
२. बौद्ध गान ओ दोहा।

चूँकि मत्स्येन्द्रनाथ एक कैवर्त का आचरण करते थे। अत: ब्राह्मण होकर भी वे 'मत्स्येन्द्र' के नाम से पुकारे गए।

मत्स्येन्द्रनाथ ब्राह्मण थे—तन्त्रालोककार ने 'मत्स्यघ्न' का लाक्षणिक अर्थ देकर इसे 'चपल इन्द्रिय रूप मत्स्यों को वध करने वाला' अर्थ का बोधक बना डाला।

जयरथ ने भी लाक्षणिक अर्थ देकर—'मच्छ' को चपल चित्तवृत्तियों के पाश का बोधक कहकर उसके उच्छेदक को 'मच्छन्द' माना—

'मच्छा: पाशा: समाख्यातश्चपलश्चित्तवृत्तय:।
छेदितास्तु यदा तेन मच्छन्दस्तेन कीर्तित:॥'

'मच्छन्द' या 'मच्छघ्न' का अर्थ पाश का उच्छेदक माना गया। (यहाँ 'मच्छन्द' को 'मच्छघ्न' का पर्याय स्वीकार करके यह अर्थ लिया गया है।)

काश्मीरी शैवाचर्यों भी ने 'मत्स्य' एवं 'मच्छ' को 'पाश' या इन्द्रिय के अर्थ में ग्रहण किया। 'पञ्चमकारों' में गृहीत 'मत्स्य' शब्द को इसी अर्थ में ग्रहण किया गया है। **अभिनव गुप्त ने**—

'रागारुणं ग्रन्थिबिलावकीर्णम् यो जालमातानवितानवृत्ति।'—

कहकर इस भाव को व्यञ्जित किया है कि मत्स्येन्द्रनाथ ने इसी 'जालमातान-वितान' को तोड़ डाला। **प्रो० प्रबोध चन्द्र बागची** इस 'रागारुणजालम्' को मत्सर या मात्सर्य का बोधक माना है; किन्तु यह अर्थ स्वीकार करना उपपन्न नहीं है। उनका यह कथन सही है कि 'मत्स्य' शब्द 'An obstacle to spiritual knowledge' (आध्यात्मिक ज्ञान की दिशा में एक विघ्न या अवरोधक तत्त्व) का बोधक है।

'चतुष्पीठतन्त्र' की हिन्दी टीका में दुर्जयचन्द्र (टीकाकार) 'प्रज्ञा' को ही 'मकर' और 'मीन' का ज्ञापक घोषित करते हैं—

'प्रज्ञामकरमीनकैरिति सर्वभावानाम् नि:स्वभावता। प्रज्ञा तया च सर्वेन्द्रियाणि प्राणिनैव मकरमीनकैर्व्यापाद्यन्ते इति साधर्म्यात् प्रज्ञैव मकरमीनायते॥[१]

Prof. Tucci : Animadevev siones Indicae'—में कहते हैं कि—इसका अर्थ यह नहीं है कि 'मत्स्येन्द्र' को एक व्यक्ति नहीं प्रत्युत् एक उच्च आध्यात्मिक स्तर पर आरूढ़ एवं आध्यात्मिक-अनुभूति-सम्प्राप्त लोगों का एक सिद्ध वर्ग भी नहीं माना जा सकता। 'कौलज्ञाननिर्णय' में प्रयुक्त 'मत्स्य', 'मत्स्येन्द्र', 'मत्स्यघ्न' एवं 'मच्छघ्न' कोई आलङ्कारिक उपाधि या विशेषण नहीं है प्रत्युत् इसका अर्थ है कैवर्त या मछुवारा।

---

१. चतुष्पीठतन्त्र की टीका (पटल तृतीय)

मत्स्येन्द्र के उपदेशों की विविध प्रकार से व्याख्यायें किए जाने के ही साथ उनके नाम की भी अनेक प्रकार से व्याख्यायें की जाने लगीं। अत: 'मत्स्येन्द्र' नाम (अभिनव गुप्त आदि की व्याख्या में) किसी आत्मिक उच्चता के स्तर का बोधक बन गया।[१]

'मीननाथ' एवं 'मत्स्येन्द्रनाथ' में से मीननाथ को मत्स्येन्द्रनाथ का पुत्र भी माना जाता था।

बागची जी की दृष्टि में ये दोनों नाम पर्यायवाची हैं। यदि 'कौलज्ञाननिर्णय' के अन्तिम अध्यायों के 'Colophons' में 'मीननाथ' या 'मीनपाद' आया हुआ होता तब तो हम उन्हें मत्स्येन्द्रनाथ का उत्तराधिकारी मान लेते; किंतु जिन अध्यायों के अन्त में उनका नाम आता है, वे मध्य के हैं। अत: 'कौलज्ञाननिर्णय' के प्रणयन की समाप्ति के समय भी ये विविध नाम एकार्थक ही थे और एक ही व्यक्ति के बोधक थे।[२] 'अकुलवीरतन्त्र' (अ) में प्रयुक्त 'मीननाथ' एवं 'अकुलवीरतन्त्र' (ब) में प्रयुक्त 'मच्छेन्द्रपाद' भी एक ही व्यक्ति के नाम हैं।[३]

प्रबोध चन्द्र बागची का मत—प्रो० बागची का कथन है कि मत्स्येन्द्रनाथ का इतिहास एक संग्रंथित समस्या है और विभिन्न विद्वानों के द्वारा अथक चिन्तन-मनन के बाद भी आज तक कोई भी सर्वसम्मत एवं निश्चित निर्णय नहीं निकल सका—

The history of Matsyendranath has been a knotty problem for a long time and has been discussed by different scholars without leading to any definite result.[3]

मत्स्येन्द्रनाथ के सम्बन्ध में सर्वाधिक प्राचीन जानकारी केवल 'कौलज्ञाननिर्णय' से ही प्राप्य है।

* भगवान शिव द्वारा मत्स्येन्द्रनाथ को आत्मस्वरूप घोषित किया जाना *

'कौलज्ञाननिर्णय' के सोलहवें अध्याय में भगवान शिव (भैरव) अपने विभिन्न अवतारों पर प्रकाश डालते हुए मत्स्येन्द्रनाथ को अपने से अभिन्न घोषित करते हैं—

'अहं सो धीवरो देवी ! अहं वीरेश्वर: प्रिये।।'

---

१. कौलज्ञाननिर्णय (प्रबोध चन्द्र बागची की भूमिका)
२. तथैव
३. तथैव

(१) * कौलज्ञाननिर्णयोक्त मत्स्येन्द्र का वृत्तान्त *

'कौलज्ञाननिर्णय' के २१वें तथा २२वें अध्याय में भगवान शिव देवी से कहते हैं कि—

वह मैं ही तो था, जिसने आपके समक्ष उस गुप्त ज्ञान को अनावृत किया था। मैंने ही कामरूप में कार्तिकेय के प्रदत्त गुप्त ज्ञान को अनावृत किया था। यह ज्ञान 'कौलागम' का ज्ञान था, जिसे मैंने 'चन्द्रद्वीप' में सुरक्षित रखा था। फिर शिव ने उस घटना का भी स्मरण कराया जो कि इस गुप्त ज्ञान से सम्बद्ध थी। उन्होंने कहा कि हम तुम्हारे साथ 'चन्द्रद्वीप' गए थे। उसी समय 'कार्तिकेय' बटुक (शिष्य) बनकर हमारे समक्ष आए। यद्यपि वे अज्ञानी थे, तथापि मैंने उन्हें यह ज्ञान दिया। उस स्कन्द ने उस ज्ञान को चुराकर समुद्र में फेंक दिया। मैं समुद्र में गया और मैंने उस मत्स्य को पकड़ लिया, जिसने उस कौलशास्त्र को निगल लिया था। मैंने उसका पेट फाड़कर उस ग्रंथ को पुनः प्राप्त कर लिया। मैंने उसे गुप्त स्थान में छिपा दिया। किन्तु कार्तिकेय ने क्रुद्ध होकर मूषक का रूप धारण कर लिया और इस ग्रंथ को पुनः चुराकर समुद्र में फेंक दिया। इस बार इस ग्रंथ को एक महान आकार वाले महामत्स्य ने उदरस्थ कर लिया—

'दशकोटि प्रमाणेन महामत्स्येन भक्षितम्।'

इस घटना से क्रुद्ध होकर मैंने 'शक्तिजाल' निर्मित करके उससे उस महामत्स्य को खींचा (आकर्षित किया)। वह मेरे समान शक्तिशाली था। वह ज्ञानतेज से पूर्ण एवं अपराजेय था। मैंने धीवर का स्वरूप धारण किया और शक्तिजाल से उसे पकड़कर उसका पेट फाड़ डाला। इस प्रकार पुनः कुलागम को (मत्स्योदर से) बाहर निकाल लिया। हे देवी ! यद्यपि मैं ब्राह्मण था तथापि मैंने धीवर (Fishman) की भूमिका निभाई और चूँकि मैंने मत्स्य को मारकर उसके पेट से कौलागम बाहर निकाला; अतः मेरा 'मत्स्यघ्न' नाम पड़ा। कौलज्ञाननिर्णय में कहा गया है—

ब्राह्मणोऽपि महापुण्ये कैवर्तत्वं मया कृतः।
मत्स्याभिघातिनैर्विप्रा मत्स्यघ्नमेति विश्रुताः।
कैवर्तत्वं कृतं यस्मात् कैवर्तो विप्रनायकः॥

भैरव ने अपने ब्राह्मणत्व का त्याग करके धीवर का स्वरूप धारण करके उस महामत्स्य का वध किया इसी कारण मत्स्यविदारक का नाम 'मत्स्यघ्न' पड़ा।

निष्कर्ष यह है कि—(१) चन्द्रद्वीप में एक धीवर ने 'कौलागम' का उद्धार किया और इसी धीवर ने इस कौलागम को चन्द्रद्वीप में व्यक्त किया था।

मत्स्येन्द्रनाथ ब्राह्मण थे किन्तु कौलागम के उद्धारार्थ उन्हें विवश होकर धीवर बनना पड़ा।

(२) मत्स्येन्द्रनाथ ने पहली बार यह कौलज्ञान कामरूप में शिष्यों को (उपदेशों के माध्यम से) प्रदान किया।

(३) जब इस ग्रंथ का लेखन किया गया तब तक मत्स्येन्द्रनाथ को शिव का अवतार स्वीकार किया जा चुका थ।

(४) चन्द्रद्वीप से यह कौलागम कार्तिकेय ने चुराया था। चूहे का रूप धारण करके और इसे चुराकर कार्तिकेय ने इसे समुद्र में फेंक दिया था। मत्स्येन्द्रनाथ ने इस कुलागम शास्त्र को समुद्रस्थ महामत्स्य का पेट फाड़कर निकाला था। इसी कारण मत्स्येन्द्र का नाम 'मत्स्यघ्न' पड़ा।

(२) * बंगाल में प्रचलित मत्स्येन्द्र विषयक उपाख्यान *

यह कथा मुख्यतः फ़याजुल्ला द्वारा प्रणीत 'गोरक्षविजय' एवं श्यामादास-विरचित—'मीनचेतन' नामक पुस्तकों की है।

इस कथा के अनुसार—शिव एवं चार सिद्धों (मीन, हाडिपा, गोरक्षनाथ एवं कानुफ़ा) का जन्म विधाता से प्रत्यक्ष रूप में हुआ।

आद्य और आद्या शक्ति ने सर्वप्रथम देव सृष्टि की और तदुपरान्त चार सिद्धों को जन्म दिया। इसके उपरान्त गौरी नामक कन्या उत्पन्न करके उसे विवाहार्थ शिव को दे दिया। शिव गौरी को लेकर पृथ्वी पर चले आए।

मीननाथ, गोरक्षनाथ, हाड़िका (जालंधरिनाथ) एवं कानफ़ा (कानूपा या कृष्णपाद) ने अन्नाहार का त्याग करके मात्र वायु के आहार पर रहकर योगाभ्यास प्रारम्भ किया।

गोरक्षनाथ ने मीननाथ का एवं कानपा (कृष्णपाद) ने हाड़िपा (हाड़िफ़ा या हाडिफ़ा) का शिष्यत्व ग्रहण किया।

एक दिन गौरी ने शिव के गले में पड़ी मुण्डमाला का रहस्य पूछा तो शिव ने कहा कि यह मुण्डमाला तो तुम्हारे मुण्डों की माला है। गौरी ने अपनी मृत्युधर्मिता एवं शिव के मृत्युञ्जयत्व का कारण पूछा तो शिव ने उस रहस्य को, क्षीरसागर में एक नाव पर चढ़कर, वहाँ एकान्त में बताने की बात कही। शिव और देवी दोनों क्षीरसागर में पहुँचे तो मीननाथ मत्स्य बनकर नीचे बैठ गए। शिव ने अमरत्व का रहस्य बताना प्रारंभ किया तो देवी को निद्रा आ गई; किन्तु उनकी नींद के समय मीननाथ निरन्तर हुँकारी भरते रहे। जगने पर देवी ने कहा कि 'मुझे नींद आ गई थी; अतः मैंने उपदेश तो सुना ही नहीं।' शिव ने हुँकारी भरते रहने वाले व्यक्ति का

परिचय जानने के लिए जब ध्यान किया तो नाव के नीचे मीननाथ को छिपा पाया। उन्होंने क्रुद्ध होकर शाप दिया कि तुम महाज्ञान भूल जाओगे।

देवी ने कैलाशस्थ शिव से आग्रह किया कि आप सिद्धों को विवाह करके वंश चलाने हेतु आज्ञापित कीजिए। शिव ने उन्हें काम के विकार से परे बताया। देवी ने सिद्धों की परीक्षा लेने हेतु, शिव से अनुमति, लेकर उनकी परीक्षा ली। उस समय पूर्व में हाड़िफ़ा, दक्षिण में कानफ़ा, पश्चिम में गोरक्ष एवं उत्तर में मीननाथ तप कर रहे थे। भगवान शिव ने चारों का आवाहन किया। जब वे चारों सिद्ध उपस्थित हुए तो देवी ने भुवनमोहिनी का रूप धारण करके सिद्धों को भोजन परोसा। चारों ही सिद्ध देवी पर मुग्ध हो गए। **मीननाथ** ने सोचा कि यदि ऐसी सुन्दरी मुझे प्राप्त हो जाय तो उसके साथ सारी रात आनन्द से काट सकूँ। देवी ने मीननाथ को शाप दिया कि तुम कदली देश में महाज्ञान भूलकर वहाँ १६०० सुन्दरियों के साथ रतिमग्न हो जाओगे।

चूँकि **हाड़िफ़ा** ने ऐसी सुन्दरी नारी का झाड़ूदार बनने में भी अपना सौभाग्य माना। अत: हाड़िफ़ा देवी के शापवश रानी मयनामती के घर में झाड़ू लगाने वाले नौकर बन गए। हाड़िफ़ा के पुत्र गाभूर सिद्ध ने सोचा कि यदि ऐसी नारी मिल जाए तो अपना हाथ-पैर कटा देने पर भी मैं धन्य हो जाऊँगा।

कानफ़ा ने सोचा कि यदि ऐसी सुन्दरी मुझे मिल जाय तो प्राण देकर भी मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा। देवी ने शाप दिया कि तुम तुरमान में डाहुका हो जाओ।

गोरक्षनाथ ने सोचा कि यदि ऐसी सुन्दरी नारी मुझे मिल जाए तो मैं उसकी गोद में बैठकर वात्सल्य भी प्राप्त करूँ और दूध भी पिऊँ।

गोरक्षनाथ परीक्षा में सफल हुए तथापि देवी ने उनकी पुन: परीक्षा लेनी चाही। एक बार जब गोरक्षनाथ बकुल वृक्ष के मूल में बैठकर समाधि लगाए हुए थे; तब देवी ने उन्हें योग से च्युत करने हेतु अनेक प्रयास किए; किन्तु गोरक्ष निरन्तर अच्युत ही रहे।

घटनायें—(१) देवी मार्ग में नग्नरूप में सो गईं। गोरक्षनाथ ने बिल्वपत्रों से उनका शरीर ढक दिया।

(२) तब देवी ने गोरक्ष के पेट में प्रवेश करके गोरक्ष के पेट में पीड़ा उत्पन्न की तो गोरक्षनाथ ने श्वास रोककर देवी को क्षुब्ध कर दिया।

(३) देवी राक्षसी बनकर मानव-बलि का आहार ग्रहण करने लगीं।

गोरक्ष ने शिवादेश से देवी का उद्धार किया और उनके स्थान पर एक मूर्ति स्थापित की। **वही मूर्ति कलकत्ता की सर्वपूज्या मूर्ति है।**

(४) देवी ने गोरक्षनाथ को अतीव सुन्दरी नारी प्राप्त करने का वर दिया तो शिवजी ने माया से एक कन्या उत्पन्न करके उसे उन्हें प्रदान किया। गोरक्षनाथ उसके घर जाकर ६ मास के बालक बनकर दूध पीने के लिए आग्रह करने लगे। गोरक्षनाथ ने कहा कि मैं तो कामविकार से अतीत हूँ, किन्तु यदि तुम मेरा कौपीन धोकर पी लोगी तो तुम्हारे एक पुत्र अवश्य होगा। उस नारी ने वही किया। उसके जो पुत्र हुआ उसका ही नाम 'कर्पटीनाथ' पड़ा।

गोरक्षनाथ और कानफ़ा—गोरक्षनाथ एक बकुल वृक्ष के नीचे ध्यान कर रहे थे। कानफ़ा उनके सिर के ऊपर से आकाश-मार्ग में यात्रा कर रहे थे। गोरक्ष ने उनकी छाया देखकर अपनी खड़ाऊ ऊपर फेंकी। खड़ाऊं ने उन्हें पकड़ कर नीचे किया। कानफ़ा ने कहा कि 'अपने को सिद्ध योगी मानते हो; किन्तु क्या अपने गुरु के बारे में भी कुछ जानते हो। वे कदलीवन में नारियों के साथ रतिक्रिया में निरत हैं और यमराज के यहाँ उनकी आयु के अब मात्र तीन दिन शेष रह गए हैं। सिद्ध हो तो उनकी रक्षा कर लो।'

गोरक्षनाथ ने कानफ़ा से कहा कि 'क्या तुम अपने गुरु के विषय में भी कुछ जानते हो? मेहरकुल की रानी मयनामती के पुत्र गोपीचन्द ने उन्हें मिट्टी के नीचे गड़वा दिया है।

दोनों सिद्धों ने अपने-अपने गुरुओं का उद्धार करने हेतु, प्रस्थान किया।

सर्वप्रथम तो गुरु गोरक्षनाथ ने यमालय में जाकर गुरु मत्स्येन्द्र के अल्पायुष्य को ही नष्ट कर दिया और फिर ब्राह्मणवेश धारण करके कदलीवन में प्रवेश किया। फिर उन्होंने योगी का वेश धारण किया और वे कदलीवन के एक सरोवर के किनारे बकुल वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ हो गए। उसी समय उन्होंने निकटस्थ सरोवर से एक सद्यःस्नाता नारी को आते देखा और उसी से यह पता चला कि मेरे गुरु मीननाथ १६०० रमणियों के साथ विहार कर रहे हैं। उस स्थान पर किसी योगी के जाने पर उसे प्राणदण्ड की सजा थी। गोरक्षनाथ ने नर्तकी का वेश धारण करके प्रवेश किया; किन्तु रानियों ने उन्हें मीननाथ के समक्ष नहीं जाने दिया। गोरक्षनाथ के द्वारा द्वार पर मर्दल ध्वनि करने पर मीननाथ ने उन्हें बुलाया। गोरक्षनाथ ने उन्हें उनके पूर्ववर्ती स्वरूप का स्मरण कराकर उन्हें ज्ञान प्रदान किया, तब मीननाथ को अपने यथार्थ चैतन्यभाव का बोध हुआ।

कदलीवन की नारियों ने गोरक्षनाथ का वध करने के लिए षडयंत्र किया, किन्तु वे सभी गोरक्षनाथ के शाप से चमगादड़ हो गईं। रानियों ने पुत्र बिन्दुनाथ को साथ में लेकर करुण क्रंदन प्रारंभ कर दिया और इस प्रकार 'मीननाथ' को पुनः विचलित करना चाहा।

गोरक्षनाथ ने प्रथमतः तो बिन्दुनाथ को प्राणहीन करके तथा बाद में पुनःजीवित करके तत्त्वज्ञानोपदेश से कृतार्थ किया और फिर वे गुरु मीननाथ एवं बिन्दुनाथ को साथ में लेकर स्वस्थान विजयनगर लौट आए।

(३) * नेपाली स्त्रोत पर आश्रित मत्स्येन्द्र-वृत्तान्त *

जिस नेपाली स्त्रोत के आधार पर मत्स्येन्द्र का उपाख्यान आश्रित है वह द्विविध है। (क) बौद्ध और (ख) ब्राह्मणवादी। **नेपाली बौद्ध परम्परा** के अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ 'अवलोकितेश्वर' हैं। एक बार गोरक्षनाथ अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ से मिलने गए। मत्स्येन्द्रनाथ कामारी नामक दुरारोह पर्वत पर रहा करते थे। गोरक्षनाथ उस पर्वत पर चढ़ नहीं सकते थे। उन्होंने ९ नागों को बाँधा और उस पर बैठ गए। अतः नेपाल में बारह वर्षों तक वर्षा ही नहीं हुई। राजा नरेन्द्रदेव के गुरु का नाम था बुद्धदत्त। वे अलोकितेश्वर को नीचे लाने का निश्चय करके 'कपोतकपर्वत' पर गए। अवलोकितेश्वर ने अपनी सेवा से प्रसन्न होकर बुद्धदत्त को एक मंत्र दिया और कहा कि इसके जप करने पर जापक जहाँ चाहेगा, वहाँ मैं उपस्थित हो जाऊँगा। बुद्धदत्त ने घर लौटने पर उस मंत्र का जपारंभ कर दिया। बुद्धदत्त द्वारा इस मंत्र का जप किए जाने पर अवलोकितेश्वर समाकृष्ट होकर मृग के रूप में कमण्डल में प्रविष्ट हो गए। उस समय राजा नरेन्द्रदेव सो रहे थे। बुद्धदत्त ने उन्हें जगाया और सांकेतिक भाषा में आज्ञापित किया कि 'कमण्डल का मुख बन्द कर दो।'' परिणामस्वरूप अवलोकितेश्वर नेपाल में ही बँधकर रह गए और इसके परिणामस्वरूप नेपाल में प्रचुर वर्षा हुई। उसी समय से 'बुगम' नामक स्थान में अद्यपर्यन्त मत्स्येन्द्रनाथ की यात्रा सम्पन्न होती है।[१]

डॉ० बागची ने लिखा है कि १२ वर्षों तक लगातार अनावृष्टि के कारण पूरा नेपाल नष्ट हो उठा था। इसी समय नेपाल के राजा नरेन्द्रदेव के गुरु बन्धुदत्त राजा के साथ कपोतल पर्वत गए और अवलोकितेश्वर को लाने हेतु अवलोकितेश्वर (मत्स्येन्द्रनाथ) की शरण में पहुँचे। वहाँ पर उन लोगों ने अवलोकितेश्वर की पूजा-अर्चना की। वे ज्ञानडाकिनी प्रत्यावर्तित हुए। बन्धुदत्त के मंत्र पढ़ने और उससे अवलोकितेश्वर के समाकृष्ट होने पर वे काली मक्खी या भ्रमर का रूप धारण करके उनके कमण्डल में प्रविष्ट हो गए। कमण्डल का मुख बन्द होने से अवलोकितेश्वर 'बुगम' नामक स्थान में ही सदा के लिए बँधकर रह गए।[२]

---

१. द हिस्ट्री आफ नेपाल।

२. बुगम में आज भी अवलोकितेश्वर की पूजा होती है और उनकी शोभा यात्रा निकाली जाती है।

(४) * बुद्धपुराणगत मत्स्येन्द्र-वृत्तान्त *

इस पुराण के अनुसार एक बार महादेव ने एक सन्तानाकांक्षिणी को कुछ खाने को दिया था और कहा था कि इसे खाने पर उसे एक पुत्र सन्तान की प्राप्ति होगी। उस महिला ने इस बात पर विश्वास न करके उसे गोबर में फेंक दिया। १२ वर्षों के अनन्तर उसी मार्ग से यात्रा करने वाले महादेव ने उस बालक को देखना चाहा। जब महादेव को यह ज्ञात हुआ कि उस महिला ने उस शिव-प्रदत्त वस्तु को खाया ही नहीं प्रत्युत् गोबर के ढेर में फेंक दिया; तब वे क्रुद्ध होकर उस नारी से बोले कि तुम उस गोबर के ढेर में उसे ढूढों। उसके द्वारा ढूँढे जाने पर वहाँ १२ वर्ष का एक बालक मिला। वही बाद में गोरक्षनाथ कहलाया। गोरक्षनाथ मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य बन गए। एक बार गोरक्षनाथ नेपाल गए; किन्तु वहाँ यथा सन्तोष आतिथ्य न पाकर रूष्ट हो गए। अतः उन्होंने क्रोधावेश में बादलों को बन्दी बनाकर अपने आसन के नीचे उन्हें १२ वर्षों तक दबाए रक्खा। इस समय नेपाल अनावृष्टि एवं दुर्भिक्ष के कारण नष्ट हो गया।

एक बार मत्स्येन्द्रनाथ नेपाल आए। गोरक्षनाथ ने अपने आसन से उठकर अपने गुरु का स्वागत-सत्कार किया। इसी समय बादल गोरक्ष के आसन से भाग खड़े हुए और नेपाल में प्रभूत वर्षा हुई। इस कथा से मत्स्येन्द्रनाथ का विशेष परिचय तो प्राप्त नहीं हो पाता किन्तु यह अवश्य पता चलता है कि मत्स्येन्द्रनाथ गोरक्षनाथ के गुरु थे।[१]

प्रो० प्रबोध चन्द्र बागची के अनुसार इन बौद्ध और हिन्दू कथाओं में हिन्दू कथा ही अधिक प्रामाणिक एवं प्राचीनतर है। दोनों कहानियों में निम्न बिन्दुओं में पार्थक्य है—

(क) अवलोकितेश्वर एवं मत्स्येन्द्रनाथ में अभिन्नता की स्थापना। बौद्धों के अनुसार अवलोकितेश्वर का स्थान पोटला या कपोतला में था। अवलोकितेश्वर और मत्स्येन्द्र अभिन्न थे।

(ख) हिन्दू स्रोत नेपाल में अनावृष्टि एवं दुर्भिक्ष से सम्बद्ध राजा नरेन्द्रदेव की कथा एवं दुर्भिक्ष दूर करने के उनके उपाय के विषय में मौन हैं।

(ग) मत्स्येन्द्रनाथ (अवलोकितेश्वर) का स्वतः ही नेपाल आना तो हिन्दू स्रोत

---

१. प्रबोध चन्द्र बागची कौलज्ञाननिर्णय की भूमिका।

२. S. Levi - L E Nepal I

स्वीकार करता है; किन्तु उनका पर्वत से बलात् समाकर्षण और कालीमक्खी (संभवतः भ्रमर) का कमण्डल में आना आदि घटनायें हिन्दू स्रोत में नहीं हैं।

मत्स्येन्द्रनाथ एवं अवलोकितेश्वर—नेपाल में मत्स्येन्द्रनाथ एवं अवलोकितेश्वर (भगवान बुद्ध के अवतार) को अभिन्न मानकर उनकी पूजा की जाती है। ये बुगम में रक्तलोकेश्वर के रूप में पूजे जाते हैं। मत्स्येन्द्र के अनुज माने जाने वाले (सानु मत्स्येन्द्रनाथ) 'मीननाथ' की भी पूजा की जाती है।

प्रो० लेवी को यह भ्रान्ति हो गई कि नेपाल में प्राचीनकाल से कोई 'बुगम लोकेश्वर' था और उन्हें मत्स्येन्द्रनाथ से अभिन्न मानकर पूजा जाने लगा।

नेपाल की बौद्ध वंशावली १३वीं सदी ए०डी० की है। उसमें नरेन्द्रदेव के समय मत्स्येन्द्रनाथ के आगमन का या उनके वंशजों का कोई उल्लेख नहीं है। केवल इतना अवश्य लिखा गया है कि बन्धुदत्त ने बुगम लोकेश्वर की यात्रा प्रथम बार की या इस यात्रा का सर्वप्रथम प्रवर्तन किया—

'तस्याचार्य बन्धुदत्तेन श्रीवुगमलोकेश्वर भट्टारकस्य जात्रा कृता।'

११वीं सदी के पश्चात ही बुगम लोकेश्वर एवं मस्येन्द्रनाथ को अभिन्न मानने की आस्था साकार हुई। नेपाल में १५वीं सदी एवं उसके उत्तरवर्ती काल में ही मत्स्येन्द्रनाथी सम्प्रदाय की अधिक जनप्रियता बढ़ी। गोरक्षनाथ एवं गोपीचन्द के सम्बंध में, आञ्चलिक भाषा में प्रणीत नाटक १५वीं सदी के एवं उसके बाद के ही है। बंगाल का एतत्सम्बद्ध साहित्य भी इस तिथि से अधिक प्राचीन नहीं है।

नेपाली जनश्रुति या नेपाल में प्रचलित मत्स्येन्द्रनाथीय वृत्तान्त के निष्कर्ष इस प्रकार हैं—

(१) मत्स्येन्द्रनाथ गोरक्षनाथ के गुरु हैं।

(२) मत्स्येन्द्रनाथ घड़े में एक काली मक्खी (भ्रमर) के रूप में प्रविष्ट हुए। गोरक्षनाथ ने अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ की रक्षा भ्रमर बनकर की और उन्हें कामरूप की कौल योगिनियों के मोहपाश से मुक्त कराया। मस्येन्द्रनाथ का अन्य नाम 'भृंगपाद' है।

—कौलज्ञाननिर्णय श्लोक ७

* पंजाबी एवं पूर्वोत्तरवर्ती स्रोत *

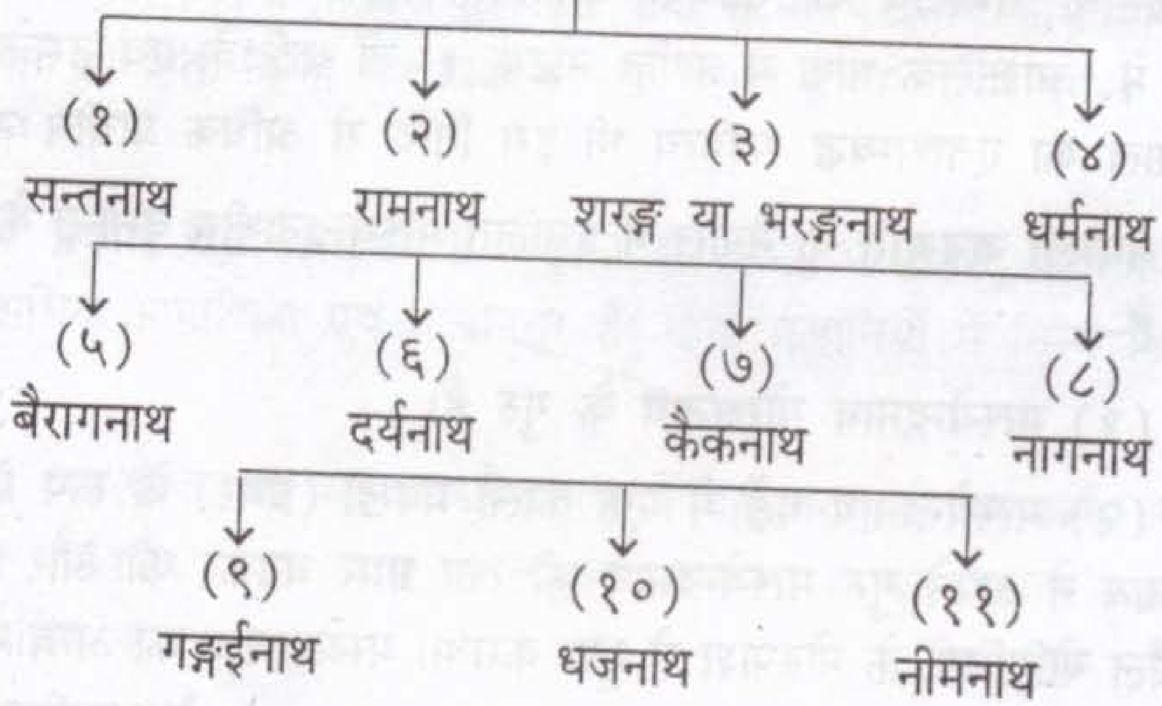
पंजाब एवं पश्चिमोत्तरवर्ती प्रान्तों के योगियों के सम्प्रदाय में मत्स्येन्द्रनाथ एवं गोरक्षनाथ से सम्बृद्ध अनेक आख्यान एवं वृत्तान्त प्रचलित हैं। कतिपय उपाख्यान देखिए।

(१) प्रथमोपाख्यान

एक बार एक शिव के भक्त ने जो कि पुत्र-प्राप्ति का आकांक्षी था पार्वती द्वारा शैव भस्म प्राप्त किया। भगवती पार्वती ने उसे भक्त को देते हुए कहा कि इसे अपनी पत्नी को दे दो। पत्नी ने अविश्वास के कारण उस भस्म को न खाकर गोबर के ढेर में फेंक दिया। उस गोबर से एक बालक का जन्म हुआ। उस बालक को शिवार्पित कर दिया गया। भगवान शिव ने कहा कि यह बालक हमें दे दो। यह बालक एक महान तपस्वी बनेगा। उन्होंने ही उसका नाम 'गोरक्षनाथ' रखा। भगवान शिव ने गोरक्षनाथ से कहा कि अपना गुरु ढूँढ़ो। गोरक्षनाथ गुरु की खोज में समुद्र पर्यन्त गए और वहाँ उन्होंने एक पीपल के पत्ते पर एक रोटी का टुकड़ा (या मिश्री का टुकड़ा) समर्पित किया। एक रकहो मछली उसे खा गई और उस टुकड़े को अपने उदर में बारह वर्ष पर्यन्त रखे रही। बारह वर्षों के उपरान्त वही पीपल का पत्ता एक शिशु के रूप में परिवर्तित हो गया। उसे भगवान शिव ने 'मच्छेन्द्रनाथ' नाम प्रदान किया। यही मच्छेन्द्र नाथ गोरक्षनाथ के गुरु बने।

भगवान शिव के निर्देशानुसार गोरक्षनाथ ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार किया और बारह शिष्य बनाये।

गोरक्षनाथ के शिष्य[1]



(२) द्वितीयोपाख्यान

इस उपाख्यान के अनुसार निरञ्जन निरङ्कार ने गोरक्षनाथ को अपने भ्रू-स्वेद (Sweat of brow) से उत्पन्न किया। ये एक मत्स्य के द्वारा मत्स्येन्द्रनाथ के पिता बन गए। गोरक्षनाथ अपने गुरु की खोज कर रहे थे और उन्होंने देखा कि मेरा पुत्र

१. प्रबोध चन्द्र बागची : कौलज्ञाननिर्णय की भूमिका

मत्स्येन्द्रनाथ ही मेरा गुरु बनने योग्य है। अत: वे मत्स्येन्द्र के (अपने पुत्र के) शिष्य बन गए।

(३) तृतीयोपाख्यान

एक उपाख्यान यह है कि भगवान शिव विष्णु के मोहिनीरूप को देखकर उन पर आसक्त हो गए। (भगवान विष्णु ने भस्मासुर के वधार्थ ही मोहिनी का रूप धारण किया था।) वे मच्छेन्द्रनाथ के पिता बन गए। वे एक गाय के द्वारा गोरक्षनाथ के भी पिता बन गए। (उन्होंने गोरक्षनाथ को जन्म दिया।)

(४) चतुर्थोपाख्यान

ऋषि वशिष्ठ एवं राम के मध्य एक वार्ता (Interlocution) होती है। उसके अनुसार शिव उदेनाथ ने रुद्रगण को जन्म दिया। उसकी आत्मिक शक्ति द्वारा जालन्धर नामक दुरात्मा (Evil spirit) को दीक्षित किया गया। जिससे कि वह दुरात्मा मंगलमय मार्ग का अनुसरण कर सके। इस प्रकार उसने दो शिष्य बनाये—(१) मच्छेन्द्रनाथ (२) जालंधरिपा। जालंधरिपा ने 'पाप पन्थ' का प्रवर्तन किया। मच्छेन्द्रनाथ ने गोरक्षनाथ को अपना शिष्य बनाया।

मच्छेन्द्रनाथ एवं गोरखनाथ के आविर्भाव के उपाख्यान में ही यह भी कहा गया है कि 'मच्छी' ने मत्स्येन्द्रनाथ को एवं गोबर ने गोरक्षनाथ को जन्म दिया तथा गोरक्षनाथ मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य हो गए।

मच्छेन्द्रनाथ **सिंहलद्वीप** में आकर एक गृहस्थ बन गए। इस गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश का कारण उस देश की दो रानियों का स्वप्रभाव था। गोरक्षनाथ ने उस राजमहल में मक्खी या भ्रमर का रूप धारण करके प्रवेश किया तथा मत्स्येन्द्रनाथ का उद्धार किया। इसके उपरान्त मच्छेन्द्रनाथ एवं गोरक्षनाथ उज्जैन चले गए।

यहीं उज्जैन में जालन्धरिपा राजा गोपीचन्द के एक मन्त्री के मिथ्या षडयंत्र एवं कूटनीतिक चाल के परिणामस्वरूप एक कुएँ में दफना दिए गए थे। कानिपा के द्वारा ही जालन्धरिपा का उद्धार हुआ। राजा गोपीचन्द ने दीक्षा ग्रहण किया। इसके उपरान्त मच्छेन्द्रनाथ एवं गोरक्षनाथ दोनों उज्जैन छोड़कर झेलम की ओर चले गए। वहाँ उन्होंने पहाड़ी के अन्तिम शीर्ष पर निवास करना प्रारंभ किया और वहाँ उन्होंने सात योगियों को दीक्षा दी जो निम्नाङ्कित हैं—

(१) कपल मुनि जी (२) खरकई एवं भुसकई (३) शकरनाथ (४) सन्तनाथ (५) सन्तोखनाथ (६) लच्छमन नाथ (७) अर्जन नागा।

इन सातों शिष्यों ने अपना पृथक-पृथक सम्प्रदाय प्रवर्तित किया।

उक्त उपाख्यानों की समीक्षा—निरंजन निरङ्कार ने अपने भ्रू के स्वेद से गोरक्षनाथ को जन्म दिया। यह उपाख्यान एवं शिव का मोहिनी पर आसक्त होने वाला उपाख्यान ये दोनों निरर्थक हैं।

गोरक्षनाथ का समुद्र तट पर जाने से सम्बद्ध उपाख्यान भी निरर्थक है; क्योंकि जहाँ यह घटना घटी वहाँ से समुद्र अत्यन्त दूर है।

मत्स्येन्द्रनाथ के संगल (सङ्गलदीप) जाने से सम्बद्ध उपाख्यान भी विचारणीय है और कामरूप से गोरक्षनाथ के द्वारा उद्धार किये जाने की घटना का अन्तर्संबन्ध भी विचारणीय है।

इन उपाख्यानों में से निम्न घटनायें अधिक प्राचीन एवं मौलिक प्रतीत होती हैं—

(क) समुद्र के तट पर मत्स्येन्द्रनाथ का आविर्भाव।

(ख) मत्स्येन्द्रनाथ का गोरक्षनाथ का गुरु होना।

(ग) मत्स्येन्द्रनाथ का कामरूप में फँसना एवं गोरक्ष द्वारा उनका उद्धार किया जाना।

(घ) शिव के साथ Apotheosis और Assimilation (देव तुल्य बनाना, सदृशीकरण)।

पौराणिक उपाख्यान—उक्त उपाख्यानों के अतिरिक्त 'स्कन्दपुराण' के नागर खण्ड में भी मत्स्येन्द्रनाथ की कथा आती है। इसके अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ गण्डान्तयोग में उत्पन्न हुए थे और उनका समस्त परिवार अदृष्टवश नष्ट हो गया था। उन्हीं के साथ वे भी कालकवलित हो गए थे। इस बच्चे (मत्स्येन्द्र) को इस दुर्घटना से बचाने हेतु समुद्र के जल में फेंक दिया गया था। वहाँ किसी मत्स्य ने इसे निगल लिया।

एक समय भगवान् शिव भगवती पार्वती एवं कार्तिकेय के साथ यात्रा पर निकले थे। उसी समय वे दुग्ध समुद्र (क्षीरसमुद्र) में अवस्थित श्वेत द्वीप के रम्यक पर्वत के शिखर पर उतरे। यहीं पर भगवान शिव ने पार्वती को ध्यानयोग एवं ज्ञानयोग की दीक्षा प्रदान की । कार्तिकेय ने इस उपदेश को सुना। इसके अनन्तर उन्होंने पुनः यात्रा प्रारंभ की। जब वे नगर को पार कर रहे थे, तभी समुद्र में एक बड़ा-सा मत्स्य ऊपर उठा। शिव ने पूछा कि यह मत्स्य कौन है? तब उस महामत्स्य ने उन्हें बताया कि किस प्रकार मैं गण्डान्तयोग में उत्पन्न हुआ और किस प्रकार समुद्र में फेंक दिया गया तथा किस प्रकार मुझे एक मत्स्य ने निगल लिया और किस प्रकार शिव-पार्वती के मध्य होने वाले ज्ञानयोगोपदेश को मैंने सुन लिया।

भगवान शिव इस बात को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने उस मत्स्य से कहा कि 'तुम विप्र हो'। तुम मेरे पुत्र के तुल्य और पूजनीय हो। तुम शक्ति लगाकर मत्स्य के अन्दर से बाहर निकल आओ। उसने वैसा ही किया। भगवती पार्वती ने उसे अपनी गोद में बैठा लिया। वे उसे मन्दराचल पर ले गईं। चूँकि ये मत्स्य के अन्दर से निकले थे। अतः भगवान शिव ने उनका नाम 'मत्स्यनाथ' रक्खा।

प्रो० बागची का कथन है कि मत्स्येन्द्रनाथ से सम्बद्ध, ये ही मुख्य उपाख्यान हैं; किन्तु इन उपाख्यानों को ही तोड़-मरोड़ कर एवं मिश्रित करके अनेक रूपों में प्रस्तुत किया गया है तथा गोपीचन्द के उपाख्यान से ज़ोड़ दिया गया है। यत्र-तत्र अनेक परिवर्तनों के साथ अनावश्यक असम्बद्ध एवं भिन्न घटनायें भी मूल उपाख्यान के साथ जोड़ दी गई हैं।

एक पंजाबी उपाख्यान में कहा गया है कि मत्स्येन्द्रनाथ एक मृत राजा के शरीर में प्रविष्ट हो गए और राजमहल में रानियों के साथ बहुत दिनों तक रहे। इसके बाद गोरक्षनाथ ने उनका उद्धार किया।

LEVI-LE Nepal P. 355 के अनुसार **'संक्षेप शंकर'** नामक ग्रंथ में भी यही उपाख्यान प्राप्त होता है। यह परवर्ती कल्पना है। **'शंकर दिग्विजय'** के प्रकाश में मत्स्येन्द्रनाथ के अधःपतन की कहानी गढ़कर यह उपाख्यान प्रस्तुत किया गया प्रतीत होता है।

'कौलज्ञाननिर्णय' के उपाख्यान को यदि छोड़ भी दिया जाय तथापि अन्य सभी उपाख्यान समुद्र-तट से सम्बद्ध हैं। ये सभी उपाख्यान प्रायः पूर्वी भारत के समुद्र तट से जुड़े हैं या कामरूप से जुड़े हैं।

बंगाली उपाख्यान में वर्णित 'कदली' जहाँ मत्स्येन्द्रनाथ का अधःपतन हुआ था 'कचली' या 'कचहर' है।[२]

नेपाली बौद्धों में प्रचलित मत्स्येन्द्रनाथीय उपाख्यान—यह उपाख्यान कपोतल या पोतल से सम्बद्ध है। बौद्ध पौराणिक उपाख्यान के अन्तर्गत तो पोतल अवलोकितेश्वर का वासस्थान है। परवर्ती काल में मत्स्येन्द्रनाथ के साथ अवलोकितेश्वर को एकीकृत करके प्रस्तुत करते समय मत्स्येन्द्रनाथ के जन्म को भी पोतल के साथ एकीकृत कर दिया गया।

प्रो० लेवी की दृष्टि—प्रो० लेवी का कथन है कि मत्स्येन्द्रनाथ के उपाख्यान

---

१. प्रबोध चन्द्र बागची : कौलज्ञाननिर्णय

२. शहीदुल्ला : LES Chants mysliques

का सम्बन्ध तो पूर्ववर्ती भारत एवं कामरूप से है। पौराणिक उपाख्यान मत्स्येन्द्रनाथ को समुद्र के मध्यवर्ती स्थान से जोड़ता है। अत: हम यह अनुमान लगा सकते हैं या मान सकते हैं कि 'कौलज्ञाननिर्णय' में अंकित उपाख्यान (जो कि प्राचीनतम अनुवाद, वर्णन या पाठान्तर है) समस्त उल्लिखित उपाख्यानों का आदर्श न्यादर्श (Archetype) है। इसके अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ या तो चन्द्रद्वीप के समुद्र तट पर उत्पन्न हुए थे या चन्द्रद्वीप में उत्पन्न हुए थे। उनका आविर्भाव पूर्वीय भारत में हुआ था। उन्होंने अपने सिद्धान्तों का उपदेश कामरूप में किया था। इस आदर्श न्यादर्श (Archetype) में कहीं भी गोरक्षनाथ एवं मत्स्येन्द्रनाथ के अध:पतन का वर्णन नहीं किया गया है। परवर्ती उपाख्यानों (Legends) में सर्वत्र गोरक्षनाथ की गुरुता एवं महत्ता स्थापित करने की दृष्टि से, गोरक्षनाथ द्वारा अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ की, कामरूप की कौल योगिनियों से उद्धार किए जाने की, कहानी जोड़ी हुई मिलती है।

पंजाबी उपाख्यानों में मत्स्येन्द्रनाथ का उतना महत्व नहीं है क्योंकि वहाँ तो **गोरक्षनाथ ने** गुरु-दीक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से **स्वयं ही मत्स्येन्द्रनाथ को जन्म दिया** था। इस विपर्यय का कारण गोरक्षनाथ की प्रभुता एवं महत्ता में उत्तरोत्तर विकास था। हम स्पष्टत: देखते हैं कि मत्स्येन्द्रनाथ के उपाख्यान का आविर्भाव पूर्वी भारत में हुआ है। इसी क्षेत्र से गोपीचन्द के उपाख्यान का भी आविर्भाव हुआ है।

पंजाबी पाठान्तर (Version) वाले गोपीचन्द के उपाख्यान के अनुसार गोपीचन्द उज्जैन के नृपति थे; किन्तु उनका घर गौड़ बंगाल था। हिन्दी पाठान्तर भी लगभग यही स्वीकार करता है। गुजराती एवं मराठी पाठान्तर के अनुसार गोपीचन्द गौड़ बंगाल के राजा तिलकचन्द के पुत्र थे।

प्रो० बागची इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि (अनेक साक्ष्यों एवं प्रमाणों के आधार पर निष्कर्षभूत तथ्य के रूप में) मत्स्येन्द्रनाथ एवं उनके सम्प्रदाय का आविर्भाव पूर्वी बंगाल में ही माना जाना चाहिए—

'It is therefore natural to suppose that Matsyendranath and his school originated and flourshed in Bengal and most probabaly in Easterm Bengal"[1]

उक्त मूल उपाख्यान ने विभिन्न स्थानों के अनुरूप भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लिए—

"The teachings of the school later on spread to different parts of

---

१. प्रबोध चन्द्र बागची : कौलज्ञाननिर्णय की भूमिका

India and the orginal legend was elaborated and expanded in different fashions in those places"

नारद पुराण में वर्णित श्री मत्स्येन्द्रनाथ का आख्यान—'नारद पुराण' में कहा गया है कि कामाक्षा में पार्वती-पुत्र सिद्धनाथ (मत्स्येन्द्रनाथ) निवास किया करते हैं। वे तपस्यानिरत हैं। सत्ययुग, त्रेता और द्वापर युग में लोग उन्हें प्रत्यक्षतः देखते हैं; किन्तु कलियुग में वे अन्तर्धान रहते हैं। कामाक्षा में उग्र तपस्या करने पर लोग उनका दर्शन कर पाते हैं। वे विज्ञान में पारङ्गत महायोगी हैं—

'तत्रास्ते पार्वती पुत्रः सिद्धनाथो वरानने।'
उग्रे तपसि लोके सः प्रेक्ष्यते च कदाचन्॥६॥
कृतत्रेताद्वापरेषु प्रत्यक्ष दृश्यतेऽखिलैः॥७॥
स मत्स्यनाथः किल तत्र संस्थो।
विज्ञानपारंगत एव भद्रे॥''(१३)

आदिनाथ शिव (क्षीरसागर के) मणिप्रदीप्त मनोरम शृङ्ग पर (योगज्ञान) तत्त्व के उपदेशार्थ गए एवं भगवान हरि में चित्त लगाकर उन्होंने भगवती पार्वती के प्रति निजस्वरूप प्रतिपादक रहस्यपूर्ण तत्त्व का निर्वचन आरम्भ किया। शैलात्मजा पार्वती जी, जब कामान्तक (काम को नष्ट करने वाले) शिवजी को प्रणाम करके तत्त्व को जाने बिना निद्राभिभूत हो गईं तब महासागर में स्थित मत्स्य उछल कर तुरन्त सौम्य शृङ्ग पर आ पहुँचा और उसके उदर में स्थित यह (मत्स्येन्द्रनाथ) तत्त्वसिद्ध और समस्त बन्धनों से मुक्त हो गया।

मत्स्य के उदर से निकलकर पार्वती-शिव के समक्ष प्रणाम करके ये स्थित हो गए। यह जानकर महेश्वर ने उनसे मत्स्योदर में निवास करने का कारण पूछा। उन्होंने उन दोनों के समक्ष सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। उनके वृत्तान्त का श्रवण करके भगवती पार्वती की अनुमति लेकर भगवान् शिव ने उन्हें (मत्स्येन्द्रनाथ को) अपना पुत्र स्वीकार किया और अपनी गोद में बैठाकर (शिव ने) उनका मुख चूमा और फिर कहा कि समस्त योग तत्त्व को जानने वाले सिद्धनाथ मत्स्यनाथ वस्तुतः मेरे आत्मज हैं। उन सिद्धनाथ का मन में चिन्तन करके मनुष्य सम्पूर्ण मनोरथ प्राप्त करने में साफल्य प्राप्त कर लेता है—

'तत्त्वोपदेशाय जगाम भद्रे,
स लोकलोकाचलप्रभ प्रमेयः।
तत्सौम्यशृङ्गे मणिभिः प्रदीप्ते,
स्थित्वा क्षणार्ध हरिमग्नचेता॥'

देवीमुमां संप्रतिबोध्यशक्त्या,
तालत्रयेणाप्यभिभूय सत्ववान्।
उवाच तत्त्वं सुरहस्यभूतं
यद्वा दशाणार्थं निजस्वरूपम्॥
ततस्तु सा शैलसुता महेशं,
कामान्तकं यावदभिप्रणम्य,
अज्ञाय तत्त्वं समवस्थिताऽभू-
तावत्स मत्स्यस्तु महार्णवस्थः।
द्रुतं समुत्प्लुत्य जगाम शृंगं
यो विप्रवासो ह्युदरेस्थितोऽस्य।
स तत्त्वसिद्धोऽखिल बन्धमुक्तः॥
निर्गम्य मत्स्योदरतः शुभास्ये,
नमः प्रचक्रे भवयोः पुरस्तात्।
विज्ञाततत्त्वोऽपि महेश्वरस्तं,
पप्रच्छ तदगर्भगतेर्निदानम्॥
स वर्णयामास यथार्थमेव,
तयोः पुरः सर्वमपि प्रवृत्तम्।
आकर्ण्य तदवृत्तमनुप्रसन्ना,
सोमामहेशानुमतिं च कृत्वा
तं कल्पयामास सुतं शुभागं
सोत्संग आस्थाय चुचुम्बवक्त्रम्।
सुतो ममायं किल मत्स्यनाथो,
विज्ञाततत्त्वोऽखिलसिद्धनाथः ।
तं सिद्धनाथं मनसा विचिन्त्य,
नरो भवेत् सिद्धसमस्तकामः॥

—(नारदपुराणा उत्तर ६९।१७-२५)

प्रश्न—विंटरनिट्ज ने पुराणों का समय, ६२५ ई० (बाण द्वारा पुराणों का उद्धरण) ७०० ई० (कुमारिल भट्ट द्वारा पुराणों का उद्धरण) एवं ९वीं सदी (आचार्य शंकर द्वारा पुराणों का उद्धरण) आदि के काल में पुराणों की विद्यमानता के साक्ष्य पर) ६ठवीं सदी से पूर्व का माना है। यदि यह सत्य है तो १०वीं या ११वीं सदी के मत्स्येन्द्रनाथ एवं उनसे सम्बद्ध जीवन की घटनाओं का उल्लेख 'नारदपुराण' में कैसे उपलब्ध हो सकता है? क्या 'नारदपुराण' मत्स्येन्द्रनाथोत्तरकाल की रचना है?

अभिनव गुप्तपादाचार्य मत्स्येन्द्रनाथ से इतने प्रभावित थे कि वे मत्स्येन्द्र से अपने ऊपर कृपा बनाए रखने हेतु सदा प्रसन्न रहने की प्रार्थना करते हुए कहते हैं—

'मे स मच्छन्दविभुः प्रसन्नः॥' (तं० अ० १/७)

उन्होंने जालन्धर पीठके कौलगुरु श्री शम्भुनाथ एवं उनकी दूती को भी प्रणाम किया है—

'जयताज्जगदुद्धृति क्षमोऽसौ भगवत्या सहशम्भुनाथ एकः॥ (तं० अ० १-१३)

मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा प्रवर्तित कौलमार्ग इतना सम्मोहक था कि स्वयं अभिनवगुप्तपाद भी उसके अनुयायी एवं साधक हो गए।

चारों युगों में कौलसाधना के उपदेष्टा

कौलमत की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। अतः प्रत्येक युग में इस मार्ग के उपदेष्टा रहे हैं। यथा—

(१) सत्ययुग में—श्री खगेन्द्रनाथ
(२) त्रेतायुग में—श्री कूर्मनाथ
(३) द्वापरयुग में—श्री मेषनाथ
(४) कलियुग में—श्री मत्स्येन्द्रनाथ —तंत्रालोक वि० खं० ३-६-२९७

मत्स्येन्द्रनाथ के ६ पुत्र माने जाते हैं और उनकी पूजा की जाती है। उनका नाम इस प्रकार है—

(१) वक्ताष्टिनाथ (२) विमलनाथ (३) जैत्रनाथ
(४) अंविजितनाथ (५) विन्ध्यनाथ (६) अजितनाथ

उनके साथ उनकी शक्तियों की भी पूजा की जाती है जो निम्नांकित हैं—

(१) इल्लाई अम्बा (२) भैरवलाम्बा (३) ईल्लाईअम्बा
(४) आनन्दमेखलाम्बा (५) कुल्लाईअम्बा (६) अजराम्बा।

प्रत्येक युग के उपदेष्टा कौल गुरुओं के साथ उनकी शक्तियों की भी पूजा की जाती है जो निम्नाङ्कित हैं—

(१) बिज्जाम्बा (२) मंगलाम्बा (३) काममंगलाम्ब्ण (४) कुकुणाम्ब

आचार्य अभिनवगुप्तपाद ने मत्स्येन्द्रोक्त कौलमार्ग के सिद्धान्तों पर तंत्रालोक के उन्नीसवें आह्निक में सविस्तार प्रकाश डाला है।

यद्यपि मत्स्येन्द्रनाथ प्रणीत रचनायें—

(१) कौलज्ञाननिर्णय (२) अकुलवीरतन्त्र,
(३) कुलानन्द तन्त्र (४) ज्ञानकारिका।

एवं उनकी साधनायें मत्स्येन्द्रनाथ को मात्र कौलसाधक ही सिद्ध करती हैं; किन्तु वे योगी भी थे, वे हठयोग के प्रथम सिद्धाचार्य भी हैं—

'हठविद्यां हि मत्स्येन्द्रगोरक्षाद्या विजानते।'—(हठयोगप्रदीपिका)

मत्स्येन्द्रनाथ कौल होने के कारण 'शिवभक्ति' के उपासक थे; क्योंकि—

'कुलं शक्तिरिति प्रोक्तमकुलं शिव उच्यते।
कुलेऽकुलस्य संबंध: कौलमित्यभिधीयते।।'

—(सौभाग्य भास्कर)

मत्स्येन्द्रनाथी साधना-मार्ग में योग साधना भी है

'हठयोगप्रदीपिका' के टीकाकार ब्रह्मानन्द कहते हैं—'कदाचिदादिनाथ: कस्मिंश्चिद् द्वीपे स्थित:। तत्र विजनमिति मत्वा गिरिजायै **योगमुपदिष्टवान्**। तीरसमीपनीरस्थ: कश्चन मत्स्य: **योगोपदेशं श्रुत्वा** एकाग्रचित्तो निश्चलकायोऽवतस्थे। तं तादृशं वानेन **योग: श्रुत** इति मत्वा कृपालुरादिनाथो जलेन प्रोक्षितवान्। स च प्रोक्षणमात्राद्दिव्यकायो मत्स्येन्द्र: सिद्धोऽभूत तमेव मत्स्येन्द्रनाथ इति वदन्ति।।' —ज्योत्स्ना

ओड़िया-साहित्य और मत्स्येन्द्रनाथ

प्राचीन ओड़िया-साहित्य और पुराणों में भी मत्स्येन्द्रनाथ का नाम आता है। मत्स्येन्द्रनाथ का नाम (१) अमरकोषगीता (२) महाभारत (३) अष्टांगयोगधारणा (४) परचेगीता (५) गोरखसंहिता आदि में आता है।

(१) अमरकोष गीता के अनुसार मत्स्येन्द्र-वृत्तान्त—प्राचीनतम नाथ-साहित्य 'अमरकोषगीता' में मत्स्येन्द्रनाथ को 'मक्षन्देलिनाथ' कहा गया है। **वे मीननाथ के पुत्र स्वीकार** किए गए हैं। 'अमरकोषगीता' में उन्हें 'बन्दइं मक्षन्देलिनाथ अनन्त दरिआं' कहकर (मत्स्येन्द्रनाथ की) वन्दना की गई है तथा 'माया मारि मछन्देलिनाथ' कहकर उन्हें मायोच्छेदक कहा गया है।

(२) महाभारत में मत्स्येन्द्र का वृत्तान्त—आदि कवि सारलादास ने अपनी 'महाभारत' नामक रचना में भी मत्स्येन्द्रनाथ की कथा पर प्रकाश डाला है। 'महाभारत' (सारलादास कृत) के सभापर्व में नकुल ने अपने दिग्विजयप्रसंग में कदलीदेश के राजा मत्स्येन्द्रनाथ का उल्लेख किया है।

नकुल ने दक्षिण कोशल के अनेक राज्यों को जीतकर कदलीवन में मत्स्येन्द्रनाथ एवं योगी गोरक्षनाथ से भेंट की थी—

'दक्षिणकोशले ये अनेक राज्य साधि
कदलि बने प्रवेश महायोधि।
द्रसन पाइला से मच्छइन्द्रंककरपुता।
भेंटिले परम योगी गोरेख अवधूता।।'

—(महाभारत, सभापर्व)

सारलादास प्रणीत 'महाभारत' में कहा गया है कि—

(१) मत्स्येन्द्रनाथ **कदली देश के राजा** थे और वे वहाँ सांसारिक भोगमय जीवन व्यतीत कर रहे थे।

(२) उन्होंने किसी मृत राजा के शरीर में प्रवेश करके कदली देश में राजैश्वर्य का उपभोग किया।

(३) वे हाथों में खड्ग, ओष्ठों पर वंशी धारण किया करते थे। वे 'कुरतिमतिभोला' थे।

(४) (महाभारत का वनपर्व) : सारलादास ने अपने इसी ग्रंथ के वनपर्व में यह भी कहा है कि **मत्स्येन्द्रनाथ मत्स्य देश के राजा थे। उनके पास सौ करोड़ गायें थीं।** उस समय विराट देश के राजा हरकेशर थे। उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर मत्स्येन्द्रनाथ ने उन्हें वर देना चाहा तो हरकेशर ने मत्स्य राज्य की याचना की। मत्स्येन्द्र ने १०० कोटि गायों के साथ मत्स्यराज्य हरकेशर को दे दिया।

महाभारत के विराटपर्व में पाण्डवों के अज्ञातवास के प्रसंग में सारलादास ने विभिन्न राज्यों एवं नगरों के साथ ही 'मच्छइन्द्रपुर' का भी उल्लेख किया है।

(३) 'अष्टाङ्गयोगधारण' ग्रन्थ के अनुसार मत्स्येन्द्रोपाख्यान—गोरख एवं मल्लिका की पारस्परिक वार्ता के मध्य मत्स्येन्द्रनाथ के जन्म वृत्तान्त पर भी प्रकाश डाला गया है। यह उपाख्यान इस प्रकार है—एक बार भगवान् शिव भगवती पार्वती को अपने साथ लेकर प्रभास तीर्थ गए। वहाँ पर पार्वती जी की प्रार्थना पर भगवान् शिव ने उन्हें अष्टाङ्ग योग का तत्त्व समझाया। भगवान् शिव ने यह भी जान लिया कि एक मछली के गर्भ में स्थित कोई पुरुष उनका उपदेश सुन रहा है, तब वे प्रसन्न हुये और उसे वरदान देते हुए उन्होंने उसका नाम 'मच्छिन्द्र' रखा। उन्होंने उसे मत्स्य के शरीर से बाहर आने का आदेश भी दिया। मत्स्येन्द्र के यह कहने पर कि मत्स्योदर में घोर अन्धकार के कारण उन्हें निकलने का मार्ग नहीं दृष्टिगोचर हो रहा है, तब शिव ने त्रिशूल से मत्स्य का गर्भ विदीर्ण कर डाला और नेत्र दिया अर्थात् शिव ने ज्ञान रूपक त्रिशूल से मायान्ध मत्स्येन्द्र का उद्धार किया।

(४) 'परचेगीता' के अनुसार मत्स्येन्द्र-वृत्तान्त—द्वारिका दास ने 'परचेगीता' नामक ब्रह्मज्ञानात्मक ग्रंथ प्रणीत किया। इस ग्रंथ में 'ब्रह्मज्ञान' के आविर्भाव एवं उसकी क्रमिक गुरु-शिष्यपरम्परा का वर्णन किया गया है।

भगवान् ने सर्वप्रथम यह ब्रह्मज्ञान नारद को प्रदान किया। यह क्रम इस प्रकार से है—

(१) प्रथमोपदिष्ट शिष्य —नारद
(२) द्वितीय नारद —व्यास
(३) तृतीय व्यास —सूत
(४) चतुर्थ सूत —शौनक
(५) पंचम शौनक —परीक्षित
(६) षष्ठ परीक्षित —गंगाजी
(७) सप्तम भगवती गंगा —शिव
(८) अष्टम शिव —पार्वती
(९) नवम पार्वती —मीन के गर्भ से मत्स्येन्द्र ने यह योगोपदेश सुना।
(१०) दशम मत्स्येन्द्रनाथ —गोरक्षनाथ

गुरु गोरक्ष ने इसी ज्ञान के बल से सिद्धि प्राप्त की।

(४) गोरेखसंहिता के अनुसार मत्स्येन्द्रोक्त उपाख्यान—१६वीं सदी में विरचित 'गोरख-संहिता' में भी मत्स्येन्द्रवृत्तान्त उपलब्ध होता है। इसके अनुसार—

(१) सत्ययुग में अनली गोसाईं महायोग-रत थे। जब उन्होंने आँखें खोलीं तो कमला को सामने देखकर उन पर मोहित हो उठे। परिणामतः वीर्यस्खलन हो गया। क्षीरसमुद्र में स्थित माधव नामक मछली ने इसे खा लिया। उसके गर्भ में सन्तान-वृद्धि होने लगी। वह मछली क्षीरसमुद्र से साकल्य देश चली गई, वहाँ उसे किसी केवट ने पकड़ लिया। जब उस केवट ने उसको काटा तो उसके पेट से एक पुत्र सन्तान निकली। साकल्य देश के राजा ने इस बालक के पालन-पोषण का दायित्व केवट को ही सौंप दिया। मत्स्योदर-प्रसूत होने के कारण इस बालक का नाम 'मत्स्येन्द्र' रखा गया। कालान्तर में मत्स्येन्द्र परिभ्रमणार्थ निकले। रात्रि के अन्तिम प्रहर होने पर उन्होंने कपिलास में महाभैरव का दर्शन प्राप्त किया। भैरवादेश से ही उन्होंने वरुण वृक्ष के नीचे योग-साधना का समारंभ किया। यहीं उन्हें भैरव से योग सम्बन्धी अनेक रहस्य ज्ञात हुए। फिर मत्स्येन्द्र ने कपिलास के पश्चिम में एक सरोवर के निकट एक वृक्ष के अधोदेश में 'मूलकमल रूपी' आसन की साधना आरंभ की। उन्हें १००० वर्षों बाद सिद्धि प्राप्त हुई। भैरवाज्ञा से ही आदिनाथ ने मत्स्येन्द्र का गुरु बनना स्वीकार किया। भगवती कालिका से छूरी लेकर आदिनाथ ने मत्स्येन्द्र का कान फाड़कर उसमें योग-मुद्रा लगाई। इसके अनन्तर उसी कपिलास नामक स्थान में शिव ने उन्हें अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड का परम योगी होने का वर दिया तथा गोरक्षनाथ के शिष्य बनने की बात कही।

इसी अवसर पर भगवान शिव ने मत्स्येन्द्रनाथ को यन्त्र-मन्त्र, स्तम्भन, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन एवं 'पादुका-मन्त्र' प्रदान किया।

मत्स्येन्द्रनाथ दीक्षोपरान्त विभिन्न अंचलों की यात्रा करते हुए मेरुपर्वत की **'लोकालोकगुहा'** में प्रविष्ट हुए। यहीं योग-साधना करते-करते एक दिन उन्होंने गोरखनाथ को देखा। गोरक्षनाथ को दीक्षा देकर वे बदरिका जाकर वहाँ साधना करने लगे। यहीं मत्स्येन्द्र ने गोरखनाथ को नाथ-धर्म एवं योगतत्त्व का रहस्य समझाया। यहाँ से ये दोनों प्रयाग तीर्थ जाकर सप्तद्वीप भ्रमण पर निकल पड़े। परिभ्रमणोपरान्त दोनों कुशद्वीप में चातुर्मास्य व्यतीत करने लगे।

कुशद्वीप के राजा कुश नाभि एवं रानी शतश्रिया की प्रार्थना पर मत्स्येन्द्रनाथ ने राजकुमारी से विवाह कर लिया और उसी नगर में बस गए। दस मासों के उपरान्त उन्हें एक सन्तान हुई, जिसका नाम **'मीननाथ'** रखा गया। इसके अनन्तर मत्स्येन्द्रनाथ कदली वन चले गए। वहीं गोरक्षनाथ भी पहुँच गए। एक दिन गोरखनाथ ने 'मीननाथ' का पेट काटकर उसकी अँतड़ियों को धूप में रख दिया। इस कृत्य को देखकर मत्स्येन्द्र और विमला दोनों रोने लगे। गोरक्षनाथ ने जैसे ही **'मीननाथ'** कहा; वैसे ही वह बालक यथा पूर्ववत् स्थिति में प्रत्यावर्तित हो उठा। गोरख ने मत्स्येन्द्र से कहा—

योगी के घर जन्म लेने वाला कभी मर नहीं सकता—

'गोरेख बोइले तुम्मे शुण गुरुदेव।
योगी घरे जन्म ये बे किम्पाइ मरिब।'

(५) 'शून्य संहिता' 'लोहि गीता' तथा ईश्वरदास प्रणीत 'चैतन्य भागवत्' आदि ग्रंथों में मत्स्येन्द्रोपाख्यान—इन सभी ग्रंथों में मत्स्येन्द्रनाथ के उपाख्यान उपलब्ध होते हैं।

(६) 'चैतन्य भागवत' में मत्स्येन्द्र का वृत्तान्त—चैतन्य भागवत में भी मत्स्येन्द्रनाथ का उपाख्यान प्राप्त होता है। इसमें उनका नामोल्लेख इस प्रकार है—

"मत्स्येन्द्र चउरङ्गी बेनि। ता नामे सिद्ध तनु घेनि।
विरूपाक्ष गोरेख दक्ष। नामे एतिनि हेलेमोक्ष।।"
'हाडिपा तन्तिपा कान्हुपा। जाबालि सायन्तनु आपा।।'

ओड़िया-साहित्य के अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ सिद्धि-प्राप्ति के अनन्तर भी गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करते रहे। 'बौद्धगान ओ दोहा' **(ओड़िया भाषा का प्राचीनतम ग्रंथ)** में भी मत्स्येन्द्रनाथ का नामोल्लेख है और उनके अनेक पद भी संकलित हैं। चूँकि आदिनाथ तो शिव हैं। अतः आदिनाथ के बाद नाथपंथ के प्रथम सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ ही हैं और नाथ-धर्म के यथार्थ प्रवर्तक भी मत्स्येन्द्रनाथ ही हैं।

विद्यारण्य की दृष्टि में मत्स्येन्द्रनाथ—'शङ्कर दिग्विजय' नामक ग्रंथ में श्रीविद्यारण्य जी ने आचार्य शंकर के मुख से मत्स्येन्द्रनाम की प्रशंसा कराते हुए यह कहलवाया है कि जिस प्रकार प्राचीनकाल में मत्स्येन्द्रनाथ ने परकाया प्रवेश करके अपने शरीर की रक्षा का भार अपने शिष्य गोरक्षनाथ को सौंपा था, उसी प्रकार मैं परकाया-प्रवेश से पूर्व अपने शरीर की रक्षा का भार तुम्हें सौंपता हूँ—

"मत्स्येन्द्रनामा हि पुरा महात्मा गोरक्षमादिश्यनिजांगगुप्तये
नृपस्य कस्यापि तनुं परासो प्रविश्य तत्पत्तनमाससाद।
गोरक्ष एषोऽथ गुरोः प्रवृत्तिं विदाय रक्षन्बहुधास्य देहम्।
निशान्तकान्तानटनोपदेष्टा नितान्तमत्याभवदन्तरङ्गः॥"

—शंकर दिग्विजय (९।८०, ८४)

मैथिल कवि विद्यापति ने मत्स्येन्द्रनाथ का **'मीननाथ'** नाम से उल्लेख करते हुए अपने नाटक—'गोरक्षविजय' में कहा है—

'अबहु न सम्भव मोहे, रे **मिननाथ।**'

नेपाल और मत्स्येन्द्रनाथ—नेपाल में मत्स्येन्द्रनाथ को अत्यधिक आदर के साथ एवं पूज्यभावपूर्वक स्मरण किया जाता है तथा उन्हें राष्ट्र के अधिष्ठाता एवं राष्ट्र-रक्षक समझा जाता है। उनके विषय में यह भी कहा जाता है कि—

'मत्स्येन्द्रनाथ समा यात्रा नास्ति ब्रह्माण्ड मण्डले।'

जयरथ ने 'विवेक' में उनका चित्त-वृत्तिनाशक सिद्ध के रूप में उल्लेख करते हुए (मच्छ को पाश मानते हुए उसके विदारक को **मत्स्येन्द्र** कहते हुए) कहा है कि—

'मच्छाः पाशाः समाख्याताश्चपलाश्चित्तवृत्तयः।
छेदितास्तु यदा तेन मच्छन्दस्तेन कीर्तितः॥'

अर्थात् चञ्चल वृत्तियाँ ही पाश हैं; जिन्हें कि 'मच्छ' के नाम से जाना जाता है और इनको काटने से मत्स्येन्द्रनाथ 'मच्छन्द' के नाम से प्रख्यात हो गए।

जयरथ मत्स्येन्द्रनाथ को ही समस्त कुलशास्त्रों का अवतारक मानते हैं—

'स सकल कुलशास्त्रावतारकतया प्रसिद्धः॥'

'भविष्य पुराण' में वर्णित मत्स्येन्द्रोपाख्यान—भविष्य पुराण में वर्णन आता है कि बृहस्पति प्रयाग में समागत सभी देवताओं को रुद्रमहिमा की कथा सुना रहे थे। वहीं पिनाकी महारुद्र भी स्थित थे। अपनी यशोगाथा सुनकर अत्याह्लादित भगवान् रुद्र के मुख से एक तेजोमय उत्तमांश निःसृत हुआ, जिसे उन्होंने हिमालयावस्थित हरद्वार भेजा। हरद्वार में शंभुसेवा में निरत मच्छन्द्र नामक एक महायोगी के मुख में

ही यह रौद्रतेज प्रविष्ट हो गया। इस अवस्था में वे समाधि में संल्लीन थे। इसी समय रम्भा नामक कामरूपिणी अप्सरा भी वहीं विचरण कर रही थी। उसने मच्छन्द्र को अपने वश में कर लिया।

स्कन्दपुराणोक्त मत्स्येन्द्रोपाख्यान—'स्कन्द पुराण' के कथनानुसार मत्स्येन्द्रनाथ का जन्म अशुभ लग्न में हुआ था। लग्न के अशुभ प्रभाव से बचने के लिए इन्हें समुद्र में फेंक दिया गया था। मत्स्य के सहयोग से इन्हें महाज्ञान की प्राप्ति हुई। तदनन्तर ये शिवानुकम्पा से मुक्त हो गए।

महाराष्ट्रीय गुरु-परम्परा और मत्स्येन्द्रनाथ—महाराष्ट्र का प्रमुख सम्प्रदाय **'नाथ-सम्प्रदाय'** है। महाराष्ट्रीय साहित्य में प्रमुख भूमिका के निर्वाहक सम्प्रदाय निम्नाङ्कित हैं—

(१) नाथ सम्प्रदाय (२) महानुभाव सम्प्रदाय (३) वारकरी सम्प्रदाय (४) दत्त सम्प्रदाय (५) समर्थ सम्प्रदाय।

नाथ-सम्प्रदाय में, जो बहुमान्य गुरु-परम्परा है, आदि में **आदिनाथ,** फिर **उमा** और फिर **मत्स्येन्द्रनाथ** तथा उसके बाद **जालन्धरनाथ** का नाम आता है। **मत्स्येन्द्रनाथ** की **शिष्य-परम्परा** में गोरखनाथ, चर्पटीनाथ, रेवानाथ और चौरंगीनाथ आते हैं।

गोरखनाथ की शिष्य-परम्परा में गहनीनाथ, नागनाथ, भवनाथ, माणिकनाथ एवं विलेशय नाथ आते हैं। गहनीनाथ के शिष्य **निवृत्तिनाथ की शिष्य-परम्परा** में ज्ञाननाथ (ज्ञानदेव) सोपानदेव एवं मुक्ताबाई अधिक प्रख्यात हैं। **ज्ञानदेव की शिष्य-परम्परा** में विसोबा खेचर एवं सत्यामलनाथ प्रख्यात हैं। **सत्यामलनाथ** की शिष्य-परम्परा में गैबीनाथ हैं। गैबीनाथ के गुप्तनाथ और गुप्तनाथ के उद्बोधनाथ उनके केसरीनाथ एवं उनके शिवदीन केसरी हैं। **जालन्धर नाथ** की शिष्य-परम्परा में कानिपानाथ, मैनावती एवं गोपीचन्द प्रसिद्ध हैं।

श्रीदत्तोवामन पोतदार के अनुसार गुरुपरम्परा का स्वरूप इस प्रकार है—**आदिनाथ**—(फिर) **उदोनाथ** (और फिर) **मछीन्द्रनाथ** (और फिर) **गोरखनाथ।**

महाराष्ट्र का जो **वारकरी सम्प्रदाय** है, वह भी आदिनाथ से प्रारम्भ होता है। वारकरी सन्त अपनी गुरु-परम्परा नाथों से जोड़ते हैं; क्योंकि उनके सम्प्रदाय के संस्थापक **ज्ञानेश्वर** ने अपनी गुरु-परम्परा को नाथों से जोड़ा है। **मत्स्येन्द्रनाथ,** गोरक्षनाथ आदि सिद्ध इस परम्परा से भी सम्बद्ध हैं। नाथ-पंथ ने आचार्य शंकर के केवलाद्वैतवादी **ज्ञानमार्ग को योगमार्ग से जोड़ा** और दूसरी ओर **तंत्र को योग से जोड़ा। ज्ञानेश्वर** ने इस शैवीमार्ग को **भक्तिमार्ग से भी जोड़ दिया।** यही **वारकरी सम्प्रदाय** की विशेषता है—

'तुका म्हणे भक्ति साठी हरिहर।
हरिहरा भेद नाही नका करूँ वाद।।'

—(सकल संत गाथा)

मत्स्येन्द्रनाथ 'हठयोग' के प्रथमाचार्य थे। वे **कामरूप में तपस्या** कर रहे थे। उसी समय वहाँ के राजा की मृत्यु हो गई। **मत्स्येन्द्रनाथ** ने तांत्रिकी सिद्धि 'परकाया-प्रवेश' द्वारा उस राजा के शरीर में प्रवेश करके अनेक वर्षों तक मृत राजा की रानियों के साथ भोग-विलास किया और **योग का तंत्र** से समन्वय किया।

'श्रीनाथ तीर्थावली' और मत्स्येन्द्रनाथ—राजा मानसिंह विरचित—**'श्री नाथ तीर्थावली'** नामक ग्रंथ में कहा गया है कि—

(१) नेपाल की सिद्धाचल मृगस्थली में श्री **पशुपतिनाथ** विराजमान हैं और वहीं पुण्यसलिला वाग्वती गङ्गा नदी प्रवाहित होती है। इसी **'मृगस्थली'** में गोरखनाथ राजा एवं प्रजा से (स्वागत न करने से) असन्तुष्ट होकर ९६ करोड़ मेघमालाओं को अपने आसन के नीचे दबाकर एक आसन से १२ वर्षों तक तपस्या करते रह गए थे। जब मत्स्येन्द्रनाथ सिंहल द्वीप से नेपाल आये, तब भी गोरक्ष न तो उनकी आगवानी में ही आए और न तो दण्डवत ही किया प्रत्युत् मन से नमस्कार कर लिया। किन्तु उनका घुटना हिल गया। इसके कारण सारे मेघ मुक्त हो गए और नेपाल में घनघोर वृष्टि हुई।

(२) काठमाण्डू के निकट वाग्वती गंगा के किनारे **मत्स्येन्द्रनाथ का मन्दिर** है। इसके पूर्वभाग में **गोरक्ष नामक शिव हैं।** यहीं गोरखनाथ का मन्दिर है।

(३) **कान्तिपुर** के तुलजा भवानी के मन्दिर में **मत्स्येन्द्रनाथ की मंजूषा** अमूल्य वस्तुओं से परिपूरित है और पूजित है—

(क) 'तत्र मत्स्येन्द्रनाथस्य मंजूषा ह्यस्ति राजती।'

—श्रीनाथतीर्थावली (३४३)

(ख) 'अमूल्यवस्तुभि: पूर्ण निवारैरेव पूज्यते।'

—श्रीनाथतीर्थावली (३४४)

(४) **'कान्तिपुर'** (नेपाल का एक तीर्थस्थान) में (नीलवती-शीलवती-पूर्णवती नदियों के संगम पर) **'कैलाश'** नामक शिखर है। उसके ऊपर—(१) मत्स्येन्द्रनाथ (२) गोरक्षनाथ एवं (३) दण्डपाणि के **तीन चरणकमल विराजमान** हैं—

'नीलवत्या: शीलवत्या: पुण्यवत्याश्च सङ्गमे।
कैलाशाचलनाम्नास्ते शैल: सुन्दर शेखर:।

तस्योपरि विराजन्ते समपादाम्बुजैस्त्रयः।
शिव मत्स्येन्द्रगोरक्षा दण्डपाणिश्च भैरवः।।'

—श्रीनाथतीर्थावली (३६०)

(गोरक्षनाथ का मृगस्थली में ९६ करोड़ मेघमालाओं को अपने आसन के नीचे १२ वर्षों तक दबाकर नेपाल में अनावृष्टि रखने के पीछे एक कारण यह भी था कि नेपाल का राजा मत्स्येन्द्रनाथ के अनुयायी मत्स्येन्द्रिय जाति पर अत्याचार कर रहा था। इसी के कारण गोरखनाथ असन्तुष्ट होकर उन्हें दण्डित करने के लिए १२ वर्षों तक मेघों को दबाकर बैठे रहे।[१]

(५) उस समय लिच्छवी नेपाल नरेश **नरेन्द्र देव** ने ज्योतिषियों एवं **तांत्रिकों** को बुलाकर अनावृष्टि का कारण पूछा तो नरेन्द्रदेव के तंत्रशास्त्रज्ञानी मन्त्री बुद्धदत्त ने इसका कारण गोरख को बताया, जो कि समाधिस्थ थे। यह सोचा गया कि उनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथ को बुलाया जाय तो गोरक्ष उठ खड़े होंगे और सारे मेघ मुक्त हो जाएंगे और फिर खूब वृष्टि होगी।

राजा ने अपने मंत्री (बुद्धदत्त या बन्धुदत्त) को सिंहलद्वीप (कामरूप) भेजा। वहाँ मत्स्येन्द्र तपस्या कर रहे थे। राजा ने मत्स्येन्द्र को नेपाल पधारने के लिए आमंत्रित किया। मत्स्येन्द्रनाथ ने बन्धुदत को **एक मन्त्रानुष्ठान का उपाय** बताया और कहा कि **उक्त मंत्र के जप से मैं मंत्र-जपक के पास समाकृष्ट हो कर आ जाऊँगा।** बन्धुदत्त के नेपाल लौटकर उक्त मंत्रानुष्ठान करने पर अवलोकितेश्वर (मत्स्येन्द्रनाथ) कमण्डल में **भृंग के रूप में प्रविष्ट हुए।** बन्धुदत्त ने उस समय प्रसुप्त राजा को जगाकर कमण्डलु का मुख बन्द करने का संकेत दिया। परिणामस्वरूप वे **कमण्डल में बन्द हो गए। अतः नेपाल में प्रचुर** वर्षा हुई। तभी से नेपाल में बुगम नामक स्थान में मत्स्येन्द्र यात्रोत्सव मनाया जाता चला आ रहा है। अब मत्स्येन्द्र को **'भृङ्गपाद'** भी कहा जाने लगा।

(यह भी उपाख्यान मिलता है कि जब बन्धुदत्त सिंहल (कामरूप पीठ) से मत्स्येन्द्र को नेपाल लिवा लाने गए एवं उन्हें लिवा कर मृगस्थली में गोरखनाथ जी के सामने लाया गया, उस समय मत्स्येन्द्र को प्रणाम करते समय गोरखनाथ के हिल जाने से ९६ करोड़ मेघमालायें मुक्त हो गईं एवं नेपाल में अतिवृष्टि हुई—

'इत्यनुष्ठाय मत्स्येन्द्र सिंघलद्वीपतः पुनः।
आनिनाय स नेपालं श्रीमद्गोरक्षसन्निधौ।
गुरुं दृष्ट्वाऽपि गोरक्षो नासानादुत्थितोऽभवत्।
ननामोपाविशन्नेव मेघमोक्षविशंकया।

---

१. मृगस्थलीस्थ स्थली पुण्याभालं नेपालमण्डले। यत्र गोरक्षनाथेन मेघमालाऽसनीकृताः।

नमतः किञ्चिदुत्तुरस्थो वामं जानुतदासनात्।
अनेनावसरेणैव मेघमाला विनिर्गता।
पलायामास भीत्यैव ततो गोरक्षनाथतः॥'

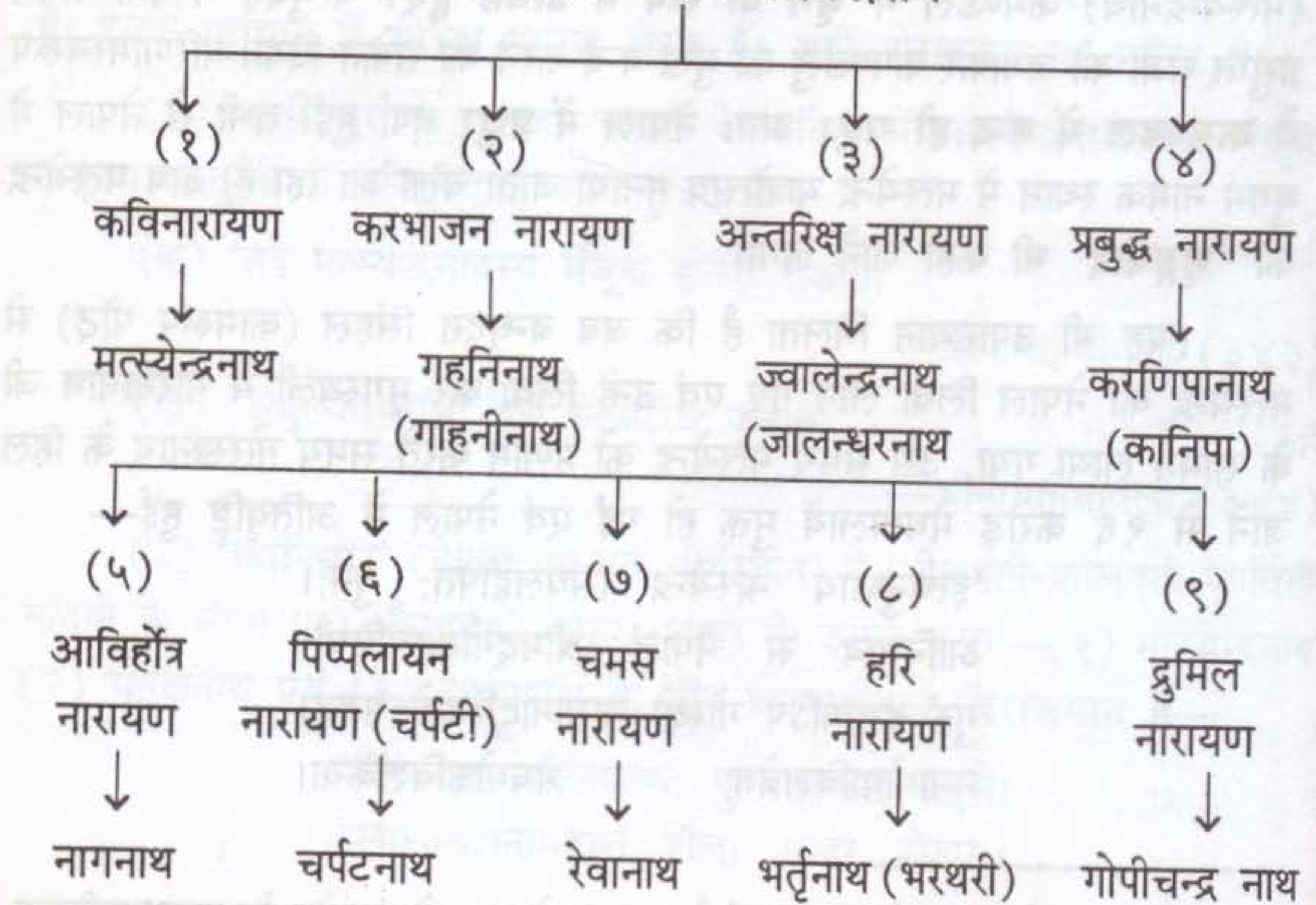
—श्रीनाथ तीर्थावली (३३३-३३६)

(६) महाराजा नरेन्द्रदेव ने मत्स्येन्द्रनाथ एवं गोरक्षनाथ से क्षमा-याचना की और सिंहलद्वीप (कामरूप पीठ) से नेपाल आने के संस्मरण को स्थायी बनाने हेतु यात्रोत्सव आयोजित किया। नेपाल में रथयात्रा, महास्नान एवं यात्रोत्सव नेपाली जन-जीवन की पावन-स्मृति के रूप में आज भी (मत्स्येन्द्र के सम्मान में) निष्पादित होते चले आ रहे हैं। यह नेपाल की राष्ट्रीय जीवनधारा का ऐतिहासिक प्रतीक बन गया है। नेपाल में कहावत है—

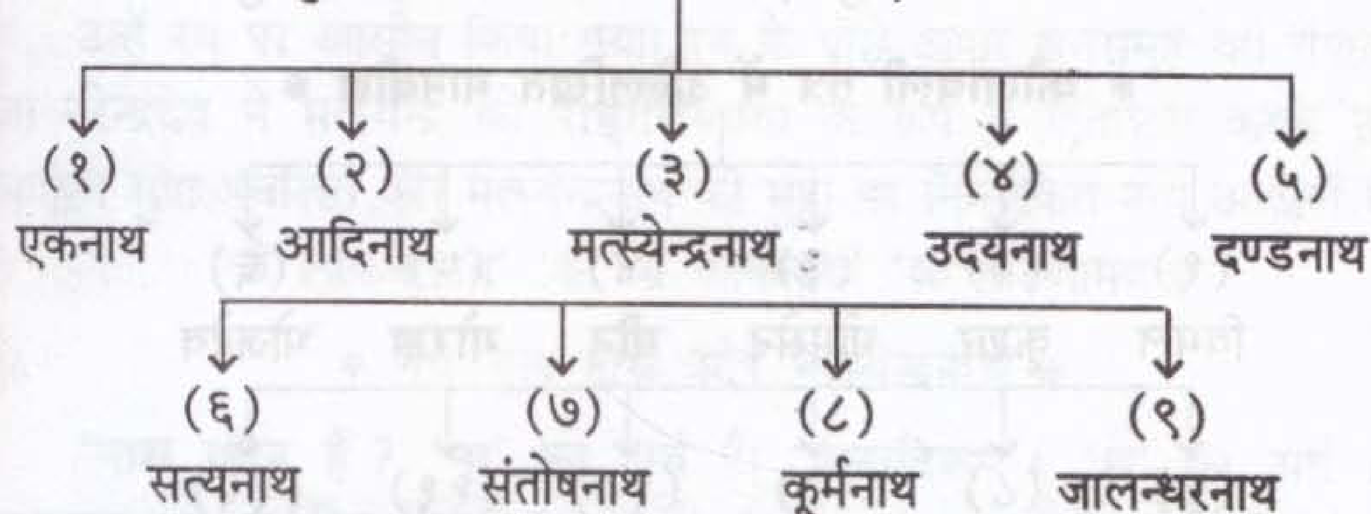
'मत्स्येन्द्रस्य समा यात्रा नास्ति ब्रह्माण्डमण्डले॥'

मत्स्येन्द्रनाथ के नेपाल पधारने पर उनका स्वागत अत्यन्त धूमधाम से किया गया।

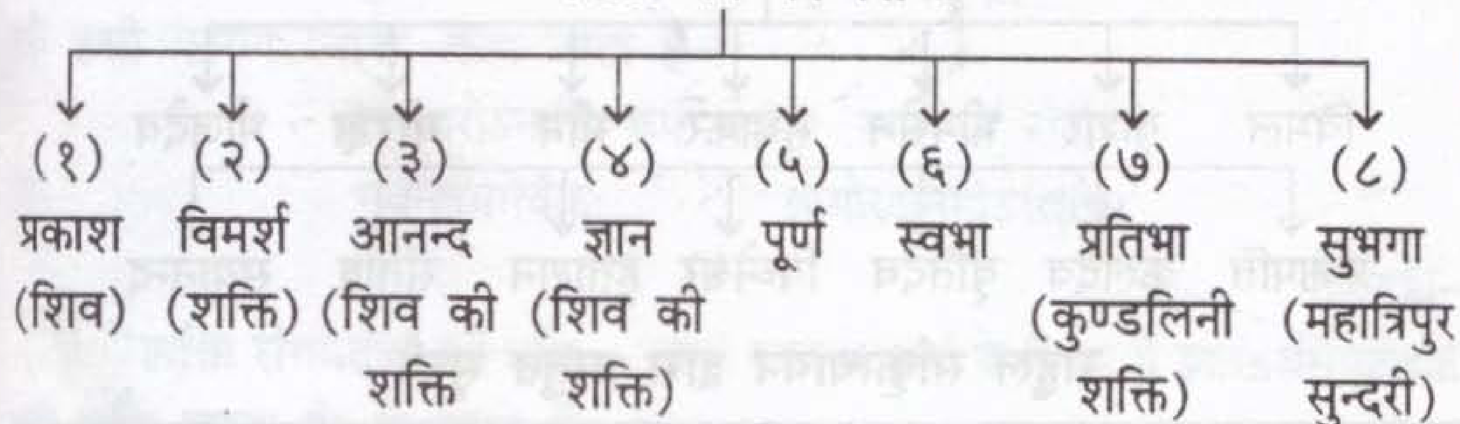
योगिसम्प्रदाय विष्कृतिकार की दृष्टि—'योगिसम्प्रदायाविष्कृति' नामक ग्रंथ में नवनाथों को **'नव नारायणों'** के नाम से प्रस्तुत किया गया है। इसके अनुसार ९ नारायणों ने ही ९ नाथों के रूप में अवतरण ग्रहण किया। स्वयं महादेव ने भी एक 'नाथ' के रूप में अवतार ग्रहण किया था।



इसमें **'गोरक्षनाथ'** का नाम नहीं है। इसमें **'आदिनाथ'** का भी नाम नहीं है। अत: दोनों का नाम जोड़ देने पर तो १२नाथ हो जायेंगे। **'महार्णव तंत्र'** के ९ नाथों में एक नाथ **'जड़भरत'** भी हैं। इस सूची में वे भी नहीं हैं।—



इसमें **'गोरक्षनाथ'** **'कृष्णपाद'** दोनों नहीं है तथापि **मत्स्येन्द्रनाथ** हैं।

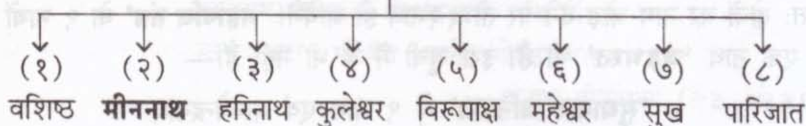


(इसमें गोरखपंथियों की धारणा पूर्वोल्लिखित ९ नाथों में से किसी भी नाथ का नाम नहीं है।)

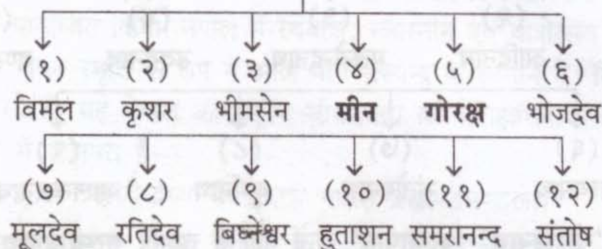
मान्यता यह है कि गोरखपंथी इन ९ नाथों का उद्भव गोरखनाथ (श्रीनाथ) से ही हुआ है। ये नवविध नाम गोरख के नवविध अवतार हैं। **गोरखपंथियों की मान्यता है कि गोरक्ष ही भिन्न-भिन्न कालों में नाथ नाम धारण करके अवतार लेते हैं और उन्होंने ही ब्रह्मा, विष्णु एवं महादेव को जन्म दिया है।** नाथ-सम्प्रदाय के सर्वमान्य आचार्यों में **मत्स्येन्द्रनाथ, जालंधरनाथ गोरक्षनाथ** एवं **कानिपा** का नाम सभी ग्रंथों में समान रूप से उपलब्ध होते हैं।

(१) **आदिनाथ** (२) **मत्स्येन्द्रनाथ** (३) **जालन्धरनाथ** एवं (४) **गोरक्षनाथ**— ये चार नाम तांत्रिक सिद्धों, सहजयानी बौद्ध सिद्धों एवं तिब्बती परम्परा में भी पाये जाते हैं; किन्तु अन्य नाम ऐसे नहीं हैं।

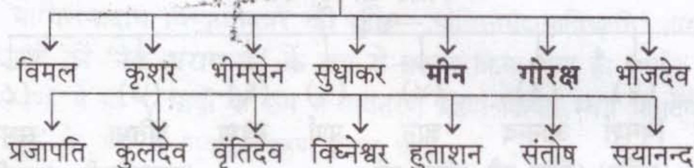
*** ताराहस्योक्त मानवौद्य ***



*** कौलावली तंत्र में उल्लिखित मानवौद्य ***



*** श्यामारहस्योक्त नाम ***



राहुल सांकृत्यायन द्वारा प्रस्तुत सूची

'वर्णरत्नाकर' की सूची	वज्रयानी (सहजयानी सिद्धों की सूची)
(१) **मीननाथ** *	(१) लूहिपा
(२) **गोरक्षनाथ** *	(२) लीलापा
(३) **चौरंगीनाथ** *	(३) विरूपा
(४) चामरीनाथ	(४) डोम्भीपा
(५) तंतिपा	(५) शबरीपा
(६) **हालिपा** *	(६) सरहपा
घोंघपा	मीनपा *
दारिपा	गोरक्षपा *
विरूपा आदि	चौरंगीपा आरि॥[1]
भीषण आदि	जालंधरपा

१. नाथ सम्प्रदाय।

'वर्णरत्नाकर' नामक ग्रंथ में सिद्धों के नाम की जो सूची दी गई है, उसमें प्रथम सिद्ध का नाम **'मीननाथ'** एवं ४१वें सिद्ध का नाम **'मीन'** दिया हुआ है। नाथ-परम्परा में एक पृथक **'मीन'** नामक सिद्ध हो चुके हैं। मत्स्येन्द्रनाथ के पुत्र का नाम भी **'मीन'** था।[१]

उन्हें रथ पर आसीन किया गया। रथ के पीछे अपार जनसमूह था। नेपाल के राजा नरेन्द्रदेव ने मत्स्येन्द्र को **राष्ट्राधिष्ठाता** के रूप में प्रतिष्ठित करके उनकी नामाङ्कित मुद्रा प्रचलित की। मत्स्येन्द्रनाथ की मुद्रा पर निम्नांकित नाम उत्कीर्ण थे—

'श्री लोकनाथाय' 'श्री श्री लोकनाथ' 'श्री करुणामय'।।

* नव मूल नाथ और मत्स्येन्द्रनाथ *

'नाथ कौन हैं ? 'ना' का अर्थ है। **'अनादिरूप'। 'थ'** का अर्थ है—**'भुवनत्रय का स्थापित होना। 'नाथ' का अर्थ = वह अनादि धर्म जो भुवनत्रय की स्थिति का कारण है।**

* **'नाथ'**—भुवनत्रय की स्थिति का मूलकारणरूप अनादि धर्म।।* गोरक्षनाथ को इसी कारण **'नाथ'** कहा जाता है—

'नाकारोऽनादि रूपं थकारः स्थाप्यते सदा।
भुवनत्रयमेवैकः श्रीगोरक्षनमोऽस्तुते।।'

राजगुह्य—

'शक्ति संगमतंत्र' की दृष्टि—'नाथ' शब्द के अर्थ के विषय में **शक्तिसंगमतंत्रकार की दृष्टि** पृथक् है। वे कहते हैं—

'श्रीमोक्षदानदक्षत्वात् नाथब्रह्मानुबोधनात्।
स्थगिता ज्ञान विभवात् श्रीनाथ इति गीयते।।'

अर्थात्—**'ना'**—नाथब्रह्म। वह नाथ ब्रह्म जो मोक्ष दिलाने में दक्ष है और ब्रह्मज्ञान का सम्यक् अवबोध कराता है। **'थ'** = अज्ञान की शक्ति को स्थगित या निरुद्ध करना। चूँकि नाथ का आश्रय ग्रहण करने से नाथब्रह्म का साक्षात्कार होता है और अज्ञानात्मिका माया अवरुद्ध होती है। इसीलिए इन्हें **'नाथ'** कहा जाता है। आदि काल में सबसे पूर्व **'नवनाथ'** हुए।

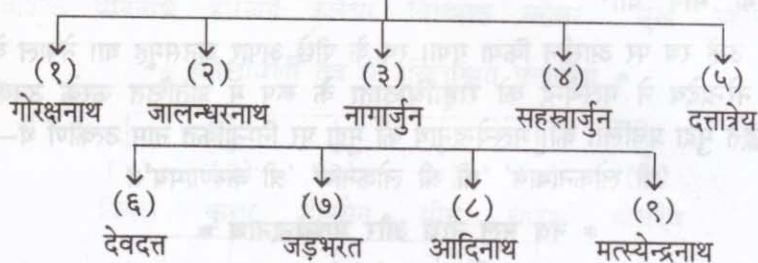
'नवनाथ' कौन थे ?

ये नवनाथ कौन थे और उसमें मत्स्येन्द्र का क्या स्थान था? —इस विषय में ऐकमत्य नहीं है कि ये ९ नाथ कौन थे।

---

१. बौद्ध सहजयानियों में आदि सिद्ध लुई पाद को मत्स्येन्द्र का नामान्तर माना जाता है।

'महार्णव तंत्र' में प्रतिपादित दृष्टि—महार्णवतंत्रकार ने ९ नाथों का जो नाम बताया है; वह इस प्रकार है—



* मत्स्येन्द्रनाथ का ऐन्द्रजालिक एवं अप्रतिम सम्मोहन *

मत्स्येन्द्रनाथोक्त यौगिक तांत्रिक मत की व्यापकता—महामुनि एवं योग-तंत्र-सिद्ध महायोगी मत्स्येन्द्रनाथ और उनके यौगिक-कौलिक सिद्धान्त तथा उनके स्वप्रवर्तित नाथ-सम्प्रदाय में वह ऐन्द्रजालिक एवं सम्मोहनकारी शक्ति थी कि उनके नि:शेष समसामयिक पूर्ववर्ती एवं परवर्ती सम्प्रदाय उनके अनुयायी हो गए।

कापालिक मत और नाथमत—'गोरक्षसिद्धान्त संग्रह' में एक कहानी आती है, जिसमें एक कापालिक अद्वैतवादी शङ्कराचार्य को पराभूत करता है। इसमें ग्रंथकार कहता है कि मेरा मत तो **'अवधूत मत'** ही है। मेरा मत कापालिक मत तो नहीं है तथापि 'कापालिक मत' को भी श्रीनाथ ने ही प्रकट किया था।

'मालतीमाधव' में उल्लिखित कापालिकों की साधना का सम्बंध उस षटचक्र, नाड़ी-योग एवं कायायोग से सिद्ध होता है; जो कि नाथपंथीय साधना का मेरुदण्ड है।

इसका अर्थ यह हुआ कि 'कापालिकमत' श्री मत्स्येन्द्रनाथ के नाथपन्थ से अत्यधिक प्रभावित होकर उसका अङ्गभूत हिस्सा बन गया था।

नाथपन्थ के आदि प्रवर्तक या आदि सिद्ध को **'आदिनाथ'** कहा गया है और कापालिक मत के द्वादश आचार्यों में आदि सिद्ध भी **'आदिनाथ'** ही हैं—**आदिनाथ,** अनादि, काल, अतिकाल, कराल, विकराल, महाकाल, कालभैरवनाथ, बटुकनाथ, वीरनाथ एवं श्रीकण्ठ।

कापालिकों के द्वादश आचार्य

नाथ कापालिक मत के आदि शिष्य भी १२ हैं और उनमें **गोरक्ष, चर्पट, जालंधर** आदि (जो कि नाथ-पंथ के भी आचार्य हैं) भी अन्तर्निविष्ट हैं। यथा

(नागार्जुन, जड़भरत, हरिश्चन्द्र, सत्यनाथ, भीमनाथ, गोरक्ष, चर्पट, अवद्य, वैरागी, कंथाधारी, जालन्धर एवं मलयार्जुन—१२ आद्य कापालिक शिष्य।)

यदि ''शाबरतंत्र'' पर दृष्टिपात करें तो उसमें कापालिकों के द्वादश आचार्यों में प्रथमाचार्य के रूप में आदिनाथ का ही नामोल्लेख है।

नाथ-सम्प्रदाय में कापालिक मत भी नाथ-पंथ प्रवर्तित माना गया है। 'बौद्धगान ओ दोहा' में, जो २४ सिद्धों (८४ सिद्धों में से मात्र २४ सिद्धों) के पद संकलित किए गए हैं, उनमें १२ पद कान्हूपाद (कृष्णपाद = कानुपा = कानिका) के भी हैं। वे नाथपन्थ के आचार्य हैं तथा वे अपने को कापालिक कहते हैं—

'आलो डोम्बि तोए संग करिब मो सांग।
निर्धन कान्ह कापालि जोइ लांग॥'

ये अपने को **जालन्धर नाथ** (जालन्धर पाद = हाड़ीपा, हल्लीपाद) का शिष्य कहते हैं। जालन्धरपाद नाथपंथी आचार्य थे।

'गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह' और कापालिक मत अन्तर्संबंध

'गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह' में एक उपाख्यान आता है कि जब भगवान विष्णु ने चौबीस अवतार ग्रहण करके उन अवतारों के माध्यम से अत्याचार एवं दुष्कृत्य करना प्रारंभ कर दिया, तब उनसे क्रुद्ध होकर श्रीनाथ ने २४ कापालिक भेजा। इन कापालिकों ने उन २४ अवतारों का सिर काट कर उन्हें अपने गले में धारण किया। इसी कारण ये **'कापालिक'** कहलाते हैं किन्तु ये सभी नाथ द्वारा ही भेजे गए थे।

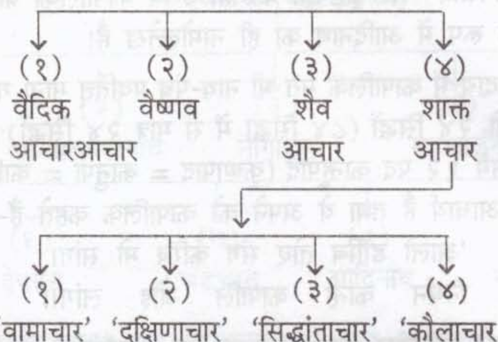
'कानिपा सम्प्रदाय' कृष्ण पाद-प्रवर्तित है और **'जालन्धरिपा सम्प्रदाय'** (पा पंथ) औघड़ जालन्धर नाथ द्वारा प्रवर्तित है। **'जालन्धरिपा पन्थ'** गोरक्ष नाथ-प्रवर्तित पावनाथी शाखा से सम्बद्ध है। 'कानिपा सम्प्रदाय' (गोपीनाथ के अनुवर्ती) भी नाथ सम्प्रदाय की एक शाखा है। ये सभी पहले स्वतंत्र पंथ थे; किन्तु परवर्ती काल में ये नाथ-पंथ में अंतर्भुक्त हो गए।

शाक्तमत और नाथमत—'षोडश नित्यातंत्र' में भगवान शिव कहते हैं कि शाक्तमंत्र अर्थात् तंत्रमार्ग की शाक्त-शाखा का भी उपदेष्टा भी मैं ही हूँ और मेरे द्वारा उपदिष्ट तंत्र को ही नाथ-सम्प्रदाय के ९ नाथों ने संसार में प्रचारित-प्रसारित एवं उपदिष्ट किया है—

'कादिसंज्ञा भवेद्रूपा सा शक्तिः सर्वसिद्धये।
तंत्रं यदुक्तं भुवने नवनाथैरकल्पयन्॥
तथा तैर्भुवने मंत्रं कल्पे-कल्पे विजृंभते।
अवसाने तु कल्पानां सा तैः सार्द्धं व्रजेच्च माम्॥'

कौलाचार और नाथमत

प्रधान आचार



श्रेष्ठता के क्रम में निम्नाङ्कित आचार उत्तरोत्तर श्रेष्ठतर हैं यथा—वैदिक से **'वैष्णव'**, वैष्णव से **'शैव'**, शैव से **'शाक्त'**, शाक्तमत में वामाचार से **'दक्षिणाचार'** दक्षिणाचार से **'सिद्धान्ताचार'** एवं सिद्धान्ताचार से **'कौलाचार'।** आचारों में श्रेष्ठतम आचार **'कौलाचार' है।** 'षट्संभवरहस्य' आदि तंत्र-ग्रंथों में कहा गया है कि—कौल आचार श्रेष्ठतम आचार है और यह कौलमार्ग ही **'अवधूत मार्ग'** (नाथमार्ग) है। इसीलिए **'गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह'** में कहा गया है कि यद्यपि तांत्रिक कौलमार्ग एवं **'अवधूत-मार्ग'** में भेद है; क्योंकि—तांत्रिक मार्ग में पहिले बहिरङ्गोपासना होती है और बाद में आन्तरोपासना (कुण्डलिनी उपासना)। यह कुण्डलिनीगत आन्तरोपासना अवधूतमार्ग ही है। नाथ-सम्प्रदाय स्वयं यह स्वीकार करता है कि **'कौलमार्ग'** (तंत्र-मार्ग) एवं **'कापालिक मार्ग'**—दोनों नाथमत के अनुवर्ती हैं।

'कौलज्ञाननिर्णय' (मत्स्येन्द्र प्रणीत) में तो अनेक कौल मतों का उल्लेख है और मत्स्येन्द्रनाथ की समस्त कामरूपीय साधना कौलमार्गी तंत्रसाधना ही है। मत्स्येन्द्रनाथ **'योगिनी कौल मार्ग'** से सम्बद्ध हैं। इसे ही गोरक्षनाथ ने कामरूप में प्रवर्तित किया था। यदि नाथमार्गी शाक्त सम्प्रदाय के सर्वोच्च आचार **'कौलाचार'** एवं सर्वोच्च मत **'कौलमत'** को नाथोपदिष्ट मत कहते हैं तो यह निर्वचन असमीचीन नहीं है।

त्रिपुरासम्प्रदाय एवं नाथमत—यदि त्रिपुरा-सम्प्रदाय एवं नाथ-मत का तुलनात्मक विश्लेषण किया जाय तो दोनों में साम्य के अनेक बिन्दु प्राप्त होते हैं।

त्रिपुरा-सम्प्रदाय के अनेक सिद्धों एवं आचार्यों के नाम नाथानुयायी सिद्धों एवं आचार्यों के हैं।

'त्रिपुरा-सिद्धान्त' का परिचय इस प्रकार है—

(१) **लेखक**—दत्तात्रेय 'दत्तसंहिता' : ६० हजार श्लोक

(२) **लेखक**—परशुराम : (५० खण्ड, ६००० हजार सूत्र)

(३) **लेखक**—हारितायन सुमेधा : परशुराम के ग्रंथ का संक्षिप्तीकरण—'परशुरामकल्पसूत्र'।

इसके टीकाकार **उमानन्दनाथ** ने 'नित्योत्सव' के आदि में नाथ-परम्परा का स्तवन किया है—

'नत्वा नाथपरम्परां शिवमुखां विद्येश्वरं श्रीमहा
राज्ञीं तत्सचिवां तदीय पृतना नाथां तदन्तः पराम्।'

इससे तो यही सिद्ध होता है कि त्रिपुरा-सम्प्रदाय के आचार्य भी नाथ-सम्प्रदाय में आस्था व्यक्त करते हुए अपने को नाथानुयायी घोषित करते हैं।

त्रिपुरा मत के तांत्रिकों के आचार्य स्वयं अपने को 'नाथमतानुयायी' कहते हैं।[1]

काश्मीर के **कौलमार्ग** में मत्स्येन्द्रनाथ को बड़ी श्रद्धा के साथ स्मरण किया जाता है।[2]

* नाथ योगियों द्वारा शंकराचार्य का पराभव *

(नाथपन्थियों की काल्पनिक कहानी)

आचार्य शंकर इतनी महान प्रतिभा के अद्वितीय महापुरुष एवं अन्यतम सिद्ध योगी थे कि अन्य मतावलम्बियों ने भी अपने मत की श्रेष्ठता एवं पूर्णता दिखाने के लिए उन्हें अपने मत एवं सम्प्रदाय का अनुगामी बताने का प्रयास किया।

गोरक्षसिद्धान्तसंग्रहकार की दृष्टि—'गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह'' नाथपन्थियों का प्रसिद्ध सिद्धान्त-ग्रन्थ है। इसमें कहा गया है कि—

शंकराचार्य का **जन्म दक्षिण** भारत में हुआ था। वे अपने जन्मस्थान में **विष्णु-उपासना** आदि कर्मों के सेवन में ही तत्पर रह गये किन्तु; उन्हें विष्णूपासना से शान्ति नहीं मिली; तब वे पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने के लिए चल पड़े और उन्होंने **पूर्व दिशा में आकर वैद्यनाथ** नामक स्थान पर **शिव की पूजा** की और उसे **शिव ने स्वीकार भी कर लिया** और उनसे कहा कि—'तुमने अकेले विष्णु की भक्ति क्यों की? साक्षात् परमेश्वर तो मैं हूँ। तुमने मुझे विस्मृत क्यों किया? आचार्य शंकर

---

१. नाथ सम्प्रदाय (डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी) पृ०—६

२. तत्रैव पृष्ठ—६

ने इसी दृष्टि से अपराधक्षमार्थ **'अपराधक्षमापन'** नामक स्तोत्र की रचना की और **शिव-भक्ति** में तल्लीन हो गए किन्तु; फिर भी उनको शान्ति नहीं मिली।

इसके बाद वे **पश्चिम दिशा** में गए। वहाँ वे **शक्तिहीन** हो गए और इसी स्थिति में उन्होंने शक्ति-वृत्तान्त (लीलाचरित्र) का दर्शन किया। उस समय भगवती **शक्ति** ने उनसे कहा 'शिव जी ही सर्वसमर्थ हैं।' इसके परिणाम स्वरूप शंकर शक्ति-भक्त हो गए। इसके परिणामस्वरूप ही शंकर ने **'सौन्दर्य-लहरी'** की रचना की और **'शाक्त'** बन गए। इतने पर भी उन्हें शान्ति नहीं मिली। इसके बाद आचार्य शंकर उत्तर दिशा में गए। **उत्तर दिशा** तो बड़े-बड़े सिद्धों के समूह से भरी हुई है। उत्तराखण्ड में तो बड़े-बड़े सिद्ध रहते हैं। वे जिन-जिन स्थानों पर गए, सभी ने उनका उपहास किया। फिर उसी स्थान पर उन्हें **श्रीतारानाथ** ने उनसे कहा "तीर्थाटन में ही निरत रहोगे या कि आत्मसाधन भी करोगे?' शंकराचार्य जी ने कहा कि—"आप जो आदेश देंगे, मैं उन सभी का पालन करूँगा।' तब महासिद्ध तारानाथ ने उन्हें **'योग'** का उपदेश दिया। उस उपदेश से शंकराचार्य की आत्मा समस्त बाधाओं से निवृत्त हो गयी और वे प्रसन्न हो उठे। उसी समय उन्होंने **'वज्रसूचिकोपनिषद्'** की रचना की (यह उपनिषद् सिद्धमत का प्रतिपादक ग्रंथ है।); इसमें श्रीसिद्धसिद्धान्त पद्धति' के 'वेदान्ती बहुतर्ककर्कशमतिः" से लेकर 'तस्मात्सिद्धं मतं स्वभावसमयं धीरः परं संश्रयेत्' तक के वचन प्रमाण रूप से उद्धृत हैं। उन्होंने (मण्डन मिश्र के सुरेश्वराचार्य बन जाने की भाँति) सिद्ध होकर **'सिद्धान्तबिन्दु'** आदि ग्रंथों की रचना की।[१]

सारांश—आचार्य शंकर ने—

(१) सर्वप्रथम **दक्षिणदिशा** में ही **'कर्मयोग'** का आश्रय ग्रहण करके **भगवान विष्णु** की उपासना की।

(२) तत्पश्चात् **पूर्वदिशा** में जाकर बाबा **वैद्यनाथ** की उपासना की और **अपराधक्षमापन** स्तोत्र की रचना की।

(३) फिर वे **पश्चिम दिशा** में शक्ति का दर्शन पाकर **शाक्तमत** स्वीकार करके **'प्रपञ्चसार'** आदि ग्रंथों की रचना करने लगे।

(४) फिर वे उत्तर दिशा में जाकर सिद्धोपदेश प्राप्त करके **अवधूतमार्गी** बन गए और इसके कारण उनको परम श्रेय की प्राप्ति हुई॥[२]

शंकराचार्य का योगानुवर्तन—

गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह में कहा गया है कि—शंकराचार्य जी अपने चारों शिष्यों

१. गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह।
२. गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह।

के साथ एक नदी के तट पर आसीन थे। उस स्थान पर एक कापालिक आकर बोला 'अरे तुम तो सन्यासी हो, शत्रु-मित्र के प्रति समान हो और सुख-दु:खादि द्वन्द्वात्मक विषयों से रहित हो। अत: मैं तुम्हारे सिर को काटकर उसे श्री भैरव को अर्पित करुँगा। ऐसा करने पर मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण होगी। अत: आप मुझे अपना सिर प्रदान कीजिए। शङ्कराचार्य जी ने विचार किया कि यदि मैं ऐसा नहीं करूँगा तो अद्वैत मत की हानि होगी तथा शत्रु और मित्र के प्रति समत्वभाव नष्ट हो जाएगा। यदि मैं सिर अर्पित कर देता हूँ तो पराभूत हो जाऊँगा। इस प्रकार दोनों दृष्टियों से मेरा पराभव ही सिद्ध होगा। यह सोचकर वे निरुत्तर एवं मौन हो गए।

शङ्कराचार्य जी को मौन देखकर उनके परम शिष्य **पद्मपादाचार्य** ने भगवान् नृसिंह का स्मरण किया। नृसिंह भगवान् ने उग्र भैरव पर प्रहार किया। इसके बाद महासिद्धपद्मपादाचार्य ने अपने शरीर का त्याग करके उसी उग्र भैरव का शरीर धारण करके मुस्कराते हुए कहा कि—'अरे अद्वैत तो पराजित हो गया। अरे अद्वैत तो पराजित हो गया। तुम शत्रु और मित्र के प्रति जिस समानता की बात करते थे, वह समत्व-निरूपण कहाँ गया? "अद्वैत ही परमार्थ है, अद्वैत ही सर्वस्व है—तुम्हारा यह कथन कहाँ गया? मेरे चरित्र ने तो जिस प्रकार मल्लयुद्ध प्रारम्भ करने के पहले ही पराभव स्वीकार कर लिया, उसी प्रकार शरीर का त्याग करके मैंने दूसरे के सिद्धान्त की हानि की है। अत: इसमें तुम्हारी हानि है—आगे भी हानि है। अत: उठों हम दोनों युद्ध करें।

"प्रारब्धकर्म का निष्पादन करना तो वर्तमान है ही; किन्तु सन्यासियों के मत में " कर्म करना ही चाहिए—"यह सिद्धान्त नहीं है।" ऐसा सोचकर शङ्कराचार्य जी युद्ध करने में असमर्थ हो गए। कापालिक के उपदेश से अपने सिद्धान्त से निष्क्रिय होकर ही अद्वैत प्रतिपादित स्थिति में ही रह गए। तब कापालिकों ने योगमाया उत्पन्न की। योगमाया ने चारों शिष्यों सहित आचार्य का मस्तक काट डाला। और उसके बाद उन्हें पुनर्जीवित कर दिया। इससे शंकराचार्य को वैराग्य उत्पन्न हुआ और वे पश्चिम दिशा की ओर चले गये और वहाँ उन्होंने शक्ति का स्मरण किया।

'योगिसम्प्रदायाविष्कृति' में उल्लखित उपाख्यान

'योगिसम्प्रदायाविष्कृति' में मत्स्येन्द्र एवं गोरक्ष के विषय में द्विविध उपाख्यान उपलब्ध होते हैं।

एक के अनुसार तो एक पुत्राकांक्षिणी नारी को महादेव ने जो विभूति दी थी उसे उसने गोबर में फेंक दिया था और उससे ही गोरक्षनाथ का जन्म हुआ था। इस कथा के अनुसार **महादेव ही मत्स्येन्द्रनाथ** एवं विभूति से उत्पन्न बालक ही गोरक्षनाथ

थे। मत्स्येन्द्र ने इस बालक को अपना शिष्य बना लिया। यही बालक नेपाल में आने पर अपना आतिथ्य-सत्कार न पाने से बादलों को बाँधकर बैठ गया था और परिणामतः नेपाल में द्वादशवर्षीय घोर अकाल पड़ा और मत्स्येन्द्र के आने पर गोरक्ष के थोड़ा सा उठते ही सारे बादल मुक्त हो गए और नेपाल में घोर वर्षा हुई।

इसी ग्रंथ के **तृतीयाध्याय** के अनुसार पुत्राकांक्षिणी **सरस्वती** नामक एक ब्राह्मणी की पत्नी जो कि (गोदावरी गंगा के सन्निकट चन्द्रगिरि नामक स्थान के निवासी सुराज नामक ब्राह्मण की भार्या) ने इस प्राप्त विभूति को फेंका नहीं प्रत्युत् उसे खा लिया था और उसी के **गर्भ से गोरक्षनाथ** का जन्म हुआ।

इसी ग्रंथ के **उन्चासवें** अध्याय के अनुसार नेपाल में एक जाति थी, जिसका नाम था—**'मत्स्येन्द्री (जाति)'।** यह जाति गोरक्षनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ की पुजारी जाति थी। किन्तु नेपाल का राजा एवं उसके अधिकारी उस पर बड़ा अत्याचार किया करते थे। गोरक्षनाथ ने इस अत्याचार को सुनकर राजा को दण्डित करने हेतु तीन वर्षों तक अकाल रखा और राजा के द्वारा क्षमा माँगने एवं मत्स्येन्द्री जाति पर पुनः अत्याचार न करने का आश्वासन देने पर प्रचुर वर्षा की। राजा ने मत्स्येन्द्रनाथ के सम्मान में भव्य यात्रा का भी शुभारम्भ किया।

उपाख्यान का अगला हिस्सा यह है कि उस नेपाली अत्याचारी राजा ने मन से क्षमा-याचना नहीं की थी। वह अपने दुष्कर्मों की पुनरावृत्ति करता ही रहा; फलतः योगीन्द्र गोरक्षनाथ ने अपने शिष्य को मिट्टी के पुतले बनाने की आज्ञा दी। उसने पुतले बनाये। ये सारे मृतिका-निर्मित पुतले सैनिक बन गए। वसन्त ने इन पुतलों के सैनिकों की सेना लेकर राजा महीन्द्रदेव पर आक्रमण कर दिया। पराभूत राजा महीन्द्रदेव ने अपना राज्य वसन्त को सौंप दिया और उसे ही अपना उत्तराधिकारी भी घोषित किया। **सं० ४२० में गोरखा राज्य** प्रतिष्ठित हुआ।

*** योगिसम्प्रदायाविष्कृति'' में उल्लिखित उपाख्यान और मत्स्येन्द्रनाथ ***

इस ग्रंथ में कहा गया है कि एक बार जब पार्वती जी को नारद जी के माध्यम से यह रहस्य ज्ञात हुआ कि भगवान शिव के गले में जो मुण्डमाला है, वे सारे मुण्ड उनके अपने ही पूर्वजन्म के शरीरों के मुण्ड हैं; जिन्हें भगवान शिव ने धारण कर रक्खे हैं तो उन्होंने शिव की ही भाँति अमर बनने हेतु शिव से अमर-कथा सुनाने का आग्रह किया।

भगवान् शिव ने उस अमर-कथा को सुनाने हेतु समुद्र में एक निर्जन स्थान का चयन किया। इसी काल में कवि नारायण मत्स्येन्द्रनाथ के रूप में एक भृगुवंशीय ब्राह्मण के घर आविर्भूत हुए थे। गण्डन्त योग में जन्म लेने के कारण इस बालक

को उसके ब्राह्मण पिता ने (अनर्थ-निवारणार्थ) समुद्र में फेंक दिया। एक मछली ने उन्हें निगल लिया। वे उसके गर्भ में १२ वर्ष तक पलते रहे।

इस पुस्तक के द्वितीय अध्याय में लिखा गया है कि जहाँ भगवान् शिव पार्वती को अमर कथा सुना रहे थे, वहीं निकट में वह मछली भी विद्यमान थी और उसके उदर में स्थित वह बालक उस कथा को सुनता रहा। शिव जी ने उसका उद्धार किया और उनकी अनुकम्पा से यही बालक (मत्स्येन्द्रनाथ के नाम, से) महासिद्ध बना।

इसी ग्रंथ के ५वें से १०वें अध्याय में जो कहानी आती है, उसके अनुसार इस बालक मत्स्येन्द्र ने अपनी लोकोत्तर महासिद्धि एवं अतुल्य पराक्रम द्वारा—**हनुमान, वीरवैताल, वीरभद्र, भद्रकाली** और **चामुण्डा** को भी पराभूत कर दिया।

सांसारिक मायाचक्र में निपतन—

(१) मत्स्येन्द्रनाथ ने प्रयाग के राजा की मृत्यु के कारण शोकाकुल जनसमूह को देखकर और मृत राजा के शरीर में प्रवेश करके उन्हें जीवित करने के उनके अनुरोध को स्वीकार करके अगले १२ वर्षों तक उस राजा के मृतशरीर में रहने का वचन देकर उसके शरीर में प्रवेश किया। वे १२ वर्षों तक गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करते रहे। जब रानियों को इस रहस्य का ज्ञान हुआ तो उन्होंने **मत्स्येन्द्रनाथ** के शरीर को नष्ट करने का प्रयास किया। वीरभद्र ने इस बात को जानकर मत्स्येन्द्रनाथ के उस शरीर को वहाँ से ले जाकर अन्यत्र रखा तथा उसकी रक्षा करने लगा।

चूँकि वीरभद्र को अपने पराभाव का प्रतिशोध लेना था। अत: मत्स्येन्द्रनाथ के द्वारा शरीर में पुन: प्रवेश करने का प्रयास करने पर वीरभद्र ने उन्हें प्रवेश करने से रोका; किन्तु वीरभद्र को पुन: पराभूत होना पड़ा और मत्स्येन्द्रनाथ अपने शरीर में पुन: प्रविष्ट हो गए। इसी गार्हस्थ्यकाल में मत्स्येन्द्रनाथ को एक पुत्र हुआ। इसका नाम था—**माणिकनाथ।** ये एक महान सिद्ध बने।

(२) **मत्स्येन्द्रनाथ का द्वितीय निपतन**—सिंहल देश की रानी के पति रुग्ण एवं नि:शक्त हो गए थे। रानी ने अपने लिए एक अन्य पति की कामना हनुमान जी के समक्ष प्रस्तुत की। उसने उनसे पति बनने का निवेदन किया। ब्रह्मचारी हनुमान जी ने अपने स्थान पर मत्स्येन्द्रनाथ को प्रस्तुत कर दिया। मत्स्येन्द्रनाथ उसके मोह-पाश में आबद्ध हो गए। जब गोरक्षनाथ को इसका पता चला तो अपने गुरु का उद्धार करने हेतु वे राजमहल में प्रवेशार्थ उद्यत हुए किन्तु हनुमान जी ने उन्हें रोक लिया। चूँकि रानी ने अपने राज्य में योगियों के प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा रखा था। अत: गोरक्षनाथ ने एक बालक का वेश बनाया और राज्य में प्रविष्ट हो गए।

एक नर्तकी (एवं वेश्या), जिसका नाम कलिंगा था, वह **मत्स्येन्द्रनाथ** के

अन्त:पुर में नृत्य करने जा रही थी। **मत्स्येन्द्रनाथ** ने अपना नारीवेश बनाकर तबला बजाने की निपुणता प्रदर्शित की तो उसने गोरक्ष को अपने साथ ले चलने की अनुमति भी दे दी। रात्रि के समय कलिंगा ने राजमहल में अपना नृत्य-प्रदर्शन किया। मत्स्येन्द्रनाथ इस नृत्य पर मंत्रमुग्ध हो गए। गोरक्षनाथ ने तबलची के पेट में पीड़ा उत्पन्न कर दिया तो कलिंगा ने गोरक्ष से तबला बजाने का अनुरोध किया। गोरक्षनाथ ने तबले पर ''जाग मछन्दर गोरख आया'' की ताल पर धुन बजाना प्रारंभ किया और मत्स्येन्द्रनाथ में आत्मिक चैतन्य की ज्योति जागृत की।

रानी ने गोरक्ष को भी वशीभूत करना चाहा; किन्तु वे अन्त तक विरक्त बने रहे और मत्स्येन्द्रनाथ के राज्यसुखोपभोग के परित्याग की अनिच्छा को भी परिवर्तित कर दिया।

मत्स्येन्द्रनाथ के दो पुत्र हुए—

(१) **परशुराम** एवं (२) **मीनराम**। इस ग्रंथ व २३वें अध्याय के अनुसार ये भी महान सिद्ध हुए।

'सुधाकर चन्द्रिका' में भी यह उपाख्यान प्राप्त होता है।

* 'नाथचरित्र' में उल्लिखित मत्स्येन्द्रोपाख्यान *

(१) **प्रथम वृत्तान्त**—राजा मानसिंह के काल में भी संकलित 'नाथ-चरित्र' में भी मत्स्येन्द्रनाथ का आख्यान उपलब्ध होता है।

इस ग्रन्थ के अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ किसी समय संसार परिभ्रमण के लिए निकले थे। जब वे यात्रा के मध्य एक नगर पहुँचे तो उन्होंने देखा कि वहाँ के राजा का देहावसान हो चुका है और उसके मृत शरीर को उसके भृत्य **'वैकुण्डी'** में रखकर जलाने के लिए ले जा रहे हैं। मत्स्येन्द्रनाथ, अपने शरीर की रक्षा का दायित्व अपने शिष्यों को सौंपकर, परकाया-प्रवेश की विधि से उस मृत राजा के शरीर में प्रविष्ट हो गए। वह मृत राजा जीवित हो उठा। मत्स्येन्द्रनाथ उस शरीर के द्वारा यथेष्ट काल तक भोग विलास करते रहे।

एक बार हरद्वार में योगियों के जमघट में गोरक्षनाथ एवं कनीपाव में विवाद हो गया। कनीपाव ने गोरक्ष को उनके गुरु के विषय में पूरी कहानी सुनाकर उनके अध:पतन का वृत्तान्त बताया। गोरक्षनाथ ने राजा के मृत शरीर में स्थित मत्स्येन्द्रनाथ के पास जाकर उनको ज्ञानोपदेश करते हुए वहाँ से चलने के लिए प्रार्थना की। विमला देवी की अवतार **रानी परिमला** ने यह पूरा रहस्य जान लिया और वे बहुत दु:खी हुई। इस स्थिति से द्रवीभूत होकर मत्स्येन्द्रनाथ ने रानी से पुन: मिलने की प्रतिज्ञा की। मत्स्येन्द्रनाथ एवं गोरक्षनाथ के राजमहल छोड़ कर चले जाने पर रानी

अग्नि में प्रविष्ट होकर सती हो गईं। कालान्तर में वे एक राजा के यहाँ **जयन्ती** नामक कन्या के रूप में जन्मीं। उनके युवती होने पर मत्स्येन्द्रनाथ ने वहाँ पहुँच कर उनसे विवाह किया और **कदलीवन** में उसके साथ विहार करने लगे। देवों, सिद्धों के अतिरिक्त नाथ जी ने भी वहाँ जाकर उनका स्तवन करते हुए उन्हें आशीर्वाद दिया।

(२) द्वितीय वृत्तान्त—द्वितीय प्रकार के उपाख्यान में कथान्तर का स्वरूप बदल गया है।

इस कथान्तर के अनुसार एक बार मत्स्येन्द्रनाथ जी कामरूप जाकर वहाँ तपस्या करने लगे। जब वहाँ के राजा का निधन हो गया, तब वे उस राजा के मृत शरीर में प्रविष्ट हो गए। वे राजा के मृत शरीर में प्रविष्ट होकर उस राजा की भार्या मंगला के साथ विहार करने लगे। उन्होंने राजा की अन्य रानियों के साथ भी विहार किया। इससे उनके दो पुत्र भी उत्पन्न हुए। कालान्तर में रानियों ने मत्स्येन्द्र को पहचान लिया। इसी समय गुरु का उद्धार करने हेतु शिष्य गोरक्षनाथ भी वहाँ आ पहुँचे। गोरक्षनाथ मत्स्येन्द्र एवं उनके दो पुत्रों को लेकर राजमहल का त्याग करते हुए यात्रा पर आगे बढ़े। मत्स्येन्द्र का विषयासक्त मन स्वर्ण-रत्न, भोगैश्वर्य, विषसुख में आसक्त था। गोरक्षनाथ मत्स्येन्द्रनाथ की मनोवृत्ति को जान गए। उन्होंने अपनी सुरही के जल से एक पर्वत-शिखर को काञ्चन का बना दिया। इसे देखकर मत्स्येन्द्रनाथ ने स्वग्रीवा-धारित समस्त स्वर्णाभूषण तोड़कर फेंक दिये। इसके बाद गोरक्षनाथ ने अपनी सुराही के जल के छींटे से स्वर्णशिखर को स्फटिक शिखर के रूप में रूपान्तरित कर दिया। तीसरी बार उन्होंने उस पर्वतशृङ्ग को गैरिक बना दिया।

मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने दोनों पुत्रों को निकटस्थ नगर में भिक्षा माँगकर लाने का आदेश दिया। एक पुत्र को पवित्र भिक्षा प्राप्त नहीं हुई। अतः खाली हाथ लौट आया। उसे मत्स्येन्द्रनाथ ने **पार्श्वनाथ** होने का वरदान दिया। उनका यही प्रथम पुत्र **पार्श्वनाथ** हुआ। दूसरे पुत्र ने भिक्षा माँगी और एक चमार के घर से प्राप्त भोज्य पदार्थ भिक्षा के रूप में लेकर उसे पिता के समक्ष प्रस्तुत किया। मत्स्येन्द्रनाथ ने इसे अपवित्र भिक्षा मानकर इस द्वितीय पुत्र को शाप दिया **तू श्वेताम्बरी जैन** हो जा। इसके अनन्तर मत्स्येन्द्रनाथ एवं गोरक्षनाथ दोनों कदली वन चले गये।

*** 'नाथ सम्प्रदाय' एवं 'हठयोगविद्या' की दिशा में मत्स्येन्द्रनाथ की भूमिका ***

(१) नाथ-सम्प्रदाय एवं हठयोगविद्या के **'आदिप्रवर्तक' 'आदि उपदेष्टा'** एवं **'प्रथम नाथ'** तो 'आदिनाथ' (शिव) हैं।[१]

---

१. स्वात्मारामुनीन्द्रः श्री आदिनाथाय नमोस्तु तस्मै येनोपदिष्ट हठयोगविद्या। विभ्राजते प्रोन्नतिराजयोगमरोदुमिच्छोरधिरोहीणीव।।" —हठयोगदीपिका।

(२) **मानवौघ की दृष्टि** से 'नाथ-सम्प्रदाय' एवं 'हठविद्या' के प्रथम आचार्य एवं आद्य सिद्ध **मत्स्येन्द्रनाथ** हैं। मानवीय आचार्यों में **मत्स्येन्द्रनाथ हठयोग के आदि सिद्ध एवं अमर योगी हैं—**

योग की हठयोग-प्रणाली के **सर्वोच्च मानव गुरु एवं सर्वोच्च सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ** हैं। मत्स्येन्द्रनाथ अन्य सिद्धों के समान 'कालदण्ड का खण्डन' करके मृत्यु पर विजय प्राप्त कर चुके हैं और अमर हैं।

स्वात्माराम मुनीन्द्र की दृष्टि—स्वात्माराम मुनीन्द्र ने हठविद्या के सिद्धाचार्यों में आदिनाथ के अनन्तर सर्वप्रथम हठयोग—सिद्ध आचार्य के रूप में **मत्स्येन्द्रनाथ** का नाम रखा है—

"श्रीआदिनाथ**मत्स्येन्द्र**शाबरानन्द भैरवाः।
चौरङ्गी मीन गोरक्ष विरूपाक्ष विलेशयाः॥५॥
मन्थान भैरवो योगी सिद्धिर्बुद्धश्च कन्थडिः।
कोरण्टकः सुरानन्दः सिद्धिपादश्च चर्पटिः॥६॥
कानेरी पूज्यपादश्च नित्यनाथो निरञ्जनः।
कपाली बिन्दुनाथश्च काकचण्डीश्वराह्वयः॥७॥
अल्लामः प्रभुदेवश्च घोडाचोली च टिण्टिणिः।
भानुकी नारदेवश्च खण्डकापालिकस्तथा॥८॥
इत्यादयो महासिद्धा हठयोगप्रभावतः।
खण्डयित्वा कालदण्डं ब्रह्माण्डे विचरन्ति ते॥९॥"

—'हठयोग प्रदीपिका' : प्रथमोपदेश

स्वात्माराम मुनीन्द्र तो कहते हैं कि—हठविद्या को या तो **मत्स्येन्द्रनाथ** एवं गोरक्षादि योगी ही जानते हैं या तो मैं स्वात्माममुनीन्द्र ही जानता हूँ—

'हठविद्यां हि मत्स्येन्द्रगोरक्षाद्या विजानते।
स्वात्मारामोऽथवा योगी जानीते तत्प्रसादतः॥४॥'

—हठयोग प्रदीपिका : प्रथमोपदेश

आदिनाथ तो शिव हैं और वे ही **'नाथसम्प्रदाय' के प्रवर्तक हैं** और **मत्स्येन्द्रनाथ** उन्हीं आदिनाथ के प्रत्यक्ष शिष्य हैं—

"आदिनाथः शिवः सर्वेषां नाथानां **प्रथमोनाथः** ततो **नाथसम्प्रदायः** प्रवृत्त इति नाथ संप्रदायिनो वदन्ति। मत्स्येन्द्राख्यश्च आदिनाथशिष्यः।"

—ज्योत्स्ना : ब्रह्मानन्द

नाथ सम्प्रदाय और जैन धर्म—ऐसी मान्यता है कि (माया नगरी रूप सिंहल-द्वीप के राजा के रूप में अवस्थित) मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने पुत्र **नेमिनाथ एवं पारसनाथ** को **नाद-सम्प्रदाय** में दीक्षित किया था। **'नाद'** की स्थापना तथा **'बिन्दु'** की साधना के समन्वय से मुक्ति-प्राप्ति की साधन-प्रक्रिया में जो समन्वय स्थापित करके मत्स्येन्द्रनाथ ने तंत्र की साधना प्रचलित की उसमें— (१) योगभोगसाहचर्यवाद एवं (२) नाद-बिन्दु-समन्वय था। उन्होंने जब साधना को 'नाथ-सम्प्रदाय' में अंतर्भुक्त या प्रविष्ट करना चाहा, तब उसका उनके शिष्य गोरक्षनाथ ने विरोध किया। इस विद्रोह को दृष्टिगत रखकर मत्स्येन्द्रनाथ ने **नेमिनाथ** एवं पारसनाथ के माध्यम से पृथक् से यति-धर्म की स्थापना की; जो कि परवर्तीकाल में **जैनधर्म** कहलाया। उन्होंने आदिनाथ की पुनः प्रतिष्ठा के लिए अपने गुरु आदिनाथ (शिव) को सम्प्रदाय के संस्थापक एवं प्रवर्तक के रूप में पुनः प्रतिष्ठित किया। इस घटना से ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में नाथ-सम्प्रदाय एवं जैनमत दोनों की दार्शनिक दृष्टि अभिन्न थी; किन्तु परवर्तीकाल में चिन्तन के आयाम का क्षितिज बढ़ता गया और जैनमत एवं नाथ-सम्प्रदाय में भिन्नता के स्वर उत्तरोत्तर बढ़ते गए। अतः दोनों पृथक्-पृथक् हो गये। इनमें जैन निरीश्वरवादी एवं नाथपंथ ईश्वरवादी था तथा जैनी जैनमत में तांत्रिक उपादान के सन्निवेश के विरोधी थे।

मत्स्येन्द्रनाथ ने अपनी योग-परम्परा में **बिन्दु** के साथ **'नाद'** को भी महत्त्व दिया और इसकी स्थापना के लिए एक नव्य मत को प्राण-प्रतिष्ठित किया।

नाद-बिन्दु-योग तांत्रिक साधना है। गोरक्षनाथ इसके समर्थक नहीं थे। इसी कारण इस साधना के प्रयोग में संलग्न कामरूप के मत्स्येन्द्रनाथ को नाथपंथियों ने अधःपतन के गर्त में निमग्न मत्स्येन्द्रनाथ माना और गोरक्षनाथ ने उस तांत्रिक वाममार्ग से उन्हें मुक्त कराकर पुनः नादयोग-प्रधान, विशुद्ध (ब्रह्मचर्य पर आश्रित) योगमार्ग में पुनः प्रत्यावर्तित किया। 'नाद' के अभाव में 'बिन्दु' अधूरा है; क्योंकि—

"नादाद्बिन्दु समुद्भवः" (लक्ष्मणदेशिक)

"नाद" से ही 'बिन्दु' का उद्भव हुआ है। अतः 'बिन्दु' की कृतार्थता नादोन्मुख होने में है—चैतन्योन्मुख होने में है—न कि जाड्योन्मुख होने में। 'बिन्दु' का पिता 'नाद' है। अतः **'बिन्दु' को 'नाद' से जोड़ने की** साधना असमीचीन तो नहीं है; किन्तु यह साधना विशुद्ध ब्रह्मचर्य पर आधृत है और इस साधना की प्रथम सिद्धि **ऊर्ध्वरितसत्व की प्राप्ति है।** मत्स्येन्द्रनाथ ने योगीश्वर श्री कृष्ण के **'अच्युतेश्वर'** स्वरूप को (अर्थात् १६००० गोपियों के रहते हुए भी तथा उन्हें तृप्त करते हुए भी ब्रह्मचर्याश्रित रहकर—अस्खलितबिन्दु रहकर—जो योगसाधना की और उस योग का उपदेश दिया, उसी नादबिन्द्वात्मक (योगभोगसाहचर्यवादी) योग-साधना को)

आदर्श मानकर (मत्स्येन्द्रनाथ ने भी) सिंहलद्वीप में कौलयोगिनियों के मध्य रहकर (भोग करते हुए) 'वज्रोलीसाधना' के माध्यम से अच्युतेश्वरत्व की सिद्धि की साधना की।

मत्स्येन्द्रनाथ ने शिवोपलब्ध योग-तंत्र के ज्ञान को पुष्पित पल्लवित किया। **मत्स्येन्द्रनाथ** के गुरु भगवान् आदिनाथ (शिव) ने तीन धारायें प्रवाहित की थीं—

(१) साधना की **यौगिक धारा** 'हठयोग'

(२) साधना की **तांत्रिक धारा** 'कौलमत'

(३) साधना की **ज्ञान-धारा** 'शांकर अद्वैत

मत्स्येन्द्रनाथ ने भगवान शिव की तीन-साधना धाराओं अर्थात् (क) योग-धारा, (ख) तंत्र-धारा एवं (ग) ज्ञान-धारा की त्रिवेणी में (संगम में) स्नान करने की साधना का प्रवर्तन किया था। इसीलिए उनकी योग-साधना के साथ **तांत्रिक उपादान** और **अद्वैतवादी ज्ञान-मार्ग दोनों का मणिकाञ्चन योग** है। इसी के फलस्वरूप उन्होंने अपनी साधना में—(१) **'हठयोग'**, (२) **'वज्रोली एवं योग'** (योगभोग-साहचर्यवाद) (३) **'ज्ञानयोग'** (अद्वैतवादी शांकर ज्ञानमार्ग) तीनों योगों को सन्निविष्ट किया—

"योगोऽपि **ज्ञानहीनस्तु** न क्षमो मोक्षकर्मणि॥" (योगबीज)

एवं (४) **कुण्डलिनी-योग**—'सर्वेषां योग तंत्राणां तथाऽधारो हि **कुण्डली**।" चारों को अङ्गीकृत किया। श्रीकृष्ण ने योग में 'ज्ञान' एवं 'भक्ति' दोनों को अंगीकृत किया। मत्स्येन्द्रनाथ ने मात्र ज्ञानमार्ग को अंगीकृत किया। **भक्ति का यह तत्त्व** गोरक्षयोग में तो पाया जाता है; किन्तु मत्स्येन्द्र-योग में नहीं पाया जाता।

गोरक्षनाथ ने भी **'बिन्दुः साधना'** की और मत्स्येन्द्रनाथ ने भी की; किन्तु दोनों का मार्ग भिन्न था। गोरक्ष का मार्ग ब्रह्मचर्याश्रित (नारी-संयोग से पृथक्) बिन्दु-योग पर आधृत था, किन्तु मत्स्येन्द्र का मार्ग ब्रह्मचर्याश्रित मार्ग नहीं था; तथापि उसमें ब्रह्मचर्य का महत्व था; क्योंकि 'भोग' (नारी-संभोग) में 'योग((बिन्दु-स्खलन-निरोध) की साधना अन्तर्निहित थी और यह अधिक कठिन साधना थी और इसी कारण गोरक्षनाथ को भी (अपने गुरु मत्स्येन्द्र की प्रशंसा में) कहना पड़ा था कि—

(वज्रोली-सिद्धिगत ब्रह्मचर्य की साधना समीचीन है)

(१) 'भगमुखि ब्यंद अगनि मुखि पारा।
जो राखै सो **गुरु** हमारा॥'

(२) 'बजरी करंता अमरी राखै, अमरि करंता बाई।
भोग करंता जे व्यंद राखै ते गोरख का **गुरुभाई।'**

प्रश्न—प्रश्न उठता है कि यदि गोरक्षनाथ को '**बजरी करंता**' '**अमरी करंता बाई**' तथा '**भोग करंता जे व्यंद राखे**'—की तांत्रिकी योगभोगसाहचर्यवादी बिन्दु-साधना स्वीकार्य है तो मत्स्येन्द्रनाथी तांत्रिकी बिन्दु-साधना से उनकी साधना में क्या अन्तर है?

उत्तर—प्रथमत: तो यह कि गोरक्षनाथ की **बिन्दु-साधना 'लता-साधना' से संयुक्त नहीं थी**; किन्तु यदि नारी-संयोग के साथ बिन्दु-साधना उन्हें मान्य है—('भगमुखि व्यंद' 'जो राखै सो गुरु हमारा') तो यह कथन ठीक है। उसका कारण यह है कि उनकी साधना-पद्धति केवल सन्यासियों के लिए ही नहीं प्रत्युत् गृहस्थों के लिए भी थी। अत:—

'**भग मुखि** व्यंदअगिनि मुखि पारा।
जो राखै सो गुरु हमारा।।'

उनका सिद्धान्त गृहस्थों की बिन्दु-साधना का एक मार्ग था और इससे गृहस्थ दाम्पत्य जीवन व्यतीत करते हुए भी योगी (एवं ब्रह्मचारी) बने रह सकते थे। मत्स्येन्द्रनाथ कौल मत के अनुयायी हो गए थे। कौलों की तांत्रिकी बिन्दु-साधना में '**लता-साधना**' (पराई नारियों के साथ संभोग) भी मान्य था; जोकि गोरखनाथ को स्वीकार नहीं था। यही मत्स्येन्द्रनाथ कौलपरम्परागत बिन्दु-साधना एवं गोरक्षनाथी बिन्दु-साधना में प्रधान अन्तर था। गोरक्षनाथ बिन्दु-साधना को भी योग की उच्चकोटि की साधना मानते थे—

"**व्यंद** ही जोग **व्यंद** ही भोग। **व्यंद** ही हरै चौंसठि रोग।
या बिंद का कोई जांणै भेव। सो आपै करता आपै देव।।"

—गोरखबानी

गोरक्षनाथ कच्चे बिन्दु की साधना के पक्षधर नहीं थे। वे कच्चे बिन्दु को ('**वायुयोग**' एवं '**ब्रह्माग्नि**' से पक्का बनाते हुए) 'पक्का' करने की साधना के पक्षधर थे—

'स्वामीं काची बाई काचा जिंद। काची काया काया बिन्द।
क्यूं करि पाकै? क्यूं करि सीझै? काची अगमीं नीर न खीजै।।'

—गोरखबानी

तौ देवी पाकी **बाई** पाका जिंद। **पाकी काया पाका बिन्दु**
ब्रह्मअगनि अखण्डित बलै। **पाका अगनीं** नीर परजलै।।

—गोरखबानी

इसके लिए (१) निश्चल आसन (२) पवन-योग एवं (३) ध्यान योग भी आवश्यक है—

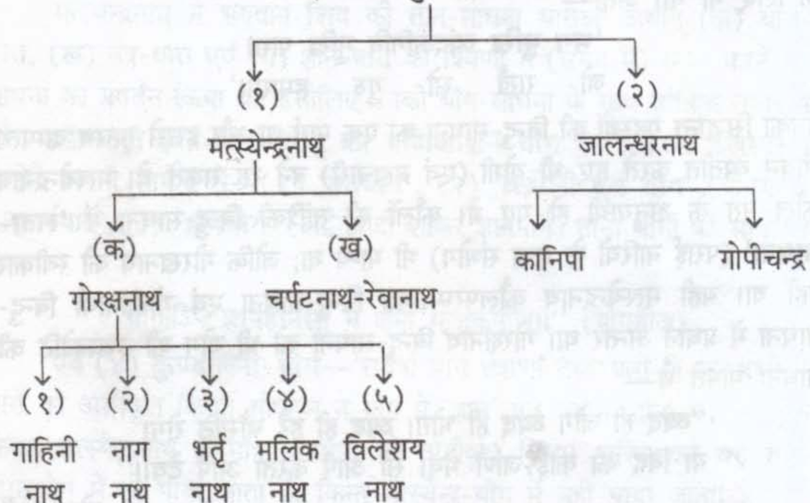
'निस्चल **आसन पवनां ध्यानं अगनीं** व्यंद न जाई।'

—इन साधनों से (१) अग्नि एवं (२) बिन्दु दोनों कभी नष्ट नहीं होते और ब्रह्मचर्य (बिन्दु-साधना) निर्बाध रूप से अचल रहता है।

(२) मत्स्येन्द्रनाथ की वंशवृक्षमूलक विराट व्यापकता

मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्यों-प्रशिष्यों, उनके सम्प्रदायों एवं उनकी शाखाओं तथा उपशाखाओं पर दृष्टिपात किया जाय तो संभवतः इतना विराट व्यक्तित्व, इतना व्यापक प्रभाव एवं भारत से अफगानिस्तान आदि विदेशों तक विराट व्यापक प्रसार की दृष्टि से संभवतः इतना महिमामण्डित व्यक्ति भारत में दूसरा कोई नहीं हुआ।

नाथ सम्प्रदाय की गुरु-शिष्य परम्परा



(३) मत्स्येन्द्रनाथ-प्रवर्तित नाथ-पंथ की शाखा-प्रशाखाओं का वंशवृक्ष

यद्यपि यह सत्य है कि नाथपन्थ की जो शाखा-प्रशाखायें हैं; वे सभी मत्स्येन्द्रनाथ से प्रत्यक्षतः सम्बद्ध नहीं हैं; किन्तु बीज की दृष्टि से देखा जाय तो वे सभी उनसे सम्बद्ध भी मानी जाएंगी।

गोरक्षनाथ ने नाथसम्प्रदायान्तर्गत वर्तमान; किन्तु इतस्ततः प्रसृत, समस्त नाथ-पंथीय शाखाओं को १२ शाखाओं में विभक्त करके नाथपन्थान्तर्गत संगठित किया।

कनफटा या दर्शनी योगियों के सम्प्रदाय गोरखनाथी योगियों के हैं और वे ही नाथ-योगियों के मुख्य सम्प्रदाय हैं। गोरखनाथी योगी मुख्यतः १२ शाखाओं में विभक्त हैं। ये **'बारहपंथी योगी'** कहलाते हैं।

नाथ पंथ की शाखायें (एक अनुश्रुति के आधार पर)

१२ शिव प्रवर्तित | १२ गोरक्षप्रवर्तित

(दोनों में परस्पर संघर्ष प्रारम्भ हुआ। अत: गोरखनाथ एवं भगवान शिव दोनों द्वारा ६-६ शाखायें भंग कर दी गई और फिर अद्यतन विद्यमान बारह पंथी शाखा की स्थापना की गई; जो आज भी उपलब्ध है।

(ब्रिग्स का मत)

१८ शिव-प्रवर्तित सम्प्रदाय | १२ गोरक्ष-प्रवर्तित सम्प्रदाय

(बाद में कलह। अत: शिव ने १२ एवं गोरक्ष ने ६ पंथ तोड़ दिए और अब १२ शाखायें प्रचलित हैं।)

आदिनाथ शिव के शिष्य और उनके सम्प्रदाय

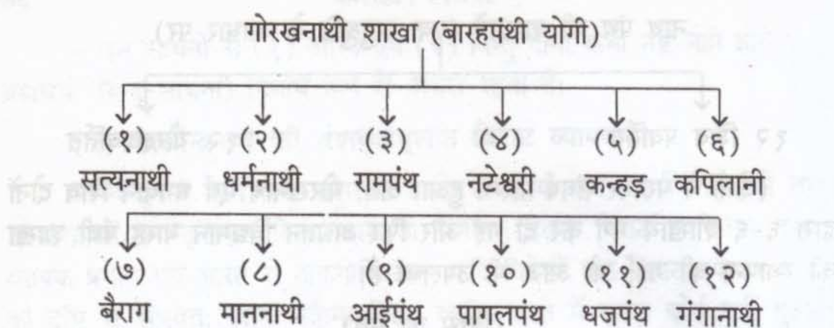
मत्स्येन्द्रनाथ → (गोरक्षनाथ)

जालन्धरनाथ → (कापालिक मत)

सम्प्रदायों का पुनर्गठन

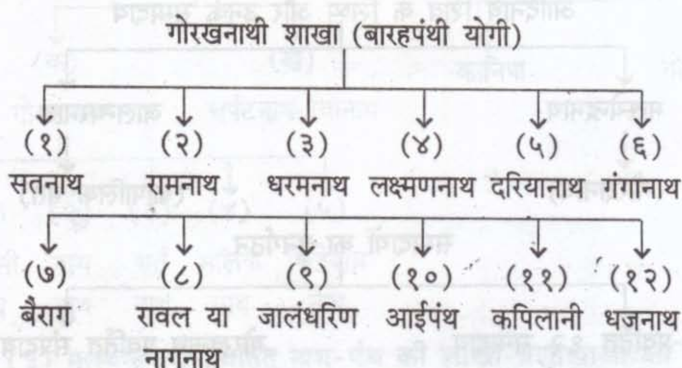
शिव-प्रवर्तित १२ सम्प्रदाय	गोरखनाथ प्रवर्तित संप्रदाय
(१) भूज कच्छ के कंठरनाथ	(१) हेठनाथ
(२) पेशावर और रोहतक के पागलनाथ	(२) आई पंथ के चोलीनाथ
(३) अफगानिस्तान के रावल	(३) चाँदनाथ कपिलानी
(४) पंख या पङ्क	(४) रतढोंडा, मारवाड़ का वैरागपंथ और रतननाथ।
(५) मारवाड़ के बन	(५) जयपुर के पावनाथ
(६) गोपाल या राम के संप्रदाय	(६) धजनाथ महावीर[1]

१. नाथ सम्प्रदाय



इन पंथों के प्रवर्तक यथाक्रम इस प्रकार हैं—सत्यनाथ, धर्मराजयुधिष्ठिर, रामचन्द्र, लक्ष्मण, गणेश, कपिलमुनि, भर्तृहरि, गोपीचन्द, विमला, चौरंगीनाथ, हनुमान एवं भीष्मपितामह।[1]

इन १२ पंथों के अतिरिक्त भी अनेक पंथ हैं। आजकल मान्य १२ नाथपन्थ इस प्रकार हैं।



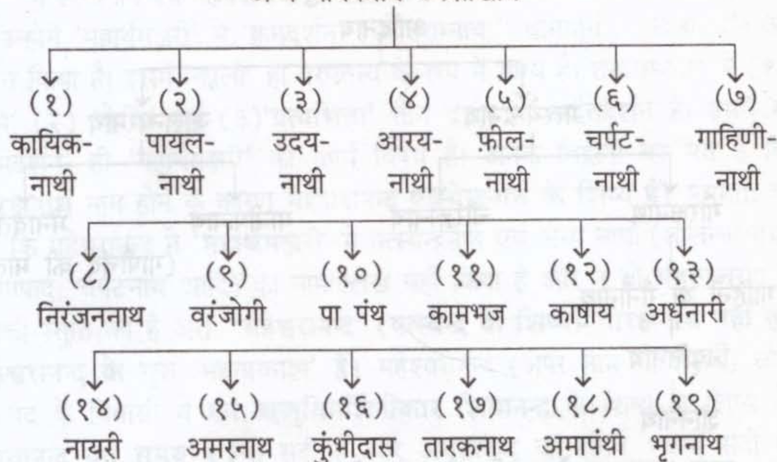
गोरखपुर की जनश्रुति के अनुसार अन्य शाखायें—

चौथी—नाटेसरी, **पाँचवीं**—कन्हड़, **आठवीं**—माननाथी, **नवीं**—आई पंथ, **दसवीं**—पागलपंथ है।[2]

---

१. नाथ सम्प्रदाय
२. नाथ सम्प्रदाय

अन्य नाथपंथीय उपशाखायें



आदि उपशाखायें। ब्रिग्स के अनुसार इनका विस्तार भारतवर्ष एवं अफगानिस्तान तक हैं।

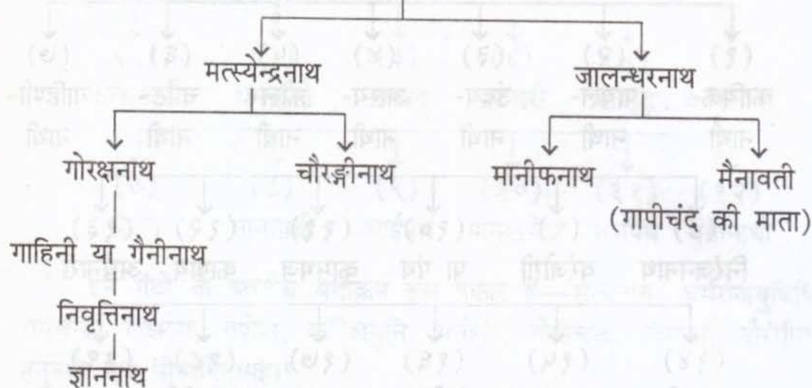
नाथपंथ की अन्य परम्परानुसार शाखायें

मत्स्येन्द्र प्रवर्तित	**गोरक्ष के शिष्यों द्वारा प्रवर्तित पंथ के नाम**
(१) गोरखनाथी	(१) **कपिलानी** (अजयपाल प्रवर्तित)
(२) गल या अरजनंगा (रावल)	(२) **करकाई** (आईपंथ के प्रवर्तक चोली नाथ) भूष्टाई पंथ भी चोलीनाथ संबद्ध है
(३) **मीननाथ सिवतोर** (जैन *)	(३) **सक्करनाथ** (कोई सम्प्रदाय नहीं)
(४) पारसनाथ पूजा (जैन *)	(४) **संतनाथ** (धर्मनाथ द्वारा पंथ प्रवर्तित)
	(५) **संतोषनाथ** (धर्मनाथ द्वारा पंथ प्रवर्तित)
	(६) **लक्ष्मणनाथ** (नटेसरी दरिया नाथ)

जालन्धरनाथ के शिष्य एवं सम्प्रदाय

- भरथरी नाथ
- कानिपा
  - कानिपा सम्प्रदाय
    - सांगरी सम्प्रदाय

रामचन्द्र पांगारकरप्रोक्त गुरु-परम्परा

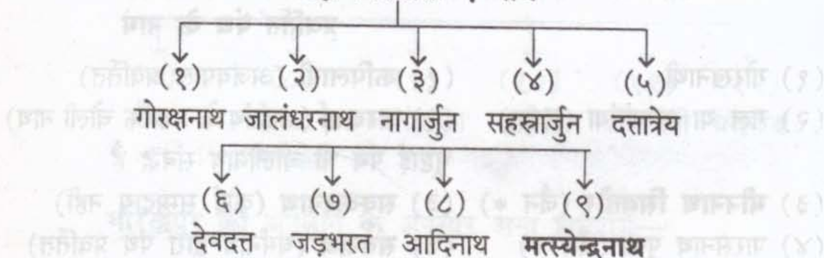


नाथ-सम्प्रदाय के सर्वमान्य आचार्य—

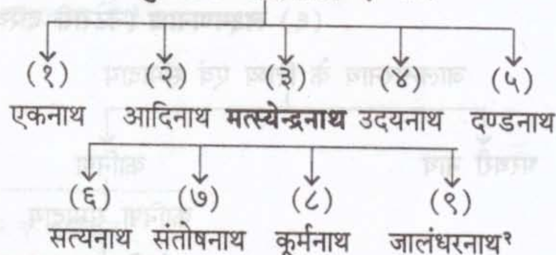
(१) मत्स्येन्द्रनाथ (२) जालन्धरनाथ (३) गोरक्षनाथ (४) कानिपा सर्वमान्य आचार्य हैं।

इनका नाम सब ग्रंथों में पाया जाता है।[१] **आदिनाथ, मत्येन्द्रनाथ, जालन्धरनाथ** एवं **गोरक्षनाथ** के नाम नाथों, तांत्रिकों सिद्धों तथा तिब्बती परम्परा के सहजयानी बौद्धसिद्धों में समान रूप से पाये जाते हैं।

महार्णवतंत्रोक्त ९ नाथ



सुधाकर चन्द्रिकोक्त ९ नाथ



---

१. नाथ सम्प्रदाय २. नाथ सम्प्रदाय

मत्स्येन्द्रनाथ एवं महेश्वरानन्द—'महार्थमञ्जरी' के प्रणेता का अपर नाम **'गोरक्षनाथ'** है। उन्होंने 'महार्थमञ्जरी' में 'क्रमदर्शन' ('औत्तराम्नाय:' 'वाममार्ग', 'कालीनय') का वर्णन किया है। इसमें 'काली' ही परमतत्त्व के रूप में मान्य है। तन्त्रसम्प्रदाय में (१) 'क्रम' (२) 'केलि' एवं (३)**'प्रत्यभिज्ञा'** तीन दर्शन ही अद्वैतदर्शन हैं। इसमें से 'क्रमदर्शन' ही 'महार्थमञ्जरी' का वर्ण्य विषय है। अनेक विद्वानों का मत है कि **गोरक्षनाथ** नाम होने के कारण **महेश्वरानन्द मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य हैं।** प्रथमत: तो यह कि महेश्वरानन्द ने **'महार्थमञ्जरी'** में मत्स्येन्द्रनाथ एवं अन्य नाथों (जालन्धरनाथ, कृष्णपाद, चर्पटनाथ आदि) का नामोल्लेख नहीं किया है और न तो मङ्गलाचरण में उनकी स्तुति की है अत: **'महेश्वरानन्द' (मत्स्येन्द्र के शिष्य) गोरक्षनाथ नहीं हैं। महेश्वरानन्द के गुरु 'महाप्रकाश' हैं।** महेश्वरानन्द (अपर नाम गोरक्षनाथ) चोल जनपद के निवासी थे एवं **ऋजुविमर्शिनीकार शिवानन्द** के शिष्य के शिष्य थे। **शिवानन्द का समय** १३वीं सदी है और **अमृतानन्द** का समय १४वीं सदी है। महशेवरानन्द इन्हीं दोनों टीकाकारों की स्थिति के मध्यकाल में आविर्भूत हुए थे। **मत्येन्द्रनाथ का समय** तो ख्रीष्ट शताब्दी के अनुसार ९वीं या १०वीं सदी में हुआ था। शिवानन्द ने **क्षेमराज** का बार-बार उल्लेख किया है जो कि **अभिनव गुप्त के शिष्य** थे। **अभिनव गुप्त के पूर्व मत्स्येन्द्रनाथ हो चुके थे,** इसीलिए उन्होंने 'तन्त्रालोक' में मत्स्येन्द्रनाथ को 'मच्छन्दविभु' कहकर उनका सश्रद्ध नमन किया है।

शिवानन्द के पूर्ववर्ती **क्षेमराज** हैं। क्षेमराज के पूर्ववर्ती **अभिनवगुप्त** हैं और अभिनवगुप्त के पूर्ववर्ती **मत्स्येन्द्रनाथ** हैं। अत: शिवानन्द के प्रशिष्य महेश्वरानन्द मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य कैसे हो सकते हैं?

चोलदेश के निवासी **'महाप्रकाश' ही महेश्वरानन्द के गुरु थे।** उन्होंने **'महाप्रकाश'** (अपने गुरु) की वन्दना भी की है—'नत्वा नित्यशुद्धौ गुरोश्चरणौ **महाप्रकाशस्य।''** वे अपने को **'गोरक्षनाथ'** भी कहते हैं—**'गोरक्षोलोकधिया** देशिक दृष्टया **महेश्वरानन्द:।।'**

इससे सिद्ध होता है कि उनका घरेलू नाम गोरक्षनाथ था; किन्तु दीक्षा के समय उन्हें जो नाम दिया गया, वह देशिकप्रदत्त नाम **'महेश्वरानन्द'** है। इस प्रकार उनके दो नाम थे। मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरक्षनाथ का गोरक्षनाथ नाम के बाद 'महेश्वरानन्द' नाम कभी नहीं रखा गया।

महेश्वरानन्द ने 'ईश्वर प्रत्यभिज्ञा' 'शिवदृष्टि' 'तन्त्रालोक' 'अभिनवगुप्तपाद' 'स्पन्दकारिका' एवं अपने परमगुरु के ग्रंथ 'सौभाग्यहृदयस्तोत्र'' 'शिवसूत्र' 'प्रत्यभिज्ञावृत्ति' 'परमार्थ संग्रह' 'स्तोत्रावली' 'अजडप्रमातृ सिद्धि' (उत्पलदेवप्रणीत 'श्रीतन्त्रवटधानिका'

'कोमल वल्लीस्तव' नामक अपनी रचना', 'स्पन्दसन्दोह' (क्षेमराज) 'कक्ष्यास्तोत्र' 'एताश्च श्री क्षेमराजादिभिः'' स्वप्रणीत 'श्रीपरास्तोत्र' 'स्वप्रणीत 'श्रीपादुकोदयतंत्र' 'चिद्गगनचन्द्रिका' 'महानयप्रकाश' स्वप्रणीत 'महार्थोदय' अपने परगुरु के ग्रंथ—'श्रीत्रिपुरसुन्दरी मन्दिर स्तोत्र'—का उल्लेख 'परिमल' में किया है। इसमें से अनेक ग्रंथ तो अभिनव गुप्त के भी परवर्तीकाल की रचनायें हैं अतः **महेश्वरानन्द मत्स्येन्द्र के शिष्य नहीं हो सकते।** इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने परमगुरु के जिन ग्रंथों का नाम उल्लिखित किया; है वे न तो मत्स्येन्द्रनाथ-विरचित हैं और न तो अपने द्वारा प्रणीत कहे गए ग्रंथ मत्स्येन्द्र-शिष्य गोरक्षनाथ प्रणीत ही हैं। इन सारे साक्ष्यों एवं तर्कों से सिद्ध होता है कि महेश्वरानन्द का लोकनाम भले ही **'गोरक्षनाथ'** हो फिर भी वे मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य नहीं हैं।

* कौलज्ञाननिर्णयोक्त कौल-सम्प्रदाय और मत्स्येन्द्रनाथ

'कौलज्ञाननिर्णय' 'तंत्रालोक' आदि ग्रंथों के प्रमाणों के आधार पर यह कहा गया है कि कौलमार्ग के प्रवर्तक मत्स्येन्द्रनाथ थे। विभिन्न परम्परायें भी इसी तथ्य की पुष्टि करती हैं। 'कौलज्ञाननिर्णय' (षोडश पटल) नामक ग्रंथ एवं 'कुलागम' या 'कौलशास्त्र' कौलज्ञान का उपदेष्टा मत्स्येन्द्रनाथ को स्वीकार भी करता है। जब ''कौलज्ञान'' की विभिन्न दृष्टियों, सिद्धान्तों एवं मत-मतान्तरों को समन्वित रूप में प्रस्तुत किया गया; तब यह निष्कर्ष निकला कि कौलज्ञान या कौलागम का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। 'कौलज्ञाननिर्णय' (चतुर्दश पटल) में कौलों की विभिन्न शाखाओं की विभिन्न साधनाओं का भी वर्णन प्राप्त होता है। इनके विभिन्न नाम इस प्रकार हैं—

सम्प्रदाय या शाखाओं के नाम[१]	कौ०ज्ञा०नि० में उल्लेख (श्लोक सं०) (चतुर्दश पटल)
(१) 'रोमकूपादिकौलिक'	श्लोक क्र० ३२
(२) 'वृषणोत्थ कौल'	श्लोक क्र० ३३
(३) 'वह्निकौल'	श्लोक क्र० ३४
(४) 'कौलसद्भाव'	श्लोक क्र० ३७
(५) 'पदोत्तिष्ठ कौल'	श्लोक क्र० ४३

(सोलहवें पटल में इन कौल शाखाओं से पृथक् अन्य कौल-शाखाओं का नामोल्लेख इस प्रकार किया गया है।)

(१) 'महाकौल' (२) 'सिद्धकौल' (३) 'ज्ञान निर्णीति कौल'
(४) महत्कौल (५) 'सिद्धामृत कौल'

'सिद्धामृत कौल'

(१) 'मत्स्योदरकौल'

(२) 'योगिनीकौल'

'कुलशास्त्र' एवं 'कौलज्ञान' (जिनका उल्लेख 'कौलज्ञाननिर्णय' आदि ग्रंथों में किया गया है)।

कौलसिद्धान्त या कौलमत की प्राचीनता—'कौलज्ञाननिर्णय' (पटल ६) के श्लोक क्र० ९ में कहा गया है कि—यह कौलिकज्ञान (श्रुतियों की ही भाँति) श्रुति-परम्परा से बहुत प्राचीन काल से (परम्परागत रूप से) चला आ रहा है।—

'कौलिकन्त इदं देवि ! कर्णात् कर्णसमागतम् ।' (६/९)

इस कथन से यह सिद्ध होता है कि **कौलमार्ग के आदि प्रवर्तक मत्स्येन्द्रनाथ नहीं हैं**। मत्स्येन्द्रनाथ उस लुप्तप्राय कौलज्ञान या कौलमत के उद्धारक मात्र हैं। मत्स्येन्द्र का ज्ञान तो शिवोपदिष्ट ज्ञान है। अतः उसे मत्स्येन्द्र से बहुत प्राचीन काल का मानना ही पड़ेगा।

डॉ० द्विवेदी और बागची महोदय की दृष्टियाँ—

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी महोदय ने **'रोम कूपादि कौल' 'वृषणोत्थकौल' 'वह्निकौल' 'कौलसद्भाव'** एवं **'पदोतिष्ठकौल'** (कौ० ज्ञा० नि० चतुर्दश पटल में उल्लिखित) को **'सिद्धिपरक'** स्वीकार किया है और कहा है कि प्रो० बागची ने 'कौ० ज्ञान निर्णय' की भमिका में जो इन्हें कौलमार्ग के सम्प्रदायों के रूप में स्वीकार किया है; वह मुझे स्वीकार्य नहीं है—

(१) 'विद्वानों ने इनका सम्प्रदायपरक तात्पर्य बताया है, परन्तु मुझे ऐसा लगता है कि ये शब्द संप्रदायपरक न होकर सिद्धिपरक हैं।

(२) "यद्यपि चौदहवाँ पटल 'देव्युवाच' से शुरू होता है, पर सारा पटल देवी की उक्ति के रूप में नहीं है; बल्कि भैरव के उत्तर के रूप में है, क्योंकि इसमें देवी को सम्बोधित किया गया है। उत्तर देने के ढंग से लगता है कि भैरव (शिव) ऐसे ध्यान की विधि बता रहे हैं, जिसमें **मंत्र, प्राणायाम और चक्रध्यान** की जरुरत नहीं होती और फिर भी वह परम **सिद्धिदायक** होता है।'

(३) 'इस पटल की पुष्पिका से भी पता चलता है कि यह ध्यान-योग-मुद्रा का प्रकरण है—इसीलिए मुझे ये शब्द सिद्धिपरक जान पड़ते हैं। **ये सम्प्रदाय वाचक नहीं हैं।**"[१]

---

१. नाथसम्प्रदाय (सं० द्वि०) पृ० ६२

डॉ० प्रबोध चन्द्र बागची महोदय कहते हैं कि—

(१) 'कौलज्ञान निर्णय' के चतुर्दश पटल में उल्लिखित **'रोमकूपादिकौलिक'** (३२), **'वृषणोत्थकौल'** (३३) **'वह्निकौल'** (३४) **'कौलसद्भाव'** (३७) एवं **'पादोतिष्ठकौल'** (४३)—कौलमत के Different sections हैं और उन्हीं 'Sections' का नाम 'रोमकूपादिकौलिक' आदि हैं और उनमें —(कौलशाखाओं या 'Sections' में) विभिन्न प्रकार की कौलमार्गीय साधनायें (Practices) प्रचलित थीं। अन्य सम्प्रदायों (शाखाओं या Sections) का नाम **'महाकौल' 'सिद्धकौल'** आदि था।[१]

कौलज्ञान का सम्प्रदायगत उत्तरोत्तर विकास—

कौलज्ञान के उत्तरोत्तर क्रमिक विकास के सम्बन्ध में 'कौलज्ञाननिर्णय' के सोलहवें पटल में कहा गया है कि—

'कथितं कालिका योगी सर्वकौलस्य निर्णयम्।
भक्तियुक्ता समत्वेन सर्वे शृण्वन्तु कौलिकम्।।४६।।
महाकौलात् सिद्धकौलं सिद्धकौलात् मत्स्योदरम्।
चतुर्युगविभागेन अवतारश्चोदितं मया।।४७।।
ज्ञानादौ निर्णीतिः कौलं द्वितीये महत् संज्ञितम्।
तृतीये सिद्धामृतन्नाम कलौ मत्स्योदरं प्रिये।।४८।।
ये चास्मानिर्गता देवि! वर्णयिष्यामितेऽखिलम्।।
एतस्माद् योगिनीकौलान्नाम्ना ज्ञानस्य निर्णीतौ।।४९।।'

निष्कर्ष यह है कि— (१) आदि युग में जो कौलज्ञान था, वही विकसित होकर अनेक युगों में अनेक नामों से प्रचलित हो गया।

(२) आदियुग में कौलज्ञान : 'कौलज्ञान'

(३) त्रेतायुग में कौलज्ञान : 'महत्कौल'

(४) द्वापरयुग में कौलज्ञान : 'सिद्धामृत'

(५) कलियुग में कौलज्ञान : 'मत्स्योदरकौल' के नाम से प्रचलित हुआ।

यह भी ध्यातव्य है कि यदि कौलज्ञान के आदि प्रवर्तक मत्स्येन्द्रनाथ होते तो क्या वे 'सत्ययुग' में थे? यदि नहीं थे तो स्पष्ट है कि कौलमार्ग के आदि प्रवर्तक वे नहीं थे।

उपर्युक्त उद्धृतांश यह संकेतित करता है कि कौल-परम्परा अत्यन्त प्राचीन है और वह मत्स्येन्द्रनाथ की पूर्ववर्तिनी ज्ञान-परम्परा है।

---

१. प्रबोध चन्द्र बागची (कौलज्ञाननिर्णय की भूमिका)

उद्धृत श्लोकावली का अर्थ यह है कि—जिस ज्ञान को अद्यपर्यन्त भगवान शिव ने भगवती पार्वती एवं षडानन मात्र को सुनाया था, उसे सभी लोक भक्तिपूर्वक समानभाव से सुनें। **'महाकौल'** के अनन्तर **'सिद्धकौल'** एवं **'सिद्धकौल'** के अनन्तर **'मत्स्योदर'** अवतरित हुए। भगवान शिव ने चारों युगों में चार अवतार धारण करके इनका उपदेश चारों युगों में दिया।

कौलज्ञान का नाम (अवतरित ज्ञान का नाम)	**युग**
(१) प्रथम युग में नाम 'कौलज्ञान'	सत्ययुग
(२) द्वितीय युग में नाम 'सिद्धकौल'	त्रेतायुग
(३) तृतीय युग में नाम 'सिद्धामृत'	द्वापर युग
(४) चतुर्थ युग में नाम 'मत्स्योदर'	कलियुग
(५) मत्स्योदर से अवतरित ज्ञान	**'योगिनीकौल'** है।

यह भी एक ध्यातव्य बिन्दु है कि 'कौलज्ञान निर्णय' में 'कौलमार्ग' के विषय में यह कहा गया है कि इसके जो भी रूप हैं वे **'अवतरित'** हैं। 'अवतार' तो पूर्वविद्यमान वस्तु के प्राकट्य को कहते हैं, न कि नवाविर्भाव या नवोद्भव को। अतः मत्स्येन्द्रनाथ (कलियुग के सिद्ध) को सत्ययुग-त्रेता-द्वापर-कलियुग में निरन्तर बने रहना मानना भी तर्क-संगत नहीं है और कौलमार्ग को सत्ययुग में भी विद्यमान मानने से और उस काल में मत्स्येन्द्रनाथ के अविद्यमान रहने से इस मार्ग का आदि प्रवर्तक उन्हें मानना भी ऐतिहासिक दृष्टि से तर्कोपपन्त नहीं है।

'कौलज्ञाननिर्णय' में यह भी कहा गया है कि मत्स्येन्द्रनाथ ने महाज्ञान भूलने के बाद कामरूप में योगिनियों के साथ जो ज्ञान सीखा और उसे अपने ग्रंथों में संगृहीत किया, वह कौलज्ञान तो कामरूप की योगिनियों के घर-घर में ज्ञात था। मत्स्येन्द्रनाथ ने उस ज्ञान का मात्र सार भाग संगृहीत किया और उसे पुस्तक का रूप दे दिया। निष्कर्ष यह कि मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा प्राप्त ज्ञान **'अवतरित'** (पूर्वपरम्परागत ज्ञान के पुनः प्रकटित रूप) ज्ञान था, न कि उनका स्वाविर्भूत ज्ञान—

'तस्य मध्ये इमं नाथ **सारभूतं समुद्धृतं।**
कामरूपे इदं शास्त्रं योगिनीनां गृहे गृहे॥'[१]

आगे यह भी कहा गया है कि यह अवतरित कौल ज्ञान मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा सर्वप्रथम कामरूप की योगिनियों से प्राप्त किया गया, किन्तु इसकी आदि प्रवर्तिका

१. कौलज्ञाननिर्णय : (२२।१०)

ये योगिनियाँ भी नहीं थीं; क्योंकि कामरूप की योगिनियों के द्वारा इसे जानने के पूर्व यह चन्द्रद्वीप में उपदिष्ट हो चुका था—

'चन्द्रद्वीपं महाशास्त्रं अवतीर्णं सुलोचने।
कामाख्ये गीयते नाथे महामत्स्योदरस्थितिः॥'

कामाख्या में इस ज्ञान को महामत्स्य ने बाद में गाया। कामाख्या में महामत्स्योक्त यह ज्ञान भी मत्स्येन्द्र का नहीं था, बल्कि यह चन्द्रद्वीप में 'अवतीर्ण' ज्ञान का उपदेश था—

'चन्द्रद्वीपं महाशास्त्रं **अवतीर्णं** सुलोचने।'

'चन्द्रद्वीप' में **'अवतीर्ण ज्ञान'** भी नवोद्भूत नहीं था, प्रत्युत् मात्र **'अवतीर्ण'** (पूर्वविद्यमान ज्ञान का प्रकटित स्वरूप) था।[१]

यदि हम २१वें पटल पर दृष्टिपात करें तो वहाँ अनेक कौलमार्गों का उल्लेख प्राप्त होता है। इन्हें डॉ० द्विवेदी ने भी **'कौलमार्ग'** स्वीकार किया है।

डॉ० बागची महोदय का मत है कि—

(क) मत्स्येन्द्रनाथ ने **'योगिनी कौल मार्ग'** का प्रवर्तन किया और (ख) वे (मत्स्येन्द्रनाथ) **'सिद्धामृत मार्ग'** के अनुयायी थे।

(नाथपंथी साधक अपने को **'सिद्धमार्ग'** का अनुवर्ती स्वीकार भी करते हैं। परवर्ती काल में नाथ-साधकों को **'अवधूत'** एवं **'सिद्ध'** कहा भी जाता रहा।)

मत्स्येन्द्रनाथ की मूल दृष्टि—मत्स्येन्द्र ने अपनी मूल दृष्टि का त्याग करके कामरूप की कामिनियों और कदली देश की योगिनी रमणियों के मोह-पाश में आबद्ध होकर उनके साधना-मार्ग एवं दर्शन को स्वीकार कर लिया था। अतः उनकी मूल दृष्टि 'योगिनी कौलमत' के पूर्व की दृष्टि थी।

जहाँ तक द्वापर युग के **'सिद्धमार्ग'** की बात है, वह मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा उपदिष्ट एवं परवर्ती काल में प्रवर्तित **'कौलज्ञान'** से भिन्न था।

मत्स्येन्द्र ने कामरूप में साधना की।

(क) मत्स्येन्द्रनाथ पहले तो सिद्ध या **'सिद्धामृतमार्ग'** के अनुवर्ती थे; किन्तु बाद में **वाममार्ग की कामरूप वाली शाखा** के **कौलमार्ग** के अनुवर्ती बन गए और इस कौलमार्गानुगमन के बाद उन्होंने जिस साधना-मार्ग का प्रवर्तन किया उसका

---

१. (कौलज्ञाननिर्णय (पटल २२)

नाम था—**'योगिनी कौलमार्ग'** चूँकि उन्होंने कौलज्ञान की अपनी दृष्टि का प्रवर्तन भी किया; इसीलिए उन्हें कौलज्ञान या कौलमार्ग का प्रवर्तक कहा गया है।

सारांश यह है कि—

(क) मत्स्येन्द्रनाथ **'सिद्धमार्ग'** या **'सिद्धकौलमार्ग'** (सिद्धामृतमार्ग) के अनुयायी थे।

(ख) कौलज्ञान मत्स्येन्द्रनाथ के मध्यवर्ती जीवन का ज्ञान था।

(ग) उन्होंने **'योगिनी कौल मार्ग'** का प्रवर्तन किया।

मत्स्येन्द्रनाथोल्लिखित अन्य कौल-सम्प्रदाय

मत्स्येन्द्रनाथ ने 'कौलज्ञाननिर्णय' के इक्कीसवें पटल में अनेक कौल-सम्प्रदायों का उल्लेख किया है, जो निम्नाङ्कित हैं—

(१) **'कल्पपञ्चाशिका'** (२) **'कुलसागर'** (३) **'कुलोघ'** (४) **'कुलहृदय'** (५) **'भैरवोद्यानक'** (६) **'चन्द्रकौल'** (७) **'ज्ञानकौल'**[१]

इनमें अनेक अन्य सम्प्रदाय भी उल्लिखित हैं यथा—

(१) **'सम्बर'** (२) **'सृष्टिकौल'** (३) **'महाकौल'** (४) **'तिमिर'** (५) **'अमृतसिद्ध'** (६) **'कुलकौलमत'** (७) **'शक्तिभेद कौल'** (८) **'अनुत्तरऊर्मिकौल'** (९) (चारों युगों के) **'ज्ञान कौल'** (१०) **'सिद्धेश्वर'** (११) **'वज्रकौल'** (१२) **'मेघजकौल'**[२]

देवी के द्वारा यह कहने पर कि—

'संग्रहं वद में नाथ वर्तनं कुलगोचरे'

अर्थात् हे देव! आप मुझे कौलमार्ग के विभिन्न सम्प्रदायों के विषय में बताइए—

भैरव ने देवी से कहा कि—

कथयामि न सन्देहो संग्रहाचार लक्षणम्।
पञ्चपञ्चाशिको देवि! मतं वै योगलक्षणम्।
तस्य भेदोपभेदेन कौलशास्त्रे विनिर्णयम्।
कुलपञ्चाशिकामूलं तथा च कुलसागरम्।
कुलोघो हृदयश्चैव भैरवोद्यानकं तथा।
चन्द्रकौलश्च वेष्टिश्च तथा वै ज्ञाननिर्णयम्।

---

१. कौलज्ञाननिर्णय (२१/२-४)
२. कौलज्ञाननिर्णय (२१/४-७)

अस्य मध्ये विनिष्क्रान्तं सम्बरनाम विश्रुतम्।
सृष्टिकौलं महाकौलं तिमिरं च तथापरम्।
सिद्धामृतं तु कौलं महाकौलं तथापरम्।।
शक्तिभेदं तथा कौलं ऊर्मिकौलमनुत्तमम्।
चतुर्युगेषु देवेशि ! ज्ञानकौलस्य सङ्गतिः।।
सिद्धेश्वरं तथा चान्यं कौलं वै वज्रसम्भवम्।
मेघजाश्च दूरतं तस्मिन् कौले विनिर्गतम्।।[१]

मत्स्येन्द्रनाथ की साधना—मत्स्येन्द्रनाथ व्यक्तित्व के दो स्वरूप हैं—

(१) योगी एवं (२) वाममार्गी तांत्रिक। उनकी साधना के भी दो स्वरूप हैं—

(क) **'सिद्धामृतमार्ग'** की साधना—योगमार्ग की साधना (कामरूप की कौलमार्गी योगिनियों के मोहपाश में निबद्ध होने के पूर्व) सिद्धामृत मार्ग की साधना।

(ख) कामरूप में **'योगिनीकौलमार्ग'** का प्रवर्तन एवं कामरूप में कौलयोगिनियों द्वारा उपासित कौल मार्ग की साधना।

—०—

१. कौलज्ञाननिर्णय (२१/१-७)

* गोरक्षनाथ *

(* मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य : गोरक्षनाथ *)

'गकारो गुण संयुक्तो रकारो रूपलक्षण:।
क्षकारेणाक्षयं ब्रह्म श्रीगोरक्ष नमोऽस्तुते।।'[१]

(१) **'गोरक्षोपनिषद्'** में कहा गया है—

'गा: इन्द्रियाणि रक्षतीति गोरक्ष:।'

(२) **'गोरक्षशब्द-निरुक्ति'** में कहा गया है—
'रक्षतीति रक्ष: गवांरक्ष: गो रक्ष।' (यावद् गोपदवाच्यं रक्षति स गोरक्ष:।।''

प्राचीन ग्रंथों में नौ नाथ एवं चौरासी सिद्धों के जो नाम उपलब्ध होते हैं, उनमें गोरक्षनाथ का नाम भी उपलब्ध होता है।

'महार्णवतन्त्र' 'वर्णरत्नाकर' 'हठयोगप्रदीपिका' 'कौलावली तंत्र' 'श्यामारहस्य' 'सुधाकर चन्द्रिका' 'ज्ञानेश्वरी' 'योगिसम्प्रदायाविष्कृति' कौलज्ञाननिर्णय' आदि ग्रंथों में गोरक्षनाथ के नाम का उल्लेख प्राप्त होता है।

'गोरक्ष' शब्द का उल्लेख अथर्ववेद 'शिवपुराण' 'ब्रह्माण्डपुराण' 'स्कन्दपुराण' (केदार खण्ड), मार्कण्डेय पुराण' 'महाकाल संहिता' 'योगशास्त्र कल्पद्रुम' आदि ग्रंथों में भी पाया जाता है। गोरक्षनाथ नाथ-सम्प्रदाय के महान् सिद्ध योगीं हैं।

ब्रिग्स महोदय की दृष्टि—ब्रिग्स महोदय तर्कों के आधार पर यह अनुमान लगाते हैं कि गोरक्षनाथ पहले **वज्रयानी बौद्ध** थे और उसके बाद वे **शैव बन** गए।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि—

(१) 'गोरक्षनाथ निश्चित रूप से **ब्राह्मण जाति** में उत्पन्न हुए थे और ब्राह्मण वातावरण में बड़े हुए थे।'

(२) ''उनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथ भी शायद ही कभी बौद्ध साधक रहे हों।।''[२]

(३) गोरक्षनाथजी को चारों युगों में अवतार लेने वाला कहा गया है। उन्हें महेश्वरावतार भी कहा गया है।

गोरक्षनाथ का आविर्भाव काल—

(१) **डा० शहीदुल्ला** : विक्रम की **आठवीं 'सदी'** (८)।

---

१. गोरक्षनाथ स्तोत्र

२. नाथसम्प्रदाय (पृ० १०७)

(२) **नागरी प्रचारिणी सभा की खोज :** सन् १९०२ : **१५वें शतक** का आरम्भ।

(३) **डा० फ़र्कुहर :** १३वें शतक का मध्यकाल। ईसवी संवत् १२०० अर्थात् विक्रमी संवत् १२५७।

(४) **डा० पी० द० बडथ्वाल :** (गोरक्षनाथ का जीवन काल एवं आविर्भाव) ९०७ के बाद का होना चाहिए। गोरखनाथ का **समय ११वें शतक का मध्य** ही रहता है। गोरखनाथ का समय **संवत् १०५० के आसपास है।**[१]

(५) **पं० परशुराम चतुर्वेदी**—परशुराम जी कहते हैं—

(१) गुरु गोरक्षनाथ का आविर्भाव-काल ईसा की ७वीं सदी से १२वीं सदी तक का विद्वानों ने अनुमान लगाया है।

(२) इसी काल में बौद्ध धर्म का ह्रास एवं शैवधर्म का पुनरुद्धार हुआ। ८वीं, ९वीं शताब्दियों तक सरहपा आदि सिद्धों की स्थिति थी। ११वीं, १२वीं शताब्दी का समय गोरखनाथ के भिन्न-भिन्न शिष्यों का समय था।

(३) गोरखनाथ के जीवनकाल के लिए ईसा की **१०वीं शताब्दी** अथवा अधिक से अधिक **११वीं** सदी के प्रारंभिक भाग में अर्थात् विक्रम की ११वीं शताब्दी में ही कोई काल निश्चित किया जाना उचित है।

(विक्रम की ११वीं सदी या ईसा की १०वीं सदी)

(४) 'तंत्रालोक' में मत्स्येन्द्र को 'मच्छन्दविभु' कहा गया है। अभिनव गुप्त ११वीं सदी के हैं। मच्छन्द एवं गोरक्ष समकालीन हैं। अत: गोरक्ष का समय विक्रम की ११वीं सदी के आरंभिक काल से भी पूर्व अर्थात् ईसा की १०वीं सदी का काल माना जा सकता है।

डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल का कथन है कि गोरखनाथ का सबसे पुराना मन्दिर अलाउद्दीन ने ढहाया था। इस मन्दिर को त्रेता युग में शिव ने निर्मित किया था। अलाउद्दीन के समय में इस मन्दिर का संबंध गोरखनाथ से हो गया था। अलाउद्दीन का राजत्वकाल संवत् १३५३ से १३७३ है। इससे सिद्ध होता है कि १५वें शतक के आरम्भ में **गोरखनाथ का समय मानना** सर्वथा अनुपयुक्त है।

डा फ़र्कुहर का मत—डा० फ़र्कुहर ने ज्ञानेश्वर—प्रदत्त गुरु-परम्परा को आधार मानकर अपना मत निश्चित किया।

---

१. योगप्रवाह (पृ० ६२)

२. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा (परशुराम चतुर्वेदी)।

ज्ञानेश्वर भी नाथपंथी थे।

ज्ञानेश्वर ने '**अमृतानुभव**' एवं '**ज्ञानेश्वरी**' में अपनी गुरु-परम्परा इस प्रकार प्रस्तुत की है—

(१) आदिनाथ→(२)→मत्स्येन्द्रनाथ→(३)→गोरखनाथ (४)→गहनीनाथ→(४) निवृत्तिनाथ→ज्ञानेश्वर

गहनीनाथ **गोरक्षनाथ के शिष्य** है। निवृत्तिनाथ भी अपने अभंग में इसी की पुष्टि करते हैं—

'**आदिनाथ** उमा बीज प्रगटलें, **मत्स्येन्द्रा** लाधलें सहज स्थिती
तेचि प्रेम मुद्रा **गोरक्षा** दिधली, पूर्णकृवा कैली **गैनीनाथ।**'

गहनीनाथ कहते हैं—

'गोरखसुत गहनी कहे, नाथ पंथ की बानी।
ग्यानी जानत गुरुपूत होत, सो हि चढ़े निरवानी।'

(लक्ष्मणरामचंद्र पांगारकर द्वारा उल्लिखित 'गहनीप्रताप' से) गहनीनाथ निवृत्तिनाथ के गुरु थे।

निवृत्तिनाथ का जन्म : शक संवत् : ११९५ विक्रम अर्थात् संवत् १३३० में हुआ।

महाराष्ट्र में प्रचलित परम्परा के अनुसार—निवृत्तिनाथ के पितामह **गोविन्दपन्त** के भी गुरु **गहनीनाथ** थे।

यदि प्रत्येक पीढ़ी के लिए २५-२५ वर्षों का अन्तर मान लिया जाय तो संवत् १२८० तक **गहिनीनाथ** एक प्रख्यात गुरु के रूप में प्रतिष्ठित हो गए होंगे।

यदि गोरखनाथ एवं गहनीनाथ के आविर्भाव-काल में २५ वर्षों का भी अन्तर मान लिया जाय तो उनका समय १२५५ निकलता है।

डा० फ़र्कुहर ने इसी समय के निकटवर्ती ई० सं० १२०० विक्रमी संवत् १२५७ को गोरखनाथ का समय स्वीकार किया है।

फ़र्कुहर के मत की समीक्षा—फ़र्कुहर के मत को स्वीकार करने में एक प्रबल बाधा यह है कि **११वें शतक के आरंभ** में लिखित **बौद्ध तंत्रों में गोरखनाथ का नाम** उल्लिखित है। इस स्थिति में गोरखनाथ का समय **१३वीं सदी कैसे माना जा सकता है?**

डा० बडथ्वाल की दृष्टि—चूँकि गोरक्षनाथ नाथ-पंथ के प्रवर्तक के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। अतः गहिनीनाथ ने गोरखनाथ को अपने पंथ का प्रवर्तक होने

के कारण **अपना गुरु** कह दिया होगा। गुरु ईश्वर का भी पर्याय है और गोरक्ष का गुरुरूप ईश्वर माना जाने लगा था। सारांश यह कि **गहिनीनाथ गोरक्षनाथ के प्रत्यक्ष शिष्य न रहे होंगे।**

नेपाल की बौद्ध जनश्रुतियों के अनुसार—गोरखनाथ मछंदरनाथ के दर्शनार्थ राजा नरेन्द्रदेव के शासनकाल में नेपाल गए थे।

चीनी यात्री **वांग ह्युत्से** राजा नरेन्द्रदेव का अतिथि था। इस यात्री ने अपना यात्रा-विवरण भी लिखा है। इसका काल है—सं० ७२२ अर्थात् ई० ६६५। यही काल नरेन्द्रदेव का भी रहा होगा।

प्र०—तो क्या गोरखनाथ का भी यही काल है?

डा० शहीदुल्ला आदि इसे अस्वीकार तो नहीं करते।

जनश्रुतियों को साक्ष्य मानना उचित नहीं है; क्योंकि—

(क) विक्रम से पूर्व १९३ संवत् (ई० पू० २५०) में अशोक ने लुम्बिनी आदि तीर्थों की दिदृक्षावश नेपाल की यात्रा की थी। श्रुतिपरम्परानुसार यह समय — ई० पू० १८६७ (कलिगत संवत १२३४)) पड़ता है। इस काल को किराती राजा थ्यूंको का समय मानने पर ही यह काल संगत होगा, जो कि गलत है।

जनश्रुति तो यह भी है कि आचार्य शंकर दिग्विजय के उद्देश्य से राजा वृषदेव के शासनकाल में नेपाल आए थे। वृषदेव का समय तो ५वीं सदी है, जबकि शंकराचार्य का समय ९ वें शतक के उत्तरार्ध एवं दसवें शतक के प्रारम्भ में (अन्य विद्वानों की दृष्टि के अनुसार ८वीं सदी में) पड़ता है।

बड़थ्वाल जी की मान्यता है कि **गोरखनाथ एवं मछंदरनाथ** की नेपाल-यात्रा का जनश्रुतिगत यात्रा-काल भी इसी प्रकार संशयास्पद है।

श्रुतिपरम्परा की मान्यता है कि नेपाल में शंकराचार्य के आगमन के बहुत बाद गोरखमछंदर आए थे। स्पष्ट है कि मछन्दर एवं गोरक्ष शंकर-परवर्ती हैं।

गोरक्षनाथ एवं शंकराचार्य—गोरखनाथ जी ने योगमत की नींव **शांकर अद्वैत वेदान्त** पर रखी थी—

'अभेद-भेद भेदीले जोगी वदंत गोरख राई।
आत्मा परिचै राखो गुरुदेव सुन्दर काया।।'

उपर्युक्त वाक्य उनकी रचनाओं में स्थल-स्थल पर आदि से अंत तक बिखरे मिलते हैं।

कीथ एवं मेकडानल के अनुसार शंकर का जीवनकाल विक्रम संवत् ८४५ से ९०७ तक है। अत: गोरखनाथ का समय ९०७ के पीछे का होना चाहिए।[१]

जिस समय नेपाल में मछंदरनाथ एवं गोरखनाथ का आगमन हुआ था, उसी समय हिन्दू-धर्म के प्रचारार्थ एक ब्राह्मण के भी नेपाल जाने का उल्लेख मिलता है। यह ब्राह्मण शंकराचार्य का अवतार माना जाता था। कहीं यह ब्राह्मण एवं गोरखनाथ एक ही व्यक्ति के साधारण और लोकोत्तर रूप तो नहीं हैं? यह असंभव तो नहीं है। **गोरखनाथ पर शंकर के अद्वैतवाद** का प्रभाव अवश्य पड़ा था। गोरख ने अपने गुरु को उसका उपदेश दिया।।[२]

तिब्बती जनश्रुति यह है कि—

(१) **कनफ़टा नाथ पहले बौद्ध ही थे** किन्तु मुसलमानों के बंग विजय करने के उपरान्त वे मुसलमानों का विरोध न दिखाने के उद्देश्य से ईश्वर (शिव) के उपासक हो गए। **तारानाथ** (इतिहासकार)ने अपने ग्रंथ में यही बात कही है। मुसलमानों के बंग-विजय का समय १२५६-१२६० संवत् है।

कई बौद्ध तंत्रों में गोरखनाथ और उसके साथी अन्य नाथों की महिमा गाई गई है। मुसलमानों ने नाथों को ईश्वरवादी समझकर उनके साथ छेड़छाड़ नहीं की; किन्तु उन्होंने बौद्ध तांत्रिकता को बंगाल से उन्मूलित कर दिया। डा० बडथ्वाल कहते हैं कि मुसलमानों के बंगविजय का समय १२५६ से १२६० संवत् है। **बौद्धों और नाथों में जो भेद इस समय स्पष्ट हुआ,** उसका आरंभ यदि हम २०० वर्ष पहले नेपाल में मानें तो अनुचित न होगा। इससे भी गोरखनाथ का समय ११वें शतक का मध्य ही ठहरता है।[३]

डा० शहीदुल्ला की दृष्टि—गोरखनाथ के वाक्यों में 'ससिहर' 'महिपल' 'पयाल' 'अम्हैं' 'तुम्हैं' 'हि' 'विभक्ति' 'जलकै संजमि अटल अकास' में 'संजमि' 'कौणे चेतनि मन उनमनि रहे' में के चेतन में अधिकरण का प्रयोग—तथा 'आईला' 'गईला' 'भईला' (बौद्धगान ओ दोहा) आदि प्रयोगों को गोरख-साहित्य में देखकर **डा० शहीदुल्ला** ने गोरख को ८ वीं सदी का स्वीकार किया है।

डा० पीताम्बर दत्त बडथ्वाल इन तर्कों को अमान्य करते हुए भी गोरक्षनाथ का समय संवत् १०५० (ग्यारहवें शतक का मध्य) ही मानते हैं।[४]

---

१. योगप्रवाह (पृ० ५८)
२. योगप्रवाह (पृ० ६१)
३. योगप्रवाह (पृ० ६२)
४. योगप्रवाह (पृ० ६२)

[१] **योगिसंप्रदाय विष्कृतिकार का मत**—गोरक्ष का जन्म गोदावरी नदी के तट पर **चन्द्रगिरि** नामक स्थान में हुआ था।

[२] **'गोरक्षसहस्त्रनामस्तोत्रकार का मत**—(नेपाल दरबार की लाइब्रेरी में प्राप्त पुस्तक गो० स० स्तोत्र)

इस ग्रंथ के अनुसार गोरक्षनाथ का जन्मस्थान दक्षिण दिशा में किसी **बड़व** नामक देश में था। महामंत्र की अनुकम्पा या प्रसाद से गोरक्षनाथ का जन्म हुआ था।

'अस्ति याम्यां (पश्चिमायां) दिशि कश्चिद्देशः बड़व संज्ञकः। तत्राजनि महाबुद्धिर्महामंत्र प्रसादतः।।[१]

क्या 'बढ़व' नामक स्थान 'योगिसंप्रदाय। विष्कृति' नामक ग्रंथ में उल्लिखित गोदावरी नदी के तट का चंद्रगिरि ही तो नहीं है?

[३] **बंगाली परम्परा और उसकी आस्था**—बंगाल में यह माना जाता है कि गोरक्षनाथ बंगाल में ही प्रादुर्भूत हुए थे।

[४] **नेपाली परम्परा और तत्रस्थ आस्था**—नेपालियों की मान्यता है कि गोरक्षनाथ टिला (झेलम—पंजाब) से गोरखपुर आए थे।

[५] **नासिक के योगियों के अनुसार**—नासिक के योगी यह मानते हैं कि गोरक्षनाथ सर्व प्रथम तो नेपाल से पंजाब आए और फिर नासिक की ओर आ गए। **ब्रिग्स** महोदय ने अनुमान लगाया है कि गोरक्षनाथ पंजाब के निवासी रहे होंगे।

[६] **कच्छ के लोगों की धारणा**—कच्छ में यह जनश्रुति है कि गोरक्षनाथ के शिष्य धर्मनाथ पेशावर से कच्छ आए। यद्यपि **ग्रियर्सन** ने धर्मनाथ को गोरक्षनाथ का सतीर्थ कहा है; किन्तु धरमनाथ बहुत परवर्ती हैं।[२]

[७] **ग्रियर्सन महोदय का मत**—ग्रियर्सन का अनुमान यह है कि गोरक्षनाथ (संभवतः) **पश्चिम हिमालय** के निवासी थे। उन्होंने नेपाल में आकर नेपाल को आर्य अवलोकितेश्वर के प्रभाव से मुक्त करके शैव बनाया था।

गोरक्षनाथ का जन्मस्थान

भिन्न-भिन्न परम्परायें और इनका जन्मस्थान—

पश्चिम की ओर पेशावर य जालन्धर से पूर्व की ओर बंगाल के बाकरगंज जिले तथा दक्षिण की ओर गोदावरी नदी के तटवर्ती चन्द्रगिरि नगर तक मानती रही है,

१. कौलज्ञाननिर्णय की भूमिका (पृ० ६४)
२. नाथसम्प्रदाय (गोरक्षनाथ)

किन्तु **डा० परशुराम चतुर्वेदी** के मतानुसार इनका जन्म **संभवत:** पश्चिमी भारत या **पंजाब** प्रान्त के ही किसी स्थान में था, किन्तु कार्य-क्षेत्र **नेपाल, उत्तरीभारत, असम, महाराष्ट्र** एवं **सिंध** तक फैला था। इनके मत का प्रसार अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, सीलोन तथा पेनांग तक विभिन्न जातियों एवं विभिन्न धर्मावलम्बियों तक था।[१]

ये अमर कहे जाते हैं और प्रत्येक युग में अवतार लेकर स्थित माने जाते हैं। उसका विवरण निम्माङ्कित हैं—

(१) सतयुग में पेशावर में,

(२) त्रेतायुग में गोरखपुर में

(३) द्वापर में हुरभुज में एवं

(४) कलियुग में गोरखमण्डी में (गोरक्षनाथ) ने अवतार लिया।

—जी० डब्ल्यू ब्रिग्स : गोरखनाथ एंड दि कनकटा योगीज़ (पृ० २२८)

ब्रिग्स महोदय का मत है कि गोरक्षनाथ १२०० ई० से पूर्व, संभवत: ११वीं शताब्दी के आरंभ में, **पूर्वी बंगाल** में प्रादुर्भूत हुए थे।

विलियम क्रुक्स ने 'Tribes And Costs of The North Western Provinces And Awadha' (१८६९) के पृ० १५३-४ में लिखा है कि यदि प्रचलित परम्परा को स्वीकार किया जाय तो **गोरक्षनाथ**—

(१) सत्ययुग में पंजाब के पेशावर

(२) त्रेतायुग में गोरखपुर

(३) द्वापरयुग में द्वारका के आगे हुरभुज में एवं

(४) कलियुग में कठियावाड़ की गोरखमण्डी में प्रादुर्भूत हुए थे।[२]

गोरक्षनाथ की कृत्तियाँ—गोरक्षनाथ के नाम पर बहुत से ग्रंथ चलते हैं जिनमें अनेक तो निश्चित रूप से परवर्ती हैं और कई संदेहास्पद हैं। गोरक्षनाथ की कुछ पुस्तकें नाना भाव से परिवर्तित, परिवर्द्धित और विकृत होती हुई आज तक चली आ रही हैं। उनमें कुछ न कुछ गोरखनाथ की वाणी रह जरुर गई है पर सभी की सभी प्रामाणिक नहीं है। इन पुस्तकों पर से कई विद्वानों ने गोरखनाथ का स्थान और काल-निर्णय करने का प्रयत्न किया था, वे सभी प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुए हैं।

---

१. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा : (परशुरम चतुर्वेदी) पृ० ५७
२. ग्रियर्सन के द्वारा भी उद्धृत : इ० रे० ए० (पृ० ३२८)

(१) कबीरदास के साथ गोरखनाथ जी की वार्ता से सम्बद्ध एक पुस्तक उपलब्ध है।

(२) गुरुनानक के साथ गोरखनाथ जी की वार्ता से सम्बद्ध पुस्तक भी उपलब्ध है।

(३)सत्रहवीं शताब्दी के जैन दिगम्बर सन्त बनारसी दास के साथ गोरक्षनाथ की वार्ता की भी जनश्रुति है।[१]

(४) कबीरदास एवं मुहम्मद साहब की वार्ता का विवरण भी प्राप्त होता है।

—क्या इन अनैतिहासिक वार्ताओं एवं अविश्वसनीय जनास्थाओं के आधार पर किसी भी सिद्ध या सन्त (कबीर, नानक, मुहम्मद गोरक्षनाथ) का काल-निर्धारण किया जाना संगत होगा? कदापि नहीं।

ग्रियर्सन महोदय को भी (इन वार्ता-प्रसंगों को देखकर) भ्रांति हो गई थी और उन्होंने इन्हीं के आधार पर यह अनुमान लगाया कि गोरक्षनाथ १४वीं सदी के थे।

यथार्थ तो यह है कि गोरक्षनाथ को १०वीं सदी का परवर्ती नहीं माना जा सकता।[२]

गोरक्षनाथ के नाम पर चलने वाली लोकभाषा की उनकी (तथाकथित) पुस्तकों, हिन्दी भाषा में लिखित पुस्तकों एवं संस्कृत भाषा में लिखित पुस्तकों में से कितनी पुस्तकें गोरक्षनाथ की हैं और कितनी नहीं हैं—यह शोध का विषय है। डा० द्विवेदी भी इस बात से सहमत हैं।

* गोरक्षनाथ की स्वनिर्मित कही जाने वाली कृतियों का विवरण *

(१) 'अमनस्क' (अमनस्क योग) : (बड़ौदा लाईब्रेरी)

(२)'अमरौघशासनम्'—(काश्मीर सं० ग्रंथावली में प्रकाशित हठयोग की साधना का शैवागमों से संबंध स्थापित करने वाली अत्यन्त महत्वपूर्ण पुस्तिका।

(३) 'अवधूत गीता (गो० सि० सं० में उद्धृत)

(४) 'गोरक्षकल्प' (फ़र्कुहर एवं ब्रिग्स द्वारा मान्य)

(५) 'गोरक्षकौमुदी (फ़र्कुहर एवं ब्रिग्स)

---

१. 'एन्साइक्लोपीडिया आफ़ रेलीजन ऐण्ड एथिक्स' (११रहवाँ खण्ड)

२. पुस्तकों की रचना का निर्णय भी कृतिकार के काल-निर्णय पर विचार करके ही किया जाता है।

(६) 'गोरक्ष-गीता' (फ़र्कुहर)

(७) 'गोरक्ष-चिकित्सा (आफ्रेक्ट)

(८) 'गोरक्षपञ्चय (ब्रिग्स)

(९) 'गोरक्षपद्धति (२०० श्लोकों का संकलन 'गोरक्षशतक'—इसी का प्रथम शतक है। दूसरे शतक का नाम योगशास्त्र है। पुस्तक का नामान्तर है—**'गोरक्षज्ञान'**।)

(१०) 'गोरक्षशतक'—(ब्रिग्स द्वारा अनूदित एवं उनके द्वारा गोरक्ष की यथार्थ रचना के रूप में मान्य।

'नेपाल दरबार लाइब्रेरी' में प्राप्त, किन्तु इसके पूना वाले संस्करण से भिन्न रूप में प्रस्तुत।)

नामान्तर —'ज्ञानप्रकाश' 'ज्ञानप्रकाश शतक' (आफ्रेक्ट) (प्र० चं० बागची)

(११) 'गोरक्षशास्त्र'

(१२) 'गोरक्षसंहिता'—(नेपाल दरबार लाईब्रेरी। प्र० चंद्र बागची द्वारा उद्धृत। 'अकुलवीरतंत्र' में इसके अनेक श्लोक ठीक उसी रूप में उद्धृत हैं। बहुत महत्वपूर्ण पुस्तक)

(१३) 'चतुरशीत्यासन' (आफ्रेक्ट)॥

(१४) ज्ञानप्रकाश शतक (दे० नं० १०)

(१५) ज्ञानशतक (दे० क्र० १०)

(१६) ज्ञानामृतयोग (आफ्रेक्ट द्वारा उल्लिखित)

(१७) नाड़ी ज्ञान प्रदीपिका (आफ्रेक्ट द्वारा उल्लिखित)

(१८) महार्थमञ्जरी (काश्मीर सं० ग्रंथावली में प्रकाशित पुस्तक की भाषा काश्मीरी अपभ्रंश है।। इसमें ३६ तत्त्वों की व्याख्या भी उपलब्ध होती है। यह काश्मीरी शैव अद्वैतवाद की त्रिकशाखा से प्रभावित है। यह अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण कृति है।

(१९) योगचिन्तामणि (आफ्रेक्ट के द्वारा उल्लिखित)

(२०) योगमार्तण्ड (आफ्रेक्ट के द्वारा उल्लिखित)

(२१) योगबीज (सि० सं० में अनेक वाक्य उल्लिखित)

(२२) योगशास्त्र (दे० क्र० ७)

(२३) योगसिद्धासन पद्धति (आफ्रेक्ट द्वारा उल्लिखित)

(२४) विवेक मार्तण्ड (गो० सि० सं० में इसके वाक्य उद्धृत हैं। गोरक्षशतक में भी उद्धृत। आफ्रेक्ट द्वारा उद्धृत। इसे रामेश्वर भट्ट की भी कृति कहा गया है।)

(२५) श्रीनाथसूत्र (गो० सि० सं० में उद्धृत)

(२६) सिद्धसिद्धान्तपद्धति—(ब्रिग्स द्वारा नित्यानन्द रचित मान्य। अन्य विद्वानों द्वारा इसे गोरक्षनाथ कृत स्वीकार किया जाना। 'गोरक्षसिद्धान्त संग्रह' में इसे **नित्यनाथ-प्रणीत** स्वीकार किया जाना।)

(२७) हठयोग (आफ्रेक्ट द्वारा उल्लिखित)

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि—डा० द्विवेदी का कथन है कि इन पुस्तकों में से अधिकांश पुस्तकों के कर्ता गोरखनाथ नहीं थे। साधारणतः उनके उपदेशों को नए-नए रूप में वचनबद्ध किया गया है। उनकी दृष्टि में इनमें से १, २, ९, १२एवं २६ अधिक महत्वपूर्ण है। **(अमनस्क को उन्होंने देखा भी नहीं था)**

'सिद्ध सिद्धान्त पद्धति' को संक्षिप्त करके काशी के बलभद्र पण्डित ने **'सिद्ध सिद्धान्त संग्रह'** लिख दिया। 'गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह' भी अत्यन्त उपयोगी है। * 'सिद्धसिद्धान्त संग्रह एवं 'गोरक्षसिद्धान्त संग्रह' के आधार पर गोरक्षनाथ के मत का प्रतिपादन किया जा सकता है।[1]

* डा० पीताम्बर दत्त बडथ्वाल द्वारा संकलित गोरक्षनाथ के ग्रंथों की सूची *

डा० बडथ्वाल जी ने 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' से प्रकाशित अपनी पुस्तक 'गोरख बानी' में गोरक्ष-रचित बताई गई ४० पुस्तकों का संग्रह है।

* 'गोरखबानी' में संगृहीत गोरक्षनाथ की कृतियाँ *

(१) सबदी	(२) पद
(३) सिष्यादसरन	(४) प्राणसंकली
(५) नरवैबोध	(६) आत्मबोध
(७) अभैमात्राजोग	(८) पंद्रहतिथि
(९) सप्तवार	(१०) मछीन्द्रगोरखबोध
(११) रोमावली	(१२) ज्ञानतिलक
(१३) ज्ञान चौंतीसा	(१४) पंचमात्रा
(१५) गोरखगणेशगोष्ठी	(१६) गोरखदत्त गोष्ठी (ज्ञानदीप बोध)
(१७) महादेवगोरख गुष्ठी	(१८) सिष्टपुरान

१. नाथ-सम्प्रदाय (१११)

(१९) दया बोध	(२०) जाती भौंरावली (छंदगोरख)
(२१) नवग्रह	(२२) नवरात्र
(२३) अष्टपारछ्या	(२४) रहरास
(२५) ज्ञानमाला	(२६) आत्माबोध
(२७) व्रत	(२८) निरञ्जनपुराण
(२९) गोरखवचन	(३०) इन्द्रोदेवता
(३१) मूलगर्भावली	(३२) खाणी वाणी
(३३) गोरखसत	(३४) अष्टमुद्रा
(३५) चौबीस सिधि	(३६) षडक्षरी
(३७) पंचअग्नि	(३८) अष्टचक्र
(३९) अवलिसिलूक	(४०) काफ़िरबोध।

(१) डा० बडथ्वाल ने एक-एक पुस्तक का गहन परीक्षण करके इनमें १४ ग्रंथों को नि:संदिग्ध रूप से प्राचीन माना। क्योंकि इनका उल्लेख प्राय: सभी में प्राप्त हुआ।

(२) (यथा समय) 'ज्ञानचौंतीसा नहीं मिली। अत: उसका प्रकाशन यथा समय नहीं हो सका।

(३) १५ से १९ तक की रचनाओं को सेवादास निरंजनी की रचना माना गया है। अत: इन्हें संदेहास्पद समझकर सम्पादक ने उन्हें परिशिष्ट 'क' में प्रकाशित किया है।

(४) शेष में कुछ गोरखनाथ की स्तुति है। चूँकि 'काफ़िरबोध' कबीर के नाम पर भी है। अत: डा० बडथ्वाल ने इसे प्रकाशित नहीं किया। इस संग्रह में स्थान नहीं दिया।

परिशिष्ट 'ख' में—सप्तवार, नवग्रह, व्रत, पंचअग्नि, अष्टमुद्रा, चौबीस सिद्धि, बत्तीस लच्छन, अष्टचक्र, रहरासि को स्थान दिया गया है।

'अवलिसिलूक' और **'काफ़िरबोध'** रतननाथ-कृत हैं।

* **डा० बड्थ्वाल का कथन** है कि **'सबदी'** गोरख की सर्वाधिक प्रमाणिक रचना जान पड़ती है। किन्तु वह उतनी परिचित नहीं जितनी **'गोरखबोध'** । **डा० मोहन सिंह** इसे बहुत प्रमाणिक मानते हैं। अत: उन्होंने इसका अंग्रेजी में अनुवाद करके प्रकाशित किया है। बडथ्वाल जी कहते हैं कि 'नाथ परम्परा में इनके कर्ता प्रसिद्ध गोरखनाथ से भिन्न नहीं समझे जाते। गोरखनाथ विक्रम की ११वीं शती में हुए।

'ये रचनायें जैसी हमें उपलब्ध हो रही हैं, ठीक वैसी ही उसकी हैं, यह नहीं

कहा जा सकता। यह कहा जा सकता है कि सम्भवतः इनका मूलोद्भव ग्यारहवीं शती ही में हुआ हो।[1]

गोरखबानी (जोगेसुरी बानी) में मात्र २६ पुस्तकों को संकलित किया गया है "हिन्दी के ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियाँ बहुत प्राचीन नहीं मिलती। जो कुछ मिलती हैं, विक्रम की १७ वीं १८वीं शती के इधर की ही हैं। साखी को देखने से पता चलेगा कि कोई भी प्रति आपस में सर्वथा मेल नहीं खातीं।।'

'गोरखबानी' में समस्त प्रतियों को संगृहीत नहीं किया गया है। उनमें की उन्हीं रचनाओं को लिया गया है, जिनका समर्थन अधिकांश अन्य प्रतियों में हो जाता है।[2]

'सिष्टपुरान' 'दयाबोध' 'गोरख गणेश गोष्ठी' 'महादेव गोरख गुष्टि' 'निरंजन पुराण' की रचनायें सेवादास-कृत कही गई हैं। 'गोरख गणेश गोष्ठी' 'महादेव गोरख गुष्टि' को संकलन से इसलिए नहीं हटाया गया; क्योंकि स्वयं प्रति में इसका प्रमाण नहीं है कि ये सेवादास की हैं।[3]

*** गोरक्षनाथ-प्रणीत कही जाने वाली अन्य संस्कृत रचनाओं के नाम ***

'गोरक्षसंहिता' (सं० सं० वि० वि० द्वारा प्रकाशित) की भूमिका में उल्लिखित गोरक्ष-ग्रंथावली—

(१) गोरक्ष बोधः
(२) गोरक्षदीक्षा
(३) गोरक्ष ज्ञान गङ्गा
(४) गोरक्ष तत्त्व प्रकाश
(५) गोरक्षशब्दी
(६) त्रिपुर सुन्दरी पद्धति
(७) अमरौघ प्रबोध
(८) नृप बोधः
(९) हठ संकेत :[4]
(१०) गोरक्षयोगमञ्जरी
(११) गोरक्ष गणेश गोष्ठी
(१२) गोरक्षागमः
(१३) गोरक्षोपनिषद
(१४) षट्चक्र चिन्तामणि
(१५) योगसिद्धान्त पद्धति
(१६) प्राणशृंखला
(१७) हठसंहिता

"गोरक्षनाथ-प्रणीताः निम्नाङ्किता ग्रन्थाः श्रूयन्ते"—कहकर पाण्डेय जी ने

---

१. पीताम्बर दत्त बड्थ्वाल : गोरखबानी की भूमिका
२. तत्रैव
३. तत्रैव (पृ० १७)
४. जनार्दन शास्त्री पाण्डेय

'गोरक्षसंहिता' के प्रथम भाग में उपर्युक्त अन्य ग्रंथों को भी गोरक्ष-ग्रंथावली में स्थान दिया है।

इन ग्रंथों का उल्लेख **ब्रिग्स, आफ्रेक्ट, फ़र्कुहर** आदि ने नहीं किया है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी एवं डा०बडथ्वाल ने भी इनका उल्लेख नहीं किया है। पाण्डेय जी द्वारा उल्लिखित गोरक्ष-प्रणीत २६ पुस्तकों में से यहाँ केवल १७ उन पुस्तकों का नामोल्लेख किया गया है जिनका उल्लेख पाश्चात्य विद्वानों में से आफ्रेक्ट, ब्रिग्स एवं डा० द्विवेदी आदि ने नहीं किया है।

वेदान्त तथा योगशास्त्र—गुरु गोरखनाथ के दार्शनिक सिद्धान्त **वेदान्तपरक** जान पड़ते हैं। इनकी योग संबंधी रचनाओं के अन्तर्गत भी **अद्वैत सिद्धान्त** का ही प्रतिपादन लक्षित होता है। परन्तु **मोक्ष-प्राप्ति** के साधन-भेद द्वारा वेदान्त-निर्दिष्ट साधना तथा नाथ-पंथ की साधना में महान अन्तर है।

वेदान्त का ज्ञान-मार्ग **तत्त्व-विचार** को सर्वोच्च स्थान देता है तथा **नित्यानित्यविवेक, वैराग्य, ब्रह्मस्वरूप में समाहित होने की एकांतिक चेष्टा को ही सब कुछ समझता है।** किन्तु **योग-दर्शन** को केवल **विचार या आत्म-चिन्तन पर ही आश्रित रहना पर्याप्त नहीं जान पड़ता।** उनका यह भी कहना है कि जब **शरीर तथा उसकी इन्द्रियाँ अपने वश में नहीं लायी जातीं, तब तक प्राणों के नियमन पर पूर्ण अधिकार नहीं प्राप्त होता** तथा जब तक अपनी **चित्तवृत्तियाँ निरुद्ध नहीं हो जाती** तब तक वह **निर्मल निस्तरंग आत्मतत्त्व** हमारे **अन्तःकरण में** स्पष्टतः **प्रतिबिम्बित नहीं** हो सकता।

ज्ञानमार्गियों की दृष्टि—इन्द्रिय एवं मन की चंचलता के मूल में अज्ञानजनित वासना रहा करती है। इसे (१) **श्रवण** (२) **मनन** एवं (३) **निदिध्यासन** द्वारा दूर कर सकते हैं।

योगियों की दृष्टि—योगियों की मान्यता है कि अज्ञानमूलक वासनाओं को हम पूर्ण समाधि प्राप्त किए बिना दूर नहीं कर सकते।

योग-साधना का मुख्य लक्ष्य है—

चित्तवृत्तियों की **बहिर्मुखता या बहुमुखता** को **अन्तर्मुखता या एकमुखता** में परिणत करना। क्योंकि यह आवश्यक है कि इसके द्वारा साधक के सभी भाव, ज्ञान, तथा कर्म एक **आत्मतत्त्व की ओर ही केन्द्रीभूत** हो जायँ तथा उसके जीवन में साम्य एवं शान्ति आ जाय तथा वह (योगी) पूर्ण आत्मनिष्ठ भी हो जाय। योग की प्रत्येक क्रिया प्रत्यक्ष प्रमाणों पर आश्रित है; किन्तु ज्ञानीगण वस्तुतः शास्त्रीय वाक्यों के विनिश्चय में ही आस्था रखा करते हैं—

'प्रत्यक्ष हेतवो योगाः सांख्याः शास्त्र-विनिश्चयाः॥' —महाभारत

नाथयोग में—(१) "**हठयोग**" (वायु का ६४ सन्धियों में संचार, 'कायाकल्प' अनाहतनाद, ब्रह्मरंध्र में अनाहत-श्रवण' ब्रह्मानुभूति, प्राणायाम की साधना, उनमुनी योग, श्वासोच्छ्वास का भक्षण, शब्द की प्राप्ति, परमात्मा का आत्मा में दर्शन, शरीर शुद्धि द्वारा अमरत्व-प्राप्ति, काया-शोधन, मनोमारण, संयत जीवन-यापन आदि) तथा (२) '**मनोमारण**' (३) **आत्मचिन्तन** (४) **रसायन** (मानव शरीर की कायाकल्प के द्वारा अमरत्व प्रदान करना एवं जीवन्मुक्ति, पारद-शोधन से शरीर को अमर बनाना, पारद (रस) द्वारा छठे छमासे 'काया पलटना' (५) (रस प्रयोग की अपेक्षा) सहस्त्रार स्थित अमृत का पान रसायन क्रिया के प्रयोग के स्थान में ब्रह्मरंध्रस्थ चन्द्रमा के अमृत के पान करने का प्रामुख्य एवं (६) कायाकल्प (काया-शोधन) का लक्ष्य **ब्रह्मोपलब्धि स्वीकार** किया गया है।[१]

नाथ-सम्प्रदाय एवं नाथ-योग पद्धति के विषय में कुछ लोगों की मान्यता यह रही है कि इसके मूल प्रवर्तक गोरक्षनाथ थे। गोरक्ष ने कनफटा योगियों की परम्परा चलायी और हठयोग की साधना का श्री गणेश किया। किन्तु यह दृष्टि संगत नहीं है। ८वीं सदी की बाणभट्ट की रचना '**कादम्बरी**' में नाथों के **कनफटा योगियों** के सदृश योगियों का उल्लेख है और उसके पूर्व के ग्रंथ **मैत्रेयी उपनिषद्** में भी उल्लेख मिलता है।

हठयोग का प्रवर्तन तो मृकण्डु-पुत्र द्वारा माना जाता रहा है। **हठयोग की २ शाखायें रही हैं—**

द्विधा हठः स्यादेकस्तु गोरक्षादि सुसाधितः।
अन्यो मृकण्ठपुत्राद्यैः साधितौ हठसंज्ञकः॥'

शंकराचार्य और नाथपंथ—डा० पीताम्बर दत्त बडथ्वाल मानते थे कि 'गोरखनाथ पर **शंकर के अद्वैतवाद का प्रभाव** अवश्य पड़ा था। गोरक्ष ने उसका उपदेश अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ को दिया था।[२]

"गोरखनाथ जी ने अपने योग प्रधान मत की नींव **शांकर अद्वैत वेदान्त** पर रखी थी।

"अभेद-भेद भेदीले जोगी बदंत गोरख राई।
आत्मा परिचै राखो गुरुदेव सुन्दर काया॥"

---

१. परशुराम चतुर्वेदी 'उत्तरी भारत की सन्त परम्परा' (६१-६२)
२. योग-प्रवाह (पृ० ६०)

उपर्युक्त वाक्य उनकी रचनाओं में स्थल-स्थल पर आदि से अंत तक बिखरे मिलते हैं।[१]

द्वैताद्वैत-विलक्षणतावाद—गोरक्षयोग या नाथ-योग में अद्वैत नहीं द्वैताद्वैत-शून्य सिद्धान्त है—

'अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे।
समतत्त्वं न जानन्ति द्वैताद्वैत विलक्षणम्।।'

नाथ-योग में यही **'द्वैताद्वैतविलक्षण'** तत्त्व ही प्रतिपाद्य है।

* डा० बडथ्वाल एवं परशुराम चतुर्वेदी की दृष्टि की समीक्षा *

डा० बडथ्वाल एवं परशुराम चतुर्वेदी दोनों गोरक्षनाथ के दर्शन पर शांकर अद्वैत का प्रभाव स्वीकार करते हैं; किन्तु मेरी दृष्टि में गोरक्षनाथ के दर्शन पर काश्मीरीय (अद्वैतवादी) शैव दर्शन का प्रभाव है; न कि शांकर दर्शन का।

शाङ्कर दर्शन में—(१) ब्रह्म तो सत्य है; किन्तु जगत मिथ्या है। (२) माया मिथ्या है—

आचार्य शंकर कहते हैं—

'श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रंथकोटिभिः।
ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीव ब्रह्मैव नापरः।।'

काश्मीर के त्रिक दर्शन में—

(१) शिव भी सत्य है।

(२) शिव की मायाशक्ति भी सत्य है और

(३) जगत् भी सत्य है।

शांकर वेदान्त में 'माया' ब्रह्म की निजा शक्ति नहीं है; किन्तु त्रिक दर्शन में 'शक्ति' शिव से अभिन्न, उनकी स्वसमवेत एवं (उनकी) निजा शक्ति है।[२] गोरक्षनाथ भी त्रिक दर्शन के इन सिद्धान्तों को स्वीकार करते हैं।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की दृष्टि पूर्णतया सङ्गत है। वे कहते हैं—"उन्होंने (गोरक्षनाथ ने) **शैव प्रत्यभिज्ञादर्शन** के सिद्धान्तों के आधार पर बहुधा विस्रस्त **कायायोग के साधनों** को व्यवस्थित किया, आत्मानुभूति और **शैव परम्परा के सामञ्जस्य** से **चक्रों की संख्या** नियत की, उन

१. योग-प्रवाह (पी० द० बडथ्वाल)
२. नाथमत भी इसे स्वीकार करता है।

दिनों प्रचलित **वज्रयानी साधना** के पारिभाषिक **शब्दों के** सांवृत्तिक **अर्थ को** बलपूर्वक **पारमार्थिक रूप दिया।''**[१]

शाङ्कर अद्वैत में परमतत्त्व या परमार्थ तत्त्व मात्र **'अद्वैत'** है। शङ्कराचार्य-समर्थित अद्वैतवाद 'केवलाद्वैतवाद' 'निर्विशेषाद्वैतवाद', 'ब्रह्माद्वैतवाद' 'औपनिषदाद्वैतवाद' आदि नामों से प्रख्यात है। **शांकरअद्वैत** में ज्ञान से मोक्ष मिलने की बात कही गई है; किन्तु **नाथमत** में **'ज्ञान' से नहीं** (मात्र खड्ग से नहीं); परन्तु पराक्रम (**योग साधना**) से समन्वित ज्ञान से ही मोक्षाप्ति होना स्वीकृत है।

गोरक्षनाथ का सिद्धान्त अद्वैतवादी नहीं; द्वैताद्वैतविलक्षणवादी है और समतत्त्व का प्रतिपादक है—

'अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे।
समं तत्त्वं न विन्दन्ति द्वैताद्वैतविलक्षणम्॥
यदि सर्वगतो देवः स्थिरः पूर्णो निरन्तरः।
अहो माया महामोहो द्वैताद्वैतविकल्पना॥'

गोरक्षसिद्धान्तकार ने शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित **'अद्वैतवाद'** का खण्डन करते हुए प्रश्न उठाया—

'यदि ब्रह्माद्वैतमस्ति तर्हि द्वैतं कुत आगतम् ?'

यदि ब्रह्माद्वैत ही यथार्थ है तो यह द्वैत कहाँ से आया?

वे पुनः आगे कहते हैं—'यदा माया-कल्पितमिति वदेयुस्तर्हि तान् वदन्तो वयमवाचोऽक्रियांश्च कर्म तत् किमिति चेदुच्यते। **अद्वैतं** तु निष्क्रियादित्याग्यस्ति। यतः कस्यापि वस्तुनो भोगोऽपि युष्माभिर्न कर्तव्य इत्याद्यनेकविधिभिरद्वैतखण्डनं करिष्यामः। महासिद्धैरुक्तं यदद्वैताद्वैतविवर्जितं पदं निश्चलं दृश्यते तदेवसम्यगित्यभ्युपगमिष्यामः॥

—गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह (पृ० १६)

अर्थात् यदि अद्वैत यह उत्तर देता है कि 'माया' तो कल्पित है''—तो इस प्रकार कहने वाले को हम मौन और निष्क्रिय कर देंगे। तब वह क्या है? बतलाते हैं—अद्वैत तो निष्क्रियता आदि गुणसम्पन्न त्यागी है; क्योंकि तुम लोगों को किसी भी वस्तु का उपभोग नहीं करना चाहिए—इत्यादि अनेक **अद्वैतपरक विधि वाक्यों द्वारा हम अद्वैत का खण्डन करेंगे।** महासिद्धों ने कहा है कि जो द्वैत और अद्वैत से विवर्जित (विलक्षण) निश्चल पद दृष्टिगत होता है; वही सत्य है और हम उसी को प्राप्त करेंगे। श्री भैरव ने उग्रभैरव नामक कापालिक का रूप धारण करके **शंकराचार्य** के ऊपर उसी का प्रयोग किया था—

''यत्तूग्रभैरवनामक कापालिकरूपतः श्री भैरवेण शंकराचार्योपरि कृतम् ॥''

—गोरक्षसिद्धान्त संग्रह

---

१. नाथ-सम्प्रदाय (१०८)

शङ्कराचार्य को पराभूत दिखाना, उनके अद्वैत का खण्डन करना, उन्हें तारानाथ से योग का उपदेश दिलाना और अद्वैत की पराजय दिखाकर पद्मपादाचार्य (शंकराचार्य के शिष्य) के मुख से—

'भो: अद्वैतपराजयोऽद्वैतपराजय'' इति—कहलाना **नाथ-मत द्वारा शांकर अद्वैत के पूर्ण बहिष्कार का ज्ञापक है।** अत: गोरक्षनाथ पर शंकराचार्य के अद्वैतवाद के प्रभाव को कैसे स्वीकार किया जा सकता है?

काश्मीरीय शैव त्रिक दर्शन भी शांकर अद्वैतवाद को स्वीकार नहीं करता। वह **'द्वयात्मक अद्वयवाद'** को स्वीकार करता है। अत: हम कह सकते हैं कि गोरक्षनाथ पर **अद्वैतवादी त्रिकदर्शन के द्वयात्मक अद्वैतवाद का प्रभाव है न कि शङ्कराचार्य के अद्वैत का।**

शाङ्कर अद्वैतवाद का प्रत्याख्यान

नाथों की दृष्टि में 'अद्वैतवाद' और सृष्टि-विधान—यदि हम **शांकर अद्वैतवाद** या शांकर दर्शन के **अद्वैतब्रह्म** पर विचार करें तब भी **'अद्वैत'** परमतत्त्व नहीं है।

गोरक्षसिद्धान्तसंग्रहकार का कथन है कि—

(१) **जो अद्वैत के ऊपर वर्तमान है** तथा साकार-निराकार दोनों से परे हैं **उन नाथ से—**

(२) **निराकार ज्योतिस्वरूप** नाथ उत्पन्न हुए।

(३) निराकार ज्योतिस्वरूप नाथ से **साकार** नाथ उत्पन्न हुए।

(४) साकार नाथ की इच्छा से **सदाशिव भैरव** एवं **भैरवी शक्ति** का प्रादुर्भाव हुआ।

(५) भैरव-भैरवी से विष्णु उत्पन्न हुए।

(६) ब्रह्मा से जगत की उत्पत्ति हुई।

आचार्य शङ्कर **'अद्वैततत्त्व'** को सर्वोपरि मानते हैं, किन्तु **शैव त्रिक दर्शन और उसके अनुयायी नाथपंथी** अद्वैत को परमतत्त्व नहीं मानते। **'गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह'** में कहा गया है कि—'अद्वैत के ऊपर भी एक परतत्त्व अवस्थित है, जो कि **'साकार'** एवं (अद्वैतवादियों निराकार ब्रह्म) **'निराकार'** तत्त्व से भी परे है। उन **'नाथ'** से ही **'निराकार ज्योतिनाथ'** उत्पन्न हुए तथा निराकार ज्योति नाथ से **'साकारनाथ'** उत्पन्न हुए।—इस कथन से तो शांकर दर्शन के **'अद्वैत ब्रह्म'** एवं **'निराकार ब्रह्म'** दोनों परमतत्त्व के सिंहासन से पदच्युत दिखाई पड़ते हैं। नाथपंथियों की दृष्टि से तो **परात्पर परमतत्त्व** तो **'नाथ'** हैं जो कि अद्वैततत्त्व के ऊपर स्थित हैं और निराकार तत्त्व तो इन्हीं **'नाथ' के प्रथम कार्य हैं।**

'गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह' में कहा गया है—

'अद्वैतोपरिवर्ति निराकारसाकारा**तीतनाथान्निराकार ज्योतिर्नाथो जात स्वतः** साकारनाथो **जातस्तदिच्छया** सदाशिवो **भैरवो जातस्ततश्च शक्तिभैरवी च जाता, तस्माद्विष्णुर्जातस्तस्मात्** ब्रह्मा **जातस्तेन** सर्वा सृष्टि **उत्पन्ना।'**

—'गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह'

परात्परतत्त्वनाथ का स्वरूप क्या है ?

गोरक्षसिद्धान्तसंग्रहकार की दृष्टि—गोरक्षसिद्धान्तसंग्रहकार का कथन है कि—वे परात्परनाथ—

(१) अद्वैत, निराकार, साकार, भैरव, विष्णु, ब्रह्मा आदि सभी से अतीत एवं ऊर्ध्ववर्ती हैं।

(२) इनके **बायीं ओर निर्गुणस्वरूप** (ब्रह्म) और **दाहिनी ओर अद्भुत निजाशक्ति** (इच्छा शक्ति = परमेश्वरी परात्म्बा महामाया) विराजमान हैं और मध्य में स्वयं पूर्ण, अखण्ड (परमशिव) सर्वाधार, द्वन्द्वातीत (द्वैताद्वैत-विवर्जित) **श्रीनाथ** समासीन हैं—

'निर्गुणं वामभागे च सव्यभागेऽद्भुता निजा।
मध्यभागे स्वयं पूर्णस्तस्मै **नाथाय** ते नमः।।'

(३) आत्मज्ञान में स्थित एवं मुक्त सिद्धपुरुष एवं असंख्य जीव **श्रीनाथ** जी के चरणदेश के **नखाग्र में स्थित हैं**। जो श्रीनाथ जी के स्वरूपचिन्तन में संलीन हैं वे मुक्त एवं अमुक्त दोनों गतियों से परे जीवात्मायें सर्वत्र श्रीनाथ के बन कर स्थिरतापूर्वक विचरण किया करती हैं।

जिसके वामभाग में शम्भु एवं दक्षिण भाग में विष्णु विराजमान हैं वे (दोनों के मध्य विराजमान) (मध्यावस्थित) तमापहारक श्रीनाथस्वरूप महाज्योति हैं—

'मुक्ता लुठन्ति पादाग्रे नखाग्रे जीवजातयः
मुक्तामुक्तगतेर्मुक्तः सर्वत्र रमते स्थिरः।
वामभागे स्थितः शम्भुः सव्ये विष्णुस्तथैव च।
मध्ये नाथः परं ज्योतिस्तज्ज्योतिर्मे तमोहरम्।।'

—गोरक्षसिद्धान्त संग्रह

'सिद्धमार्ग' नाथमत है। **'ना' का अर्थ** है अनादिरूप एवं **'थ' का अर्थ** है भुवनत्रय को स्थापित (स्थित) रखने वाला धर्म और उस धर्म में सर्वोपरि प्रतिष्ठित परात्पर परतत्त्व अर्थात् 'नाथ' तत्त्व—

'नाकारोऽनादि रूपं थकारः स्थाप्यते सदा।
भुवनत्रयमेवैकः श्री गोरक्ष नमोऽस्तुते।।'

इसी कारण 'गोरक्ष' को **'नाथ'** कहते हैं।

शङ्कराचार्य और नाथपंथियों का परात्पर तत्त्व

नाथपंथी दृष्टि | **वेदान्तीदार्शनिकों की दृष्टि**





(परात्पर तत्त्व)









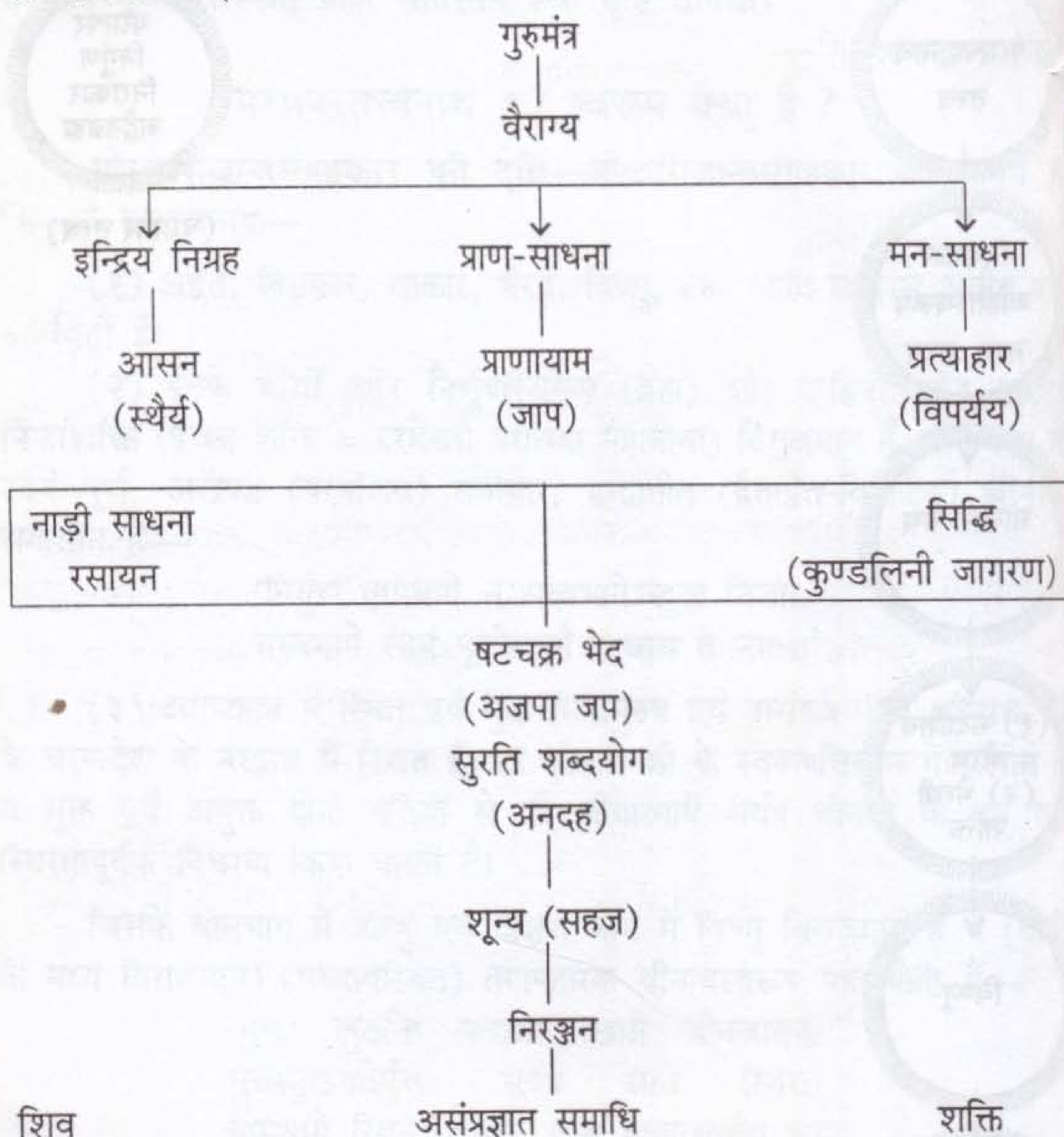




—गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह

* नाथ-सम्प्रदाय में साधना और उसका स्वरूप *

डा० राम कुमार वर्मा ने हिन्दी के आलोचनात्मक इतिहास में नाथ-सम्प्रदाय की साधना को इस प्रकार चित्रित किया है—



अनेक विद्वानों ने गोरक्षादि नाथ योगियों के प्रतिपाद्य ज्ञान एवं अद्वैतवाद पर शाङ्कर अद्वैतवाद एवं शाङ्कर ज्ञानवाद का प्रभाव माना है।

शाङ्कर अद्वैत और गोरक्ष-योग-मार्ग—योगियों का कथन है कि उसे 'मुक्त' कहा ही नहीं जा सकता, **जिसको सिद्धियाँ प्राप्त न हों** तथा जिसका कभी पिण्डपात हो क्योंकि—

> 'न हि बहिः प्राण आयाति पिण्डस्य पतनं कुतः?
> पिण्डपातेन या मुक्तिः सा मुक्तिस्तु न कथ्यते॥'

क्या यह सिद्धान्त शाङ्कर अद्वैतवाद एवं उनके ज्ञानमार्ग की साधना में भी मान्य है? नहीं।

आचार्य शंकर और गोरक्षनाथ की मोक्ष संबन्धिनी दृष्टि

गोरक्षनाथ कहते हैं कि जिस प्रकार नमक पानी में मिलकर जलरूप हो जाता है, उसी प्रकार जब देह ब्रह्म को प्राप्त करके तन्मय हो जाता है तब उसे मुक्त कहते हैं—

देहो ब्रह्मत्वमायाति जलतां सैन्धवं यथा।
अनन्यतां यदा याति तदा मुक्तः स उच्यते।।

—योगबीज (१८६)

''स्वसंवेद्यमत्यन्तभासाभासकमयम्'' परमंपदम्'—इस स्वरूप वाले परमपद में व्यष्टि एवं पर पिण्डों का ज्ञान प्रथम साधना है और उनका **'परमपद' में समरसीकरण ही सिद्धि है। 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति**' के अनुसार व्यष्टि पिण्ड एवं सच्चिदानन्दपरमात्मस्वरूप **''परपिण्ड''** का ज्ञान प्राप्त करके परमपद परमात्मा में सामरस्य (ऐक्य) स्थापित करना ही मोक्ष है—

''महासिद्धयोगिभिःपूर्वोक्त क्रमेण परपिण्डादिस्वपिण्डान्तं ज्ञात्वा परमपदे समरसं कुर्यात्।।''

—(पिण्डपदसामरस्य : पञ्चम उपदेश।

''अमरौघ शासनम्' की दृष्टि से मोक्ष 'सहज समाधि' में संलीन मन का मन द्वारा साक्षात्कार है। 'अमरौघशासनम्' नामक गोरक्ष-प्रणीत ग्रंथ में **'मोक्ष'** को **समाधि क्रम से मन द्वारा मनावलोकन कहा गया है—**

'अहो मूर्खता लोकस्य।'

(१) केचिद्वदन्ति शुभाशुभकर्मविच्छेदनं **मोक्षः।**

(२) केचिद्वदन्ति वेदपाठाश्रितो **मोक्षः।**

(३) केचिद् वदन्ति निरालम्बनलक्षणो मोक्षः।

(४) केचिद् वदन्ति ध्यानकलाकरणसंबद्धप्रयोग संभवेन।

(५) रूपबिन्दुनादचैतन्यम्, पिण्डाकाशलक्षणो **मोक्षः।**

(६) केचिद् वदन्ति पूजापूजक मद्यमांसादिसुरत
प्रसंगानंद ....**मोक्षः।**

(७) केचिद्वदन्ति मूल कन्दोल्लसित कुण्डली।
पंचार लक्षणो................**मोक्षः।**

(८) केचिद्वदन्ति सुसमदृष्टिनिपातलक्षणो **मोक्षः।**

(९) इत्येवंविध भावनाश्रितलक्षणो न भवति।

* (१०) अथ **मोक्षपदं** कथ्यते—

"यत्र सहजसमाधिक्रमेण मनसा मनः समालोक्यते स एव मोक्षः।।"

—अमरौघ शासनम् ।

पिण्डपदसमरसीकरण—नाथयोग की उच्चतम साधना का स्वरूप **'पिण्डपदसमरसीकरण'** है। यह 'पिण्डपदसामरस्य' नाथ-योग की परम सिद्धि है। **क्या यही सिद्धि शांकर अद्वैत में भी काम्य है ?**

गोरक्षनाथ तो सिद्धियों को इतना महत्व देते हैं कि वे कहते हैं कि जिनमें सिद्धियाँ नही हैं—

(१) वह बंधन-ग्रस्त है।

(२) वह जीवन्मुक्त नहीं हो सकता।

(३) जीवन्मुक्त की परीक्षा सिद्धियों की कसौटी पर उसी प्रकार की जानी चाहिए, यथा कसौटी पर सोने की।

(क) सिद्धिभिः **परिहीनं तु** नरं बद्धं हि लक्षणम्।

(ख) सिद्धिभिर्लक्षयेत्सिद्धं जीवन्मुक्तं तथैव च।।

(ग) जरामरपिण्डो यो जीवन्मुक्तः स एव हि।।

गोरक्षनाथ—योग बीज—(१८३, १८१)।।

(घ) योगमार्गे तथैवेदं सिद्धिजालं प्रवर्तते।। (१८०)

—'योगबीज' (१८०)

प्र०—क्या शाङ्कर वेदान्त एवं उसके ज्ञानमार्ग में भी सिद्धियों का इतना ही महत्व है?

कदापि नही।

प्र०—क्या शाङ्कर अद्वैत ज्ञानमार्ग में भी ज्ञान के साथ योग-साधना को उतना ही अपरिहार्य उच्च स्थान दिया गया है, जितना कि नाथमत में?

कदापि नहीं

प्र०—क्या शाङ्कर मार्ग में भी जीवन्मुक्तों की परीक्षा उनकी सिद्धियों की कसौटी पर की जाती रही है?

कदापि नहीं।

प्र०—क्या सिद्धि-हीन मुक्त पुरुष को शाङ्कर दर्शन में भी बंधनग्रस्त माना जाता है।

कदापि नहीं।

प्र०—क्या योगहीन-ज्ञान को शाङ्कर ज्ञानमार्ग में निष्फल माना जाता है?

कदापि नहीं। फिर गोरक्षनाथ के दर्शन पर शाङ्करज्ञान एवं शाङ्कर अद्वैतका प्रभाव कैसे स्वीकार किया जाय?

प्र०—'जब शरीर ब्रह्मत्व प्राप्त कर ले एवं चिन्मय हो जाय (ब्रह्म में लयीभूत हो जाय, ब्रह्म-तादात्म्य प्राप्त कर ले) तभी उसे मुक्त मानना चाहिए।' क्या यही गोरक्ष-दृष्टि शंकर को भी मान्य है?

नहीं।

'निरुत्थान' (**जीवात्मा-परमात्मा** के अभिन्नत्व या **सामरस्य**) की प्राप्ति का उपाय क्या है?

(१) योगी अपने स्वरूपानुसन्धान (स्व-परपिण्ड का ऐक्य) द्वारा निजावेश (परमेश्वर को अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित देखना) प्राप्त करता है। इसी **'निजावेश'** के परिणामस्वरूप **'निरुत्थान'** या **'सामरस्य'** का उदय हुआ करता है। उसे यह अनुभव होता है कि—

'परपिण्ड' (परमात्मपिण्ड) **मेरा ही 'व्यष्टिपिण्ड'** है। इससे परमात्म पिण्ड एवं स्वपिण्ड में दृष्टिगत भेद का अन्त हो जाता है। इससे अखण्ड परमात्मस्वरूप परमपद का प्रत्यक्षीकरण हो जाता है।

(१) ''महासिद्धयोगिभि: स्वकीयपिण्डनिरुत्थानानुभवेन समरसं क्रियत इति सिद्धान्त:।।७।।

(२) **निरुत्थानप्राप्त्युपाय:** कथ्यते। महासिद्धिभि: **स्वस्वरूपतयानुसन्धानेन निजावेशा** भवति।

निजावेशान्नि:पीडित **निरुत्थानदशा**महोदय: कश्चिज्जायते तत: सच्चिदानन्द चमत्काराद् अद्भुताकार **प्रकाश-प्रबोधो** जायते, **प्रबोधाद्** अखिलमेतद् द्वयाद्वय प्रकटतया चैतन्यभासकं **परात्परपरमपदमेव** प्रस्फुटं भवतीति सत्यम्।।''

गुरुप्रसाद प्राप्त करके चित्तनिरोधपूर्वक स्वरूप ध्यान एवं समाधि द्वारा स्वपिण्ड से परपिण्ड पर्यन्त ऐक्य का अनुभव करना चाहिए। इससे परमपद (द्वैताद्वैतविवर्जित परमात्मपद) की अनुभूति होती है—

'अतएव महासिद्धयोगिभि: सम्यग् गुरुप्रसादं लब्ध्वा **अवधानबलेनैक्यं** भजमानैस्तत्क्षणात् परमं पदमेवानुभूयते।।'

'तदनुभवबलेन स्वकीयं सिद्धं सम्यङ् निजपिण्डं ज्ञात्वा तमेव परमपद एकीकृत्य तस्मिन् प्रत्यावृत्या रूढ़ैवाभ्यन्तरे स्वपिण्डसिद्ध्यर्थे महत्वमनुभूयते।।१०।।

'निजपिण्डपरीक्षा च स्वस्वरूपकिरणानन्दोन्मेषमात्रं यस्योन्मेषस्य प्रत्याहरणमेव **समरसकरणं** भवति।।'

'अतएव स्वकीयं पिण्डं महद्रश्मिपुञ्जं स्वेनैवाकारेण प्रतीयमान् स्वानुसन्धानेन स्वस्मिन्नुरीकृत्य महासिद्धयोगिनः पिण्डसिद्धयर्थं निष्ठन्तीति प्रसिद्धम् ॥''[१]

* ''गोरक्षशतक'' के आलोक में गोरक्ष-योग का स्वरूप *

[ब्रिग्स महोदय ने **'गोरक्षशतक'** को अपनी पुस्तक में रोमन लिपि में प्रकाशित किया है तथा उसका अंग्रेजी में अनुवाद भी किया है। उन्होंने इसे गोरक्षनाथ की सच्ची एवं प्रामाणिक रचना कहकर इसको बहुत महत्त्व प्रदान किया है।]

इस पुस्तक के आरंभ में कहा गया है कि इसमें प्रतिपादित **'गोरक्ष का उत्तम ज्ञान'** योगियों के अभीष्ट को सिद्ध करने वाला, **परमानन्दकारक,** योगियों का हितसाधक, **विमुक्ति का सोपान, कालवञ्चक, परमपदप्रदाता, भोगों से निवृत्त करने वाला, परमात्मा में लीन करने वाला, वेद रूपी कल्पतरु का फल** एवं **भवताप को शमित करने वाला है।**

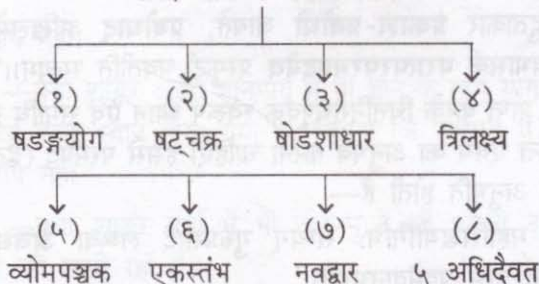
''द्विज सेवित शाखस्य श्रुतिकल्पतरोः कलम्।
शमनं भवतापस्य **योगं** भजत सत्तमाः॥''

[१] **योग के अङ्ग**—गोरक्षोपदिष्ट योग के ६ अङ्ग हैं—

'आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा।
ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि वदन्ति षट्॥'

आसनों की संख्या—जीवों के प्रकार की संख्या के बराबर ही आसनों की भी संख्या है, किन्तु शिवजी ने ८४ लाख आसनों का वर्णन किया है। इनमें ८४ प्रधान है।

[२] गोरक्ष योग के प्रधान स्तंभ

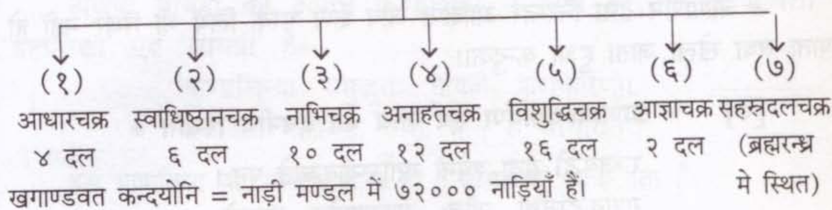


''षट्चक्रं षोडशाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम्।
स्वदेहे ये न जानन्ति कथं सिद्ध्यन्ति योगिनः?

१. सिद्धसिद्धान्त पद्धति।

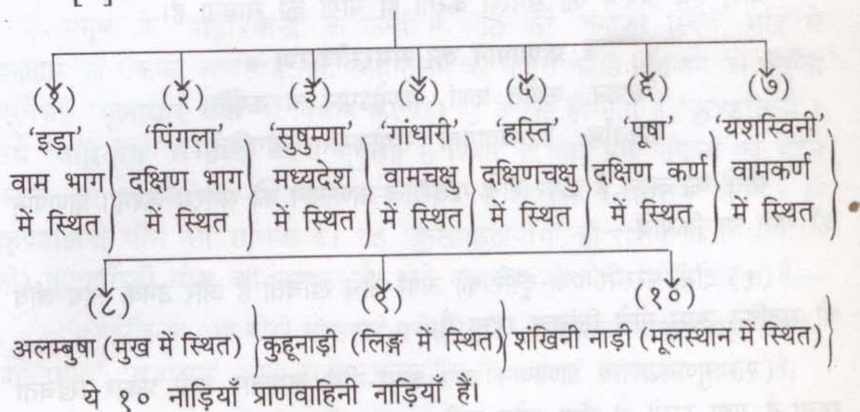
एकस्तंभं नवद्वारं गृहं पञ्चाधिदैवतम्।
स्वदेहे ये न जानन्ति कथं सिद्धयन्ति योगिनः ?"

[३] षट्चक्र



खगाण्डवत कन्दयोनि = नाड़ी मण्डल में ७२००० नाड़ियाँ हैं।

[४] प्रधान नाड़ियाँ



ये १० नाड़ियाँ प्राणवाहिनी नाड़ियाँ हैं।

*** इड़ा, पिङ्गला एवं सुषुम्णा नाड़ियाँ ***

'इड़ा पिङ्गला सुषुम्णा च नाड़ी मार्गे समाश्रिताः।
सततं प्राणवाहिन्यः सोमसूर्याग्निदेवताः।'

'इड़ा' का देवता-सोम॥ **'पिङ्गला' का देवता**—सूर्य। **'सुषुम्णा' का देवता**—अग्नि।

[५] * प्राण मण्डल और १० प्राण *

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)	(८)	(९)	(१०)
'प्राण'	'अपान'	'समान'	'उदान'	'व्यान'	'नाग'	'कूर्म'	'कृकर'	'देवदत्त'	'धनञ्जय'
हृदय में स्थित वायु	गुदा में स्थित वायु	नाभि में स्थित वायु	कण्ठ के मध्य स्थित	शरीर में व्याप्त वायु	उद्गिरण में स्थित वायु	उन्मीलन में स्थित वायु	भूख में स्थित वायु	विजृंभण में स्थित वायु	मृत्यु की स्थिति में भी न छोड़ने वाली वायु

[६] *** प्राणापान की क्रीड़ा एवं गेंद रूप जीव ***

आक्षिप्तो भुजदण्डेन यथोच्छलति कन्दुक:।
प्राणपानसमाक्षिप्तस्तथा जीवो न तिष्ठति।

* प्राणापान द्वारा निरन्तर आक्षिप्त जीव क्षण भरके लिये भी स्थिर नहीं हो पाता यथा खेला जाता हुआ कन्दुक।।

[७] *** प्राणापानाकर्षण एवं जीव की दयनीय स्थिति ***

रज्जुबद्धो यथा श्येनो गतोऽप्याकृष्यते पुन:।
गुणबद्धस्तथा जीव: प्राणापानेन कृष्यते।।

प्राण एवं अपान को समरस करना ही योगी की साधना है।

*** प्राणापान का समरसीकरण ***

'अपान: कर्षति प्राणं, प्राणोऽपानं च कर्षति।
ऊर्ध्वाध: संस्थितावेतौ संयोजयति योगवित्।।'

योगी का लक्ष्य है ऊपर-नीचे गतिशील प्राणापान को समरस करना। प्राणपान की गति या क्रियायें—

(१) दोनों परस्पर एक-दूसरे को ऊपर नीचे खींचती हैं और उनके साथ जीव भी रातदिन ऊपर-नीचे खिंचता रहता है।

(२) गुणबद्धजीव प्राणापान द्वारा ऊपर-नीचे लगातार उसी प्रकार खिंचता रहता है यथा रस्सी से बँधा श्येन पक्षी।

[८] *** अजपा जप—जीवों की स्वाभाविक मन्त्र-साधना *** इसे ही 'अजपा गायत्री' या 'हंसमंत्र' भी कहते हैं। इस श्वासोच्छ्वासोच्चारित स्वयंसञ्चरित मंत्र में मन को लीन करना ही अजपा जप की साधना है। यह जप अहर्निश (प्रति अहोरात्र में २१ हजार ६०० बार) चलता रहता है। **'हकार'** के साथ श्वास बाहर आती है और **'सकार'** के साथ बाहर जाती है। इस प्रकार अहर्निश ''हंस: हंस:'' का जप प्रत्येक प्राणी द्वारा निरन्तर किया जाता रहता है—

'हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत् पुन:।
हंस हंसेत्यमुं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा।।
षट्शतानित्वहो रात्रे सहस्राण्येकविंशति:।
एतत्संख्यान्वितं **मन्त्रं** जीवो जपति सर्वदा।।'

—(गो० श०)

योगी का लक्ष्य यह है कि वह 'हंसः' अजपा नाम गायत्री मंत्र को उलटकर 'सोऽहं सोऽहं' के रूप में सुने। यही अजपा गायत्री है। अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी । अस्याः संकल्पमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते।।''

अजपा गायत्री की उत्पत्ति कुण्डलिनी से होती है। यह **'प्राणविद्या' 'महाविद्या'** एवं **'गायत्री'** है—

'कुण्डलिन्या समुद्भूता गायत्री प्राणधारिणी।
प्राणविद्या महाविद्या यस्तां वेत्ति स **योगवित्**।।'

इस प्राणविद्या का सम्यक् ज्ञाता ही **''योगविद्''** कहलाता है।

[९] * **कुण्डलिनी योग और उसकी साधना** *

मनुष्य के **'नाड़ी-केन्द्र'** के ऊर्ध्व में आठ फेंटे लगाकर स्थित, मुख से ब्रह्मद्वार को रोककर अवस्थित तथा स्वयंभूलिंग को वेष्टित करके विद्यमान जो प्रसुप्ता परमेश्वरी **'मूलाधार चक्र'** में विश्राम कर रही है, उसका ही नाम है **'कुण्डलिनी'**। उसे **'वह्नियोग'** से प्रबुद्ध करके सुषुम्णा में स्थित षट्चक्रों एवं ग्रंथित्रय का भेदन कराते हुए साधक का उसे सहस्रारस्थ शिव से मिलाना (सामरस्य कराना) ही **कुण्डलिनी योग की साधना है।** यह **'कुलाकुलयोग'** ही (शिव-शक्ति-सामरस्य ही) **कुण्डलिनी योग की साधना** है। इसी सामरस्य से योगी **'मोक्ष'** पाता है—

'कुण्डलिन्या तथा योगी **मोक्षद्वारं प्रभेदयेत्**।।' 'शक्तिचालनी**मुद्रा' 'भस्त्रिका-प्राणायाम' 'वज्रासन'** आदि साधन कुलशक्ति के प्रबोधन के प्रधान साधन हैं।

[१०] * **कुण्डलिनी शक्ति के व्यापार** *

कुण्डलिनी की सुषुप्ति ही जीवों का बन्धन है एवं उसको जागृत करके उसको अकुल से मिलाना ही जीवों की भुक्ति है। अतः 'कुण्डलिनी' मूढ़ों के लिए बन्धनकारिणी एवं योगियों के लिए मोक्षदा है—

'कुन्दोर्ध्वं कुण्डली शक्तिरष्टधा कुण्डलाकृतिः।
बन्धनाय च मूढानां योगिनां मोक्षदा स्मृता।।'

मुद्राभ्यास—मुक्ति प्राप्त करने के साधनों में **मुद्राभ्यास** भी महत्वपूर्ण है—

'स योगी भुक्तिभाजनम् ।।'

मुख्य मुद्राएँ हैं—**'महामुद्रा' 'नभोमुद्रा' 'उड्डियान' 'जालन्धर'** एवं **'मूलबन्ध'**। **'खेचरी मुद्रा'** का अपना विशिष्ट महत्व है।

[११] **अमृतपान एवं 'खेचरीमुद्रा'**—

'कालवञ्चन', 'अमृतत्व की प्राप्ति', 'पिण्डपदसमरसीकरण', 'निरुत्थान' ही **नाथ-योग के मुख्य लक्ष्य हैं।**

[१२] * **बिन्दु-साधना (बिन्दुयोग)** *—

योगी गोरक्षनाथ कहते हैं कि—'बिन्दुमूलं शरीरं तु शिरास्तत्र प्रतिष्ठिताः।'' समस्त शरीर बिन्दु' पर ही तो अवस्थित है, अतः—

'मरणं **बिन्दुपातेन,** जीवनं बिन्दुधारणात् ॥''

बिन्दु के पतन को रोकने के लिए **'खेचरी मुद्रा'** (जिह्वा को उलट कर कण्ठमूल में ले जाना) अत्यन्त सहायक है। **जब तक बिन्दु रक्षित** है मृत्यु संभव नहीं है—

'ब्रह्मचर्येण देवाः मृत्युमुपाघ्नत।' (वेद)

'यावद् बिन्दुः स्थितो देहे तावन्मृत्युभयं कुतः?'

'खेचरीमुद्रा' 'नभोमुद्रा' एवं 'वज्रोली'—की साधना से बिन्दु का अधःपतन होता ही नहीं। अतः ये साधनायें आवश्यक हैं। बिन्दु का ऊर्ध्वीकरण एवं 'उर्ध्वरितसत्व' ही ब्रह्मचर्य-साधना या **बिन्दु-साधना का प्राथमिक लक्ष्य** है। बिन्दुजय से अमृतत्व एवं अनेक सिद्धियों की प्राप्ति **द्वितीय लक्ष्य** है। ब्रह्मत्व-साक्षात्कार एवं समरसीकरण तथा मोक्षाप्ति **अन्तिम लक्ष्य** है।

'बिन्दु' और उसके भेद—'बिन्दु' के दो भेद हैं—

(१) 'पाण्डुर बिन्दु (२) 'लोहित बिन्दु'।
(शुक्र) (महाराज)

(१) शुक्र का स्थान : यह चन्द्रस्थान में स्थित है। 'बिन्दु' **शिव** है। बिन्दु **'चन्द्र'** है।

(२) रज का स्थान : यह नाभि में स्थित 'रज' **शक्ति** है। रज **'रवि'** है।

* इन **दोनों की एकता** अत्यन्त दुर्लभ है। इन दोनों के संगम से **'परमपद'** की प्राप्ति होती है। *

वायु के द्वारा शक्ति का चालन करने से जब महारज ऊर्ध्वमुख होकर एवं बिन्दु से मिलकर एक हो जाता है और तब शरीर दिव्य हो जाता है। बिन्दु-साधना से परमपद की प्राप्ति होती है—'उभयोः सङ्गमादेव प्राप्यते परमं पदम् ।'

*** बिन्दु-साधना मोक्ष का साधन है। ***

[१३] * **ओंकार की साधना** *

एकान्त स्थान में सम्यक रीति से **पद्मासनस्थ** होकर, **कण्ठ एवं शिर को समसूत्र में रखकर, नासाग्रभाग** पर **दृष्टि** रखकर **ओंकार का जप** करना चाहिए—

"पद्मासनं समारुह्य समकायशिरोधरः।
नासाग्रदृष्टिरेकान्ते जपेदोङ्कारमव्ययम्।।"

जिसकी मात्राओं में 'भूः', 'भुवः' एवं 'स्वः' तीनों लोक एवं चन्द्र, सूर्य तथा अग्नि देवता स्थित हैं—वही परम ज्योति ओंकारस्वरूप है। (ओंकार का स्वरूप)

ओंकार का स्वरूप



प्रणवाभ्यास की आन्तर साधना—

'(१) **वचसा** तज्जपेद् बीजं' = प्रणव की वाणी-साधना
'(२) **वपुषा** तत्समभ्यसेत्' = शरीर-साधना
'(३) **मनसा** तत्स्मरेन्नित्यं' = मन की साधना
'तत्परं ज्योतिरोमिति।'

'(४) शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि यो जपेत् प्रणवं सदा।
न स लिप्यति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।।'

(पवित्रापवित्र सभी स्थितियों में प्रणव का निरन्तर जप करते रहना चाहिए। इससे किसी भी पाप का स्पर्श नहीं होता।)

प्राण का बिन्दु से सम्बंध—

'चले वाते चलोबिन्दुर्निश्चले निश्चलो भवेत्।।'
(वातचांचल्य→बिन्दु चाञ्चल्य।
वातस्थिरता→बिन्दु-स्थिरता
बिन्दु-स्थिरता→वात-स्थिरता

मरुत-स्थैर्य, चित्त-स्थैर्य एवं भ्रूमध्य मेंदृष्टि का स्थैर्य होने पर —मृत्यु का भय कहाँ?—

"यावद् बद्धो मरुद्देहे यावच्चित्तं निराभयम्।
यावद् दृष्टिर्भ्रुवोर्मध्ये तावत्कालभयं कुतः?॥"

प्राणापान की गति—प्राणापान की संचार-मात्रा ३६ अंगुल होती है।
प्राणवायु का संग्रह (प्राणस्थैर्य) आवश्यक है।

प्राणायाम से ही नाड़ी-शोधन होता है।

[१४] **प्राणायाम के पूर्व चन्द्रबिम्ब का ध्यान—**

'कुंभक' एवं 'रेचक' से युक्त प्राणायाम-साधना और उसके साथ—(१) अमृत स्वरूप (श्वेत वर्ण के) (२) दधि (धवल) (३) दुग्ध (धवल) **का ध्यान** करके प्राणायामाभ्यास करने वाला सदैव सुखी रहता है।

*** नाभि में अग्निपुञ्जवत प्रदीप्त सूर्य मण्डल का ध्यान ***

प्राणायाम-साधना के समय कुम्भक के काल में साधक को नाभिदेश में स्थित अग्निपुञ्ज के समान प्रदीप्त सूर्यमण्डल का ध्यान करने से बहुत सुख प्राप्त होता है।

दाहिने नासारन्ध्र से पूरक करके **'सूर्यमण्डल'** का ध्यान करते हुए कुम्भक करना चाहिए।

सूर्य एवं चन्द्र की विधि से दोनों बिम्बों—का ध्यान करने से **तीन माह के भीतर** नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं। **नाड़ी-शोधन के परिणाम—**

(१) नाड़ियों का शोधन (शुद्धीकरण)
(२) प्राणवायु को धारण करने की सामर्थ्य
(३) जठराग्नि की दीप्ति
(४) आरोग्याप्ति
(५) नाद-श्रवण

'सूर्याचन्द्रमसोरनेन विधिना बिम्बद्वयं ध्यायतः।
शुद्धा नाडिगणा भवन्ति यमिनो मात्रत्रयादूर्ध्वतः।
यथेष्टं धारणं वायोरनलस्य प्रदीपकम्।
नादाभिव्यक्तिरारोग्यं जायते नाडिशोधनात्॥'

—गोरक्षशतक

'योगबीज' और उसके सिद्धान्त

'योग की परिभाषा क्या है?

गोरक्षनाथ कहते हैं—

(१) **प्राण एवं अपान** का समायोग ही **'योग'** है।

(२) **चन्द्र एवं सूर्य** की एकता ही **'योग'** है।

(३) **रज एवं रेतस** का योग ही **'योग'** है।

(४) **जीवात्मा एवं परमात्मा** का योग ही **'योग'** है।

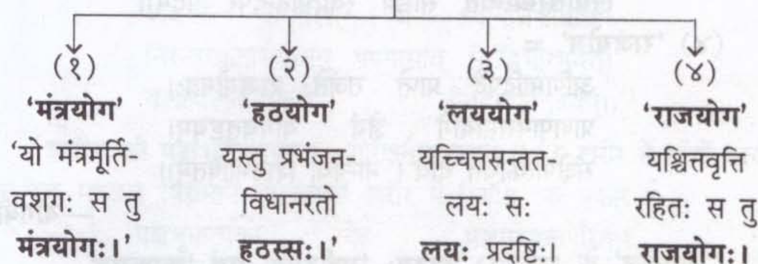
'योऽपानप्राणयोर्योगः स्वरजोरेतसोस्तथा।
सूर्याचन्द्रभसोर्योगो जीवात्मपरमात्मनो:।'

(५) इसके अतिरिक्त द्वन्द्वजाल का संयोग भी **'योग'** है।

'एवं द्वन्द्वजालस्य संयोगो योग उच्यते॥'

—योग बीज

चतुर्विध योग ('अमरौघ प्रबोध' के अनुसार)



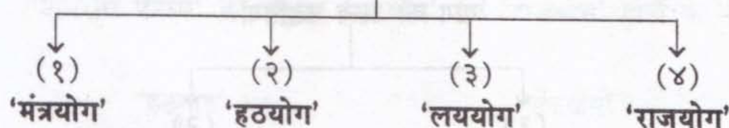
'योगबीज' में गोरक्षनाथ कहते हैं कि—

'एक एव चतुर्धाऽयं **महायोगो**ऽभिधीयते॥''

नाथयोग में 'महायोग' और उसके भेद—'महायोग' केवल एक है।

गोरक्षनाथ ने योग-साधना की विभिन्न प्रणालियों को एक ही **'महायोग'** की विभिन्न पद्धतियाँ कहा।

महायोग की साधना-पद्धतियाँ ('योग तत्त्वं चतुर्विधं')



(१) **'मंत्रयोग'** =

'हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेन्मरुत्।
हंसहंसेति मन्त्रोऽयं सर्वजीवा जयन्ति तम्॥
गुरुवाक्यात्सुषुम्णायां विपरीतो भवेज्जपाः॥
सोऽहं सोऽहमिति प्राप्तो **मन्त्रयोगः** स उच्यते॥'

(२) **'हठयोग'** =

'प्रतीतिर्वायुयोगाच्च जायते पश्चिमे पथि।
हकारेण तु सूर्योऽसौ ठकारेणेन्दुरुच्यते।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद् **हठयोगो**ऽभिधीयते।
हठेन ग्रस्यते जाड्यं सर्वदोषसमुद्भवम्।।

(३) **'लययोग'** =

क्षेत्रज्ञपरमात्मानौ तयोरैक्यं यथा भवेत्।
तदैक्ये साधिते देवि ! चित्तं याति विलीनताम्।
पवनः स्थैर्यमायाति **लययोगो**दये सति।
लयात्सम्प्राप्यते सौख्यं स्वात्मानन्दपरं पदम्।।

(४) **'राजयोग'** =

अणिमादिपदे प्राप्ते राजते **राज**योगतः।
प्राणपानसमायोगे ज्ञेयं योगचतुष्टयम्।
संक्षेपात्कथितं देवि ! नान्यथा शिवभाषितम्।।

—योगबीजम्

('योगबीज' के अनुसार) **मतद्वयः 'मर्कटमत' एवं 'काकमत'**

(१) ''मर्कट मत''

(२) ''काकमत''

'चिरात् सम्प्राप्यते सिद्धिः **मर्कटक्रम** एव सः।।'
पूर्वजन्मकृताभ्यासात्सत्वरं फलमश्नुते।
एतदेव हि विज्ञेयं **तत्काकमत**मुच्यते।।

योग की अन्य पद्धतियाँ

(१) 'पिपीलिका योग' (क्रम-साधना)

(२) 'विहंगम योग' (अक्रम ज्ञान-साधना)

लययोग की अन्य विधियाँ—'अमरौघ प्रबोध' में गोरक्षनाथ ने 'लययोग' का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

साधक को अपने शरीर के 'मूलाधारचक्र' में **मन के प्रतीक के रूप में**

प्रतिष्ठित **'कामरूपपीठ'** में मणि के समान स्वयं प्रकाशित एवं सर्वकारणभूत आत्मा के समान ज्योतिर्मय, सृष्टि-स्थिति-प्रलय के अधिष्ठान (लिंग) रूप मोक्षप्रदाता शिव का **स्वयंभू लिंग के रूप में ध्यान करना चाहिए।** साथ ही यह भावना भी करनी चाहिए कि 'तालु चक्र' में स्थित चन्द्रमण्डल से स्रवित सुधाधारा इस शिवलिङ्ग का अमृताभिषेक करने के साथ उसके **सर्वाङ्ग को भी सोमकला के प्रवाह से आप्लावित** कर रही है। इस प्रकार के ध्यानयोग की भावना का ६ मास तक निरन्तराभ्यास करने पर **'लययोग'** की सिद्धि हो जाती है। 'ससे शरीरजन्य वलीपलित नष्ट हो जाती है और साधक **तीन सौ वर्ष तक** जीता रहता है—

'कामरूपे शिवं देवं लिङ्गाभं मणिसन्निभम्।
स्रवन्तं चामृतरसं यो ध्यायेन्निजविग्रहे।
निरन्तरकृताभ्यासात् षण्मासात् सिद्धिभाग्भवेत्।
वलीपलितनिर्मुक्तो जीवेदब्दशतत्रयम्।।'[१]

शरीर की पञ्चभूतात्मकता—गोरक्षनाथ कहते हैं कि शरीर में पाँचों तत्त्वों के एक-एक मण्डल विद्यमान हैं। उनकी शरीर में स्थिति इस प्रकार है—

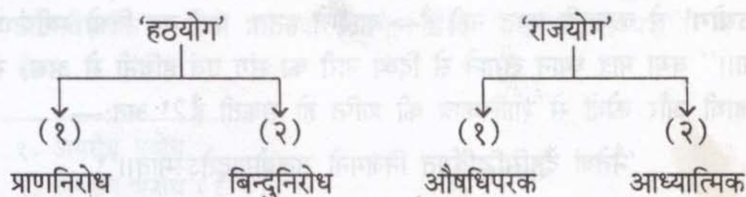
पञ्चभूतात्मको देहः पञ्चमण्डलपूरितः।
काठिन्यात्पृथिवी **पृथ्वी** ज्ञेया पानीयं यद् द्रवाकृतिः।
दीपनं तु भवेत्तेजः स्पर्शो वायोस्तथा भवेत्।
आकाशे चेतनं सर्वं ज्ञातव्यं योगमिच्छता।।[२]

वायु तत्त्व और श्वास का सम्बन्ध—

षट्च्छतान्यदधिकान्यत्र सहस्राण्येकविंशतिः।
अहोरात्रं वहेच्छ्वासो वायुमण्डलरेचनात्।।

वायुमण्डल का रेचन—जीव की २१ हजार ६०० श्वासें।

'अमरौघ प्रबोध' के अनुसार **'हठयोग'** एवं **'राजयोग'** दोनों के भी भेद हैं—



१. अमरौघ प्रबोध (२८)
२. तत्रैव (५६-५७)

'हठयोग' एवं 'राजयोग' को इस प्रकार भी (अन्यत्र) व्याख्यायित किया गया है—

'हठयोग' ↓	'राजयोग' ↓
(१) ह+ठ+योग = सूर्य+चन्द्र+योग (२) ह+ठ+योग = प्राण+अपान+योग (३) ह+ठ+योग = दक्षिण+वामस्वर+योगा (४) ह+ठ+योग = यमुना+गंगा+योग (५) ह+ठ+योग = पिंगला+इड़ा+योग (६) ह+ठ+योग = रजस्+रेतस+योग	'योनिमध्ये महाक्षेत्रे जपाबंधूक-सन्निभम्। रजो वसति जन्तूनां देवी तत्त्वं समावृत्तम। रजसो रेतसो योगा-द्राजयोगइति स्मृत:। अणिमादि पदं प्राप्य राजते राजयोगत:।।' योगशिखोपनिषद् (१३६-१३७)

(क) हकार: कीर्तित: सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद्धठयोगो निगद्यते।।''

—सिद्धसिद्धान्त पद्धति।

(ख) हठाज्ज्योतिर्मयोभूत्वा ह्यन्तरेण शिवोभवेत्।
अतोऽयं **हठयोगः** स्यात् सिद्धिद: सिद्धसेवित:।।

—प्राणतोषिणी।

(ग) **हठयोग की दो योग विधियाँ—**

द्विधा हठ: स्यादेकस्तु गोरक्षादिसुसाधित:।
अन्यो मृकण्डुपुत्राद्यै: साधितो हठसंज्ञक:।।

षट् कर्मों में पूर्ण साफल्याप्ति कराने वाला मंत्र कहीं भी दृष्टिगत नहीं होता। यदि मन, भ्रूमध्य, नासिका आदि स्थानों में ध्यान मग्न हो भी जायँ तो भी मूलाधार चक्र में प्राण वायु प्रविष्ट नहीं होती। नित्यानन्द-सम्पन्न **मोक्षश्री** एवं आत्म प्रभाव-निलय **से युक्त 'राजयोग'** के बिना उक्त उद्देश्य की पूर्ति संभव नहीं है। यह उद्देश्य **'हठयोग'** से कथमपि प्राप्त नहीं है—'जायन्ते हठत: कथं वद विभो स्वीयं प्रभावं विना।।'' क्या मात्र ध्यान लगाने से दिव्य नारी का संग एवं हथिनी से अश्व, गर्दभी से हाथी और कोदों से शालिकान्न की प्राप्ति हो सकती है?[१] अत:—

'नैतेषां देहसिद्धिर्विगत निजमनो राजयोगादृतेऽस्मात्।।'[२]

---

१. अमरौघ प्रबोध
२. तत्रैव

'अमरौघ प्रबोध' में राजयोग का जो प्रथम प्रकार **'औषधिपरक'** बताया गया है, वह यहाँ स्वीकार्य है ही नहीं; क्योंकि यह भी बताया गया है कि—

(१) समस्त प्राणियों के शरीर में **'दो महान औषधियाँ'** विद्यमान हैं—

(क) 'बिन्दु' (ख) 'नाद'

'**बिन्दुनादौ** महौषध्यौ विद्येते सर्वजन्तुषु।
तावविज्ञाय सर्वेऽपि म्रियन्ते गुरुवर्जिताः॥'[१]

नाथों का परमतत्व—आचार्य शंकर का ब्रह्म निर्गुण निराकार, अकर्ता, निष्क्रिय एवं विश्वातीत है। सारे कार्य केवल माया करती है; किन्तु नाथों का 'देवदेवेश' परमात्मा 'आदिनाथ' 'विश्वनाथ' विश्वरूप' 'विश्वातीत' 'उत्पत्ति-स्थिति-संहारकारी' 'क्लेशहारी' 'परमात्मा', 'महायोगीश्वर', 'परिपूर्ण' एवं 'जगदानन्द हेतु' है।[२]

यह परमात्मा 'शक्ति' से असमवेत 'निर्गुण ब्रह्म' नहीं है। प्रत्युत (शिव की भाँति) **शक्तियुक्त जगद्गुरु** एवं आदिनाथ हैं—

'आदिनाथं नमस्कृत्य **शक्तियुक्तं** जगद्गुरुम् ॥'[२]

सृष्टि के पूर्व स्थित वह परासत्ता अपनी अव्यक्तावस्था में **'अनाम' परब्रह्म** कहलाती है और इस दृष्टि से उस काल में 'कर्ता', 'कुल', 'अकुल' एवं 'कारण' कोई विद्यमान नहीं रहता। यही **'अनाम'** की स्थिति है।[३]

परब्रह्म की स्वसमवेत शक्तियाँ—वेदान्तियों के निर्गुणनिराकार परब्रह्म में उसकी कोई समवायिनी निजा शक्ति है ही नहीं; किन्तु 'त्रिकदर्शन' (का० शैव दर्शन) की भाँति नाथमत में शिव की स्वसमवेता शक्तियाँ हैं। उस अकर्ता शिव की — 'अनाम' की भी स्वसमवेता निजा शक्ति है—

'अनामेति स्वयमनादिसिद्ध एकमेवानादिनिधनं सिद्ध-
सिद्धान्तप्रसिद्धं तस्येच्छामात्रधर्माधर्मिणी **निजा शक्तिः** प्रसिद्धा।'

—(सि० सि० प०)

शिव में **'निजाशक्ति'**, **'पराशक्ति'**, **'अपराशक्ति'**, **'सूक्ष्माशक्ति'** एवं **'कुण्डलिनीशक्ति'**—पाँचों शक्तियाँ विद्यमान हैं।[४] 'सिद्धसिद्धान्त पद्धति' में कहा गया है—

---

१. अमरौघ प्रबोध
२. अमरौघ प्रबोध (१-३)
३. सि० सि० पद्धति (१)
४. सिद्ध सिद्धान्त पद्धति।

'निजापराऽपरासूक्ष्माकुण्डलिन्यासु पञ्चधा
शक्तिचक्रक्रमेणोत्थो जातः पिण्डपरः शिवः॥'

सम्प्रदायवाद—नाथसम्प्रदाय के अनुयायियों के अनुसार नाथयोग ही सर्वोच्च साधन मार्ग है।

'योगबीज' में कहा गया है कि नाथमार्ग को छोड़कर अन्य कोई भी साधन-मार्ग **'कैवल्य'** प्रदान नहीं कर सकता—

(१) बद्धा येन विमुच्यन्ते **नाथमार्गमतः** परम् ॥

(२) नानामार्गैस्तु दुष्प्रापं **कैवल्यं परमं पदम्** ॥

'सिद्धमार्गेण' लभ्येत नान्यथा शिवभाषितम् ॥[१]

(३) **"अन्य शास्त्रसमूह पतित हैं"**—

'पतिताः शास्त्रजालेषु प्रज्ञयाते विमोहिताः।
अनिर्वाच्यपदं वक्तुं न शक्यत सुरैरपि॥'

"नाथ-सम्प्रदाय" में यह सम्प्रदायवाद बद्धमूल है। संसार के सारे देशों में यह 'सम्प्रदायवाद' है।

डा० सर्जियस बुल्गाकोफ़ का कथन है—

"संसार में केवल एक ही सच्चा चर्च है आर्थोडाक्स चर्च। (सनातनी ईसाई सम्प्रदाय)

मार्टिन लूथर का कथन है—

"जो ईसाई धर्म के बाहर हैं, फिर चाहे वे नास्तिक हों या तुर्क, यहूदी हों या मिथ्या ईसाई (रोमन कैथोलिक) हों; और भले ही केवल एक सच्चे ईश्वर में विश्वास रखते हों, फिर भी वे शाश्वत विनाश, सनातन क्रोध एवं नरक के गर्त में पड़े हुए हैं।[२]

जान नाक्स का कथन है—

"**एशिया** में क्या हैं? ईश्वर के प्रति अज्ञान। **अफ्रीका** में क्या है? हमारे प्रभु ईसा, हमारे उद्धारक के प्रति अस्वीकृति। **ग्रीशियनों के चर्चो** में क्या है? क्या मुहम्मद और उनका मिथ्या सम्प्रदाय? **रोम** में क्या है? सारे जादूगरों का बड़ा भारी आश्रय या वह कलंकित मानव॥[३]

---

१. योग बीज (७-८)
२. लार्बर कैटैकिज्म (२-३)
३. 'इण्टरनेशनल रिव्यू आफ मिशन्स'

जार्ज टाइरेल का कथन है—

"प्रोटेस्टैण्टों और जंगलियों में कोई अन्तर नहीं। ये सब नरक में एक समान ही जलेंगे।।"[१]

ईसाईयों में—प्रोटेस्टेंट, कैथोलिक, ऐंग्लिकन एवं प्यूरिटन सभी अपने को श्रेष्ठतम एवं दूसरे को पथभ्रष्ट एवं हीन मानते हैं। वह परमतत्त्व 'अनिर्वाच्यपद' एवं 'स्वात्मप्रकाशरूप' है। वह परमतत्त्व निश्चल, निर्मल, शान्त, सर्वातीत एवं निरामय है। वही पुण्यपाप के फलों से आबद्ध होकर **'जीव'** भी बन गया है—'तदेतज्जीवरूपेण पुण्यपापफलैर्वृतम् ।।'[२] नाथपंथ में **'शिव' एवं 'जीव' में एकता** भी प्रतिपादित की गई है।

जीव एवं परमात्मा में एकता—

परमात्मा जीव कैसे बन गया?

'परमात्मपदं नित्यं तत्कथं जीवतां गतम् ?'

महादेव कहते हैं कि जिस प्रकार जल में तरङ्ग की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार परमात्मा में अहंकार की उत्पत्ति होती है। यही **'अहंकार'** पञ्चतत्त्वों से निर्मित, धातुओं से परिबद्ध, गुणत्रययुक्त, सुखदुःखरूप कर्मफल के भोक्ता के रूप में जीवात्मा बनकर जन्म लेता है। यही जीव के सारे दोषों से मुक्त होकर **शिव बन जाता है। योगयुक्त ज्ञान से ही** काम-क्रोध आदि दोषों का नाश होता है और इसी ज्ञान युक्त योग साधना से मोक्षाप्ति होती है। दोष से रहित जीव ही 'शिव' है—

एभिर्दोषैर्विनिर्मुक्तः **स जीवः शिव एव हि।।"**

किन्तु जीव को शिवत्व की प्राप्ति **(वेदान्तियों के कथनानुसार)** मात्र **'ज्ञान'** से सम्भव नहीं है प्रत्युत् **योगयुक्तज्ञान** से ही संभव है—

'योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवतीश्वरि?
योगोऽपि ज्ञानहीनस्तु न क्षमोमोक्षकर्मणिः।।'[३]

ज्ञान का महत्व—शांकर अद्वैतमत में ज्ञान को सर्वोपरि महत्व प्रदान किया गया है—

"ज्ञानान्न ऋते मुक्तिः।।"

नाथपंथी भी कहते हैं कि—

(१) **'अज्ञानादेव संसारो।'** अज्ञान→संसार

---

१. एम० डी० पेट्रे : 'दि लाइफ आफ जार्न टाइरेले।'
२. योगबीज (१०-११)
३. योगीबीज (१९)

(२) '**ज्ञानादेव** विमुच्यते।' ज्ञान→मुक्ति।

शाङ्कर वेदान्त में प्रतिपादित **जीव मात्र ज्ञान से ही मुक्त हो जाता है;** किन्तु नाथमत के अनुसार **कोई भी जीव मात्र ज्ञान से मुक्त नहीं हो सकता—**

सर्वदोषैर्वृतो जीवः कथं ज्ञानेन मुच्यते?[१]

कोई कितना भी महान ज्ञानी क्यों न हो; किन्तु वह कभी न कभी संसार-वासना से पङ्किल हो ही जाता है। अतः 'अज्ञानी' एवं 'ज्ञानी' में कोई भेद नहीं रह जाता। अतः योग-साधना अनिवार्य है—क्योंकि—

"ज्ञाननिष्ठो विरक्तोऽपि धर्मज्ञो विजितेन्द्रियः।
विना योगेन देवोऽपि न मोक्षं लभते प्रिये॥"[२]

योग-साधना और शरीर-भेद—योगियों की मान्यता है कि योग-साधना '**अपक्व देह**' से संभव नहीं है।

योग के भेद

(१) **'अपक्वदेह'**

(२) **'परिपक्वदेह'**

'अपक्वाः परिपक्वाश्च द्विविधा देहिनः स्मृताः।

(१) 'अपक्वा योगहीनास्तु'	(१) 'पक्वा योगेन देहिनः॥[३]
(२) 'जडस्तत्पार्थिवो ज्ञेयश्चापक्वो दुःखदो भवेत् ।'	(२) 'पक्वो योगाग्निना देही ह्यजडशोक-वर्जितः।'

अपक्वदेही की स्थिति—

'ध्यानस्थोऽपि तथाप्येवमिन्द्रियैर्विवशो भवेत्।
अतिगाढं नियम्यापि तथाप्यन्यैः प्रबोध्यते॥'

(१) अपक्वदेही ध्यान-साधक रहने पर भी इन्द्रियों का गुलाम बना रहता है।

(२) ऐसा ध्यानी, ज्ञानी, साधक आदि भी किसी योगी के द्वारा प्रबोधित होने पर ही सिद्धि प्राप्त कर पाता है, अन्यथा नहीं।

---

१. योगबीज (२३)
२. योगबीज (३१-३२)
३. योगबीज (३४)

अपक्वदेह	परिपक्व देह
(१) यह देह जड़ होती है। होती है।	(१) यह देह **योगाग्नि से ही परिपक्व** बन पाती है।
(२) इसमें चैतन्य नहीं होता।	(२) यह अजड या **चेतन** होती है।
(३) यह पार्थिव है।	(३) यह **शोक-हीन** एवं अपार्थिव (चिन्मय होती है।
(४) यह दु:खास्पद है।	(४) यह (पूर्व देह के दोषों से रहित होने पर प्राप्त होती है।
(५) यह ध्यान-साधना करने पर भी जड़ ध्याता से पृथक नहीं हो पाती।	पक्वदेही व्यक्ति का— (१) अहंकार नष्ट हो जाता है।
(६) यह शीत उष्ण, सुख-दु:ख, व्याधि, शस्त्र, अग्नि, जल, वायु आदि के उत्पातों से पीड़ित रहती है। प्राणापान के वैषम्य से इसमें वायु प्रकुपित रहती है। इसके कारण ही व्यक्ति सैकड़ों दु:खोंसे व्याकुल चित्त वाला बनता है।	(२) उसके शरीर में कोई रोग नहीं हो सकता। (३) जल, अग्नि, वायु, शस्त्र आदि उसे हानि नहीं पहुँचा सकते। (४) परिपक्व देही व्यक्ति में शम, दम आदि प्रवृत्तियाँ सहज रूप में उत्पन्न होती हैं।
(७) **अपक्वदेही व्यक्ति** की, ज्ञान-ध्यान-वैराग्य जप आदि की साधनायें व्यर्थ हैं।	बिना अहंकार के देह में दु:खोदय संभव ही नहीं है। 'अहंकारं बिना तद्वद् देहे दु:खं कथं भवेत् ?'
(८) अपक्व देही की अहंकृति परिच्छिन्न एवं परिपुष्ट होती है। इसी कारण ऐसा व्यक्ति अनेक बाधाओं एवं व्याधियों से संत्रस्त रहा करता है।	

'योगदेह', 'योगबल' एवं 'जीवन्मुक्ति'—

(१) जीर्णशीर्ण शरीरों ने सभी प्राणियों पर विजय प्राप्त कर ली हैं; किन्तु योगियों ने योगाभ्यास के द्वारा शरीर पर ही विजय पा ली है—

"शरीरेण जिता: सर्वे शरीरं योगिभिर्जितम्।।"[१]

---

१. योगबीज (४९)

(२) इन्द्रियाँ काम, क्रोध, मन,बुद्धि द्वारा जीत ली गईं; किन्तु योगियों ने काम, क्रोध, बुद्धि एवं इन्द्रिय सभी पर विजय प्राप्त कर ली।

'योगदेह' का स्वरूप—

(१) सप्तधातुमयो देहो दग्धो **योगाग्निना** शनैः।
देवैरपि न लभ्येत **'योगदेहो'** महाबलः॥

(२) छेदबन्धैर्विर्मुक्तोऽसौ नानाशक्तिधरः परः।
यथाकाशस्तथा देहः आकाशादपि निर्मलः॥

(३) सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरो देहः स्थूलात् स्थूलो जडाज्जडः।[१]

(४) ऐसा पक्वशरीर वाला योगी स्वतंत्र, अजर, अमर, लोकत्रय में यथाकाम विचरण करने वाला, अचिन्त्य, शक्तिशाली, विजितेन्द्रिय, अनेक रूप धारण करने की क्षमता वाला होता है और सहजस्थिति में **'स्वस्थ'** रहता है।

"(१) इच्छारूपो हि योगीन्द्रः स्वतंत्रस्त्वजरामरः॥"

"(२) सूक्ष्मात्सूक्ष्मतो देहः स्थूलात् स्थूलो जडाज्जडः।"

"(३) अचिन्त्यशक्तिमान् योगी नानारूपाणि धारयन् ॥"

"(४) नासौ मरणमाप्नोति **पुनर्योगबलेन** तत् ॥

"(५) चूँकि ऐसा योगी मृत्युपूर्व ही मृत हो जाता है। अतः मृत की मृत्यु कैसी?
'पुरैव मृत एवासौ मृतस्य मरणं कुतः?'

किन्तु—**'मरणं यत्र सर्वेषां'** तत्रासौ सखि ! जीवति ॥'
किन्तु 'यत्र जीवन्ति मूढ़ास्तु तत्रासौ म्रियते सदा॥

यह जीवन्मुक्त होता है—

'जीवन्मुक्तः सदा स्वस्थः सर्वदोष-विवर्जितः॥'

'मांसपिण्ड कुदेहियों' से यह अत्यन्त महान् है, क्योंकि —

'ते कथं योगिभिस्तुल्याः मांसपिण्डा कुदेहिनः?"

गुरुवाद—वेदान्त, न्याय, आगम और अन्य शास्त्रपाठों से भी गुरुश्रेष्ठ होता है।[१]

*** यहाँ ज्ञान एवं योग तथा ज्ञानयोग का समन्वय है ***

---

१. योगबीज (५१-५३)
२. योगबीज (६६)

वेदान्त का खण्डन—(ज्ञानयोगसमन्वयवाद)—

(१) ज्ञान से मोक्ष नहीं प्राप्त होता।

(२) यदि खड्ग से ही विजय मिल जाती है तो युद्ध में लड़ने से क्या? प्रश्न उठता है—

'**विना** युद्धेन् वीर्येण कथं जयमवाप्नुयात्?'

अतः—तथा **योगेन रहितं ज्ञानं** मोक्षाय नो भवेत् ॥

किन्तु यह भी सत्य है कि—

'**ज्ञानेनैव विना योगो** न सिद्ध्यति कदाचन।'

ज्ञान तो योग-साधना से एक ही जन्म में प्राप्त किया जा सकता है। अतः सत्य तो यह है कि—

'तस्माद् योगात् परतरो नास्ति मार्गस्तु मोक्षदः।।'[१]

योगमार्ग की सर्वश्रेष्ठता—

योगात्परतरं **पुण्यं,** योगात्परतरं **सुखम्।**
योयात्परतरं **सूक्ष्मं, योगमार्गात्परं नहि।।**[२]

प्राणसाधना का महत्त्व—नाथपंथी कहते हैं कि गुरु उसी को बनाना चाहिए जो प्राण पर विजय प्राप्त कर चुका हो—

'मरुज्जयो यस्य सिद्ध्येत् सेवयेत्तं गुरुं सदा।'

कुण्डलिनी-योग—अपनी सुषुप्त शक्ति को जाग्रत किये बिना या पाताल की '**शक्ति**' को स्वर्ग (मुक्ति) लोक के '**शक्तिमान्**' (अकुल) से समरस किये बिना मुक्ति एवं अपने '**स्व' का पूर्ण विकास** संभव नहीं है।

प्राणायाम—कुण्डलिनी-साधना के विधान में गोरक्षनाथ ने प्रथम साधन प्राणायाम को स्वीकार किया है। ('वज्रासन' में बैठकर) एवं बालिस्तभर लम्बे एवं चार अंगुल चौड़े कोमल श्वेत वस्त्र से नाभि को वेष्टित करके **शक्तिचालन युक्ति** से वायु का कुम्भक करना चाहिए।

अष्टकुण्डलकुण्डलित कुण्डलिनी को सीधा करने हेतु **प्राणवायु का आकुञ्चन** करना चाहिए। इसके बाद **कुण्डली का चालन** करना चाहिए।

१५ दिनों तक '**वज्रासन**' से बैठकर '**शक्तिचालिनी मुद्रा**' का अभ्यास करना चाहिए।

---

१. योगबीज (७२)
२. योगबीज (८७)

प्राण-संयमन से वायु तप्त हो उठती है और इस वायु से प्रज्वलित अग्नि कुण्डलिनी को प्रतप्त कर देती है। इससे व्याकुल होकर 'कुण्डलिनी शक्ति' सुषुम्णा के मुख में प्रवेश कर जाती है और वज्रदण्ड में वायु तथा अग्नि के साथ प्रवेश करके 'ब्रह्मग्रंथि' का भेदन करके रुद्रग्रंथि में प्रविष्ट हो जाती है। फिर कुंभक के सिद्ध होने पर (१) सूर्यभेद, उज्जायी, शीतली एवं भस्त्रिका का अभ्यास करना चाहिए। ये चार प्रकार के कुंभक प्राणायाम हैं। बंधत्रयक से युक्त केवल प्राणायाम से योग साधना सिद्ध हो जाती है।[१]

प्राणायाम के ८ भेद हैं—उनमें (१) सूर्यभेदन (२) उज्जायी (३) शीतलीकरण एवं (४) भस्त्रा प्राणायाम से कुण्डलिनी जाग उठती है।

(१) 'सूर्यभेद'→उदर के वायु विकार का नाश, गले के दोषों का अन्त, शरीर में कान्ति-वृद्धि, अग्नि-वृद्धि, शिर के रोग, जलोदर एवं धातुगत रोग नष्ट हो जाते हैं।

(२) 'उज्जायी'→चलते-फिरते, रुकते उज्जायी का अभ्यास करना चाहिए।

(३) शीतलीकरण→पित्त एवं ज्वर का नाश।

(४) 'भस्त्रा'→वात, पित्त, कफ का नाश। इससे कुण्डलिनी जागृत होती है, वह टेढ़ी से सीधी हो जाती है, ग्रंथि त्रय का भेदन होता है और ब्रह्मनाड़ी के मुख पर कफ रूप अवरोध का नाश होता है।

बंध-साधना—बंधों में (१) मूल बन्ध (२) उड्डियान (३) जालन्धर प्रधान है। उनका अभ्यास करना चाहिए। (१) मूल बन्ध से—प्राण एवं अपान वायु + नाद बिन्दु में एकता आती है।

(२) **उड्डियान**—(कुंभक के आदि एवं रेचक के अन्त में करणीय बंध) सुषुम्णा में बद्धप्राण ऊपर की ओर उड़ता है।—वृद्ध भी तरुण हो जाता है। ६ माह के निरन्तराभ्यास से प्राण का वशीकरण एवं इच्छामृत्यु की प्राप्ति होती है।

(३) **'जालन्धर बंध'**(पूरकान्त में अवश्य करणीय)—वायु मार्ग का निरोध, हृदय में वायु का अवरोध। यह बन्ध **अमृतस्वरूप** है और इससे प्राण **'ब्रह्मनाड़ी'** में प्रविष्ट हो जाता है।

कुण्डली-साधना—प्रथमत: योगी को (१) वज्रासन में बैठना चाहिए। फिर (२) कुण्डलिनी का चालन करना चाहिए। (३) फिर भस्त्रा प्राणायाम द्वारा उसे शीघ्र प्रबोधित करना चाहिए।

---

१. योगबीज (१००)

"वज्रासनस्थितो योगी चालयित्वा तु कुण्डलीम्।
कुर्यादनन्तरं भस्त्रां कुण्डलीमाशु बोधयेत्॥"

इस साधना से मेरुदण्ड में वायु से, ग्रंथियों का भेदन होता है। इससे मेरुदण्ड में खुजली होती है। यथा चींटी के चढ़ने-सी प्रतीत होती है। उसके बाद **'रुद्रग्रंथि'** का भेदन होता है। अत: शिवात्मकता प्राप्त होती है। अन्त में **शिवशक्ति समागम** से परम स्थिति प्राप्त होती है।

'शिवशक्तिसमायोगाज्जायते परमा स्थिति:॥'

जैसे हाथी सूँड़ से पानी खींचता है, वैसे ही **सुषम्णा नाड़ी पवन को अपने भीतर खींचती है।** मेरुदण्ड में **२१ मणि स्थित हैं। सुषुम्णा मोक्षमार्ग है।** सुषुम्णा में सूर्य-चन्द्र (पिंगला-इड़ा) के निबन्धन से **काल पर भी विजय** प्राप्त हो जाती है। **'पश्चिमद्वार'** (सुषुम्णा) में वायु-प्रवेश करायें। इससे वायु समस्त शरीर में प्रविष्ट हो जाती है। इसमें 'पूरक' 'रेचक' दोनों का अन्त हो जाता है। यही है **'नाथ सङ्केत' या 'सिद्धसङ्केत'।**

प्राण एवं चित्त का सम्बंध

(१) यदि चित्त प्राण में लयीभूत हुआ तो—

(२) चित्त में प्राण का भी लय हो जाता है।

(३) जिसके प्राण एवं चित्त में सामरस्य स्थापित नहीं हुआ उसका शास्त्र एवं गुरु एवं उसकी आत्मप्रतीति सभी निष्फल हैं—

'चित्तं हि नष्टं यदि मारुते स्यात्,
तत्र प्रतीतो मरुतोऽपि नाश:।
न चेदिदं स्यान्न तु तस्य शास्त्रं,
नात्मप्रतीतिर्न गुरुर्न मोक्ष:'

उसे 'मोक्ष' भी कभी नहीं प्राप्त हो सकता।

योगाभ्यास और 'ब्रह्मनाड़ी'—

(१) निरन्तर अभ्यासयोग से **'ब्रह्मनाड़ी'** समस्त धातुओं को अपनी ओर आकृष्ट करती है।

(२) **आसन-बन्ध-अभ्यास योग** से **'चित्त' प्राण में विलीन** हो जाता है। अत: **बिन्दु अधोगामी नहीं हो पाता।**

(३) अनेक **नादों की उत्पत्ति होती है।**

(४) भूख, प्यास आदि दोषों का अन्त हो जाता है।

योगी **सच्चिदानन्द स्वरूप में प्रतिष्ठित** हो जाता है।

'काकमत' की सर्वोच्च श्रेष्ठता—गोरक्षनाथ कहते हैं कि 'काकमत' से श्रेष्ठतर कोई नहीं है—

(१) 'तस्मात्**काकमतान्नास्ति** त्वभ्यासाख्य मतः परम्।।'

(२) बिना **कर्म** के योगसिद्धि नहीं प्राप्त होती—

'न कर्मणा विना देवि ! योगसिद्धिः प्रजायते।।'

(३) **लयादि योग**-साधन के बिना भी सिद्धि नहीं मिलती—

(४) पूर्वजन्म-कृत अभ्यास से शीघ्र सिद्धि मिलती है—

'पूर्वजन्मकृताभ्यासात्सत्वरं फलमश्नुते।।'

इसीलिए **'काकमत'** से श्रेष्ठतर कोई मत नहीं है।

योगाभ्यास के फल—

(१) 'आदौ **रोगाः प्रणश्यन्ति**' : रोगों का अन्त।

(२) 'पश्चा**ज्जाड्यं शरीर**गम्' : शरीर की जड़ता का अन्त।

(३) 'ततः **समरसो** भूत्वा' : समरसत्व की प्राप्ति।

(४) **'चन्द्रो वर्षत्यनारतम्'** : अमृत-वर्षा।

(५) **'धातुं स्व संग्रसेद** वह्निः (फिर अग्नि पवन के साथ अपनी धातु को 'पवनेन समन्ततः।' ग्रास बना लेता है।

(६) शरीर में अनेक प्रकार के **नादों का प्रादुर्भाव**

(७) शरीर में **मृदुता** आ जाती है।

(८) पृथ्वी आदि तत्त्वों की **जड़ता को जीतकर** योगी **खेचरत्व** पाकर **ब्रह्माण्ड में स्वच्छन्द विचरण** करता है।

(९) योगी **सर्वज्ञता** प्राप्त कर लेता है।

(१०) कामदेव के समान **रूपवान्** हो जाता है।

(११) पवन के समान **वेगवान्** हो जाता है।

(१२) **लोकत्रय में रमण** करता है।

(१३) **समस्त सिद्धियाँ** प्राप्त हो जाती हैं।

(१४) **अहंकार का** लय हो जाने पर देह में कठिनता नहीं रह जाती और इस स्थिति में—

'सर्वज्ञः सर्वकर्ता च स्वतंत्रो विश्वरूपवान्।
जीवन्मुक्तो भवेद् योगी स्वेच्छया भुवने भ्रमेत्।।'[1]

---

१. योगबीज (१७०)

*** सिद्धियाँ, उनके प्रकार तथा उनका महत्त्व ***

देवी ने शंकर से पूँछा कि निर्विकल्प एवं चिन्मय आत्मा में **सिद्धियों की उपयोगिता क्या है ?** वे वहाँ क्या करेंगी?

भगवान शंकर उत्तर देते हुए कहते हैं कि—हे पार्वती ! लोक में सिद्धियाँ दो प्रकार की होती हैं—(१) **'कल्पित सिद्धियाँ'** (२) **'अकल्पित सिद्धियाँ'।**

[क] **'कल्पित सिद्धियाँ'** = ये रसौषधि, क्रिया, काल, मन्त्र एवं क्षेत्रादि साधनों से उत्पन्न सिद्धियाँ हैं। (साधनोद्भूत सिद्धियाँ)

[ख] **'अकल्पित सिद्धियाँ'**—ये साधन के बिना स्वयं उत्पन्न सिद्धियाँ हैं। ये सिद्धिस्वरूपा, नित्य, पूर्ण प्रभावशालिनी, इच्छारूपिणी एवं योगोद्भूत सिद्धियाँ हैं। ये वासना-रहित योगियों में चिरकाल पर्यन्त रहती हैं। ये शुभ, अव्यय परमात्मपद में बिना कार्य के दीप्त रहने वाली सिद्धियाँ हैं और वासनाशून्य साधकों में ये चिरस्थायी रहती हैं—

'सिद्धा नित्या महावीर्या इच्छारूपाश्च योगजाः।
चिरकालात्प्रजायन्ते वासनारहितेषु च।
ताः शुभा या महायोगात्परमात्मपदेऽव्यये।
विना कार्यं सदा दीप्ता **योगसिद्धस्य लक्षणम्।।**'[१]

ये ही 'योगसिद्ध' के लक्षण हैं।

मोक्षमार्गी को तो ये स्वतः उसी प्रकार प्राप्त हैं, यथा काशी जाने वाले पथिक को मार्ग में अपने आप अनेक तीर्थों के दर्शन हो जाते हैं।

'यथा काशीं समुद्दिश्य गच्छद्भिः पथिकैः पथि।
नानातीर्थानि दृश्यन्ते तथा मोक्षे तु सिद्धयः।।'

जीवन्मुक्ति—सिद्धियों के द्वारा 'जीवन्मुक्त' की परीक्षा करनी चाहिए। सिद्धियों से हीन पुरुष तो सर्वथा बंधनग्रस्त है। जो शरीर से अजर-अमर है (योगाभ्यास द्वारा सिद्धदेह प्राप्त कर चुका है) वही **'जीवन्मुक्त'** है।

'सिद्धिभिः परिहीनं तु नरं बद्धं हि लक्षणम्।
अजरामरपिण्डो यो जीवन्मुक्तो स एव हि।।'[२]

चिन्मयीकरण एवं ब्राह्मी स्थिति—(जीवन्मुक्ति) नाथ योगी कहते हैं कि मुक्त

---

१. योगबीज (१७७-१७८)
२. योगबीज (१८३)

उसे कहते हैं जिसका शरीर, जल में घुले नमक की भाँति, ब्रह्म में लीन होकर ब्रह्मरूप एवं चिन्मय हो जाय—

'देहो ब्रह्मत्वमायाति जलतां सैन्धवं यथा।
अनन्यतां यदा याति तदा **मुक्तः** स उच्यते।।
चिन्मयानि शरीराणि इन्द्रियाणि तथैव च।।
अनन्यतां यदा यान्ति तदा मुक्तः स उच्यते।।'

योगी का शरीर ही नहीं प्रत्युत् उसकी इन्द्रियाँ भी जड़त्व का त्याग करके चिन्मय हो जाती हैं।

सर्वचिन्मयीकरण—शैव-शाक्त तांत्रिकों की दृष्टि यह थी कि संसार की प्रत्येक वस्तु तत्त्वतः चिन्मय हैं। जड़त्व उसकी ऊपरी खोल है। अतः विशुद्ध रूप में जड़नाम की कोई वस्तु संसार में है ही नहीं। इसी दृष्टि का साक्षात्कार करना—सार्वत्रिक चिन्मयता का दर्शन करना—जड़ पदार्थों को भी चिन्मय देखना शैव-शाक्त तांत्रिकों एवं नाथ योगियों की साधना का परम काम्य था, किन्तु शाङ्कर अद्वैतवाद में तो—

(१) केवल ब्रह्म एवं जीव ही चेतन हैं।

(२) जगत तो जड़ है।

(३) जड़ के साथ चेतन का सम्बंध ही 'ग्रंथि' है या बंधन की गाँठ है। उसे खोलना और दोनों को पृथक्-पृथक् करके (जड़ रूप में जगत को एवं चेतन रूप में जीव एवं ब्रह्म को देखना और अनुभव करना)—उनकी पृथकता का अनुभव करना ही शाङ्कर ज्ञानमार्ग की साधना है। **यह चिन्मयीकरण की दृष्टि** तो उनमें है ही नहीं। नाथ-मार्ग में यह है; इसीलिए कहा गया है कि—

(१) आत्मा, शरीर एवं इन्द्रियाँ सभी **चेतन** एवं **ब्रह्मरूप** हैं—

(क) 'देहो **ब्रह्मत्वमायाति** जलतां सैन्धवं यथा।
अनन्यतां यदा याति तदा **मुक्तः** स उच्यते।।

(ख) **चिन्मयानि शरीराणि इन्द्रियाणि** तथैव च।
अनन्यतां यदा यान्ति तदा मुक्तः स उच्यते।।

यदि ऐसा न हो तो कुत्ते, कुक्कुट एवं कीट आदि एवं योगियों तथा मुक्तों के शरीर में भेद ही क्या रह जाएगा?

'ये श्वकुक्कुट कीटाद्या मृतिं सम्प्राप्नुवन्ति ते।
तेषां किं पिण्डपातेन मुक्तिर्भवति सुन्दरि।।'

—योगबीज

ओंकारोपासना—योगिराज गोरक्षनाथ ओंकारोपासना को इतना अधिक महत्व देते हैं कि वे कहते हैं कि उसकी साधना के बिना कोई भी योग-सिद्धि प्राप्त ही नहीं हो सकती—

'ओंकार आछै बाबू मूल मंत्र धारा।
ओंकार व्यापीले सकल संसारा।
ओंकार नाभी हृदै देव गुरु सोई।
ओंकार साधे बिना सिधि न होई।।'[१]

नादोपासना—गोरक्षनाथ नादोपासना को परम निर्वाण का साधन मानते हैं। वे कहते हैं—

'नादैं लीन ब्रह्म, नादै लीना नरहरि,
नादै लीना उमापती जोग ल्यौ धरि धरि।
नाद ही तौ आछै बाबू सब कछू, निधानां।
नाद ही थैं पाइये परम निरवानां।।'[२]

मन्त्रोपासना—योगिराज गोरक्षनाथ अजपाजप, नादोपासना एवं ओंकारोपासना के अतिरिक्त भगवान शिव के 'पञ्चाक्षरी मन्त्र'—

'ॐ नम: शिवाय' के जप को भी उतना ही महत्व प्रदान करते हैं—'ॐ नमो सिवाई बाबू ओं नमो सिवाइ। अहनिसि बाइ मंत्र कौणैं रे उपाइ।।'' वे पूँछते हैं कि—''रात-दिन प्राण वायु के चलते रहने से निरन्तर 'सोऽहं हंसा' का जो **जप साँस** के द्वारा होता रहता है, उस **वायु-मंत्र** को किसने उत्पन्न किया?उस पवन-मंत्र का मूल (उत्पादक) ॐकार है। उसी से सारी सृष्टि की धारा छूटी है। ओंकार सारे संसार में व्याप्त है। ओंकार नाभि एवं हृदय अर्थात् स्वाधिष्ठान एवं अनाहत चक्र में निवास करता है। ॐकार ही देवता है। ओंकार ही गुरु है। ओंकार की साधना के बिना सिद्धि नहीं होती।।[३]

जप-साधना—गोरक्षनाथ मंत्रयोगी भी हैं। अत: वे मंत्र-जप को भी महत्व देते हैं। वे कहते हैं कि हे अवधूत ! ''जपमाला पहचानो और वह जप करो, जिससे ब्रह्मानुभूति स्वरूप यथार्थ की प्राप्ति हो।'' जिस अगम्य जप का जाप गोरख ने किया उसे कोई बिरला ही जानता है—

'अवधूजाप जपौ जपमाली। चीन्हौ, जाप जप्यां फल होई।'[४]

१. गोरखबानी (पद)
२. गोरखबानी (पद)
३. गोरखबानी
४. **अगमजाप जपीला गोरख**, चीन्हत बिरला कोई।''

गोरखनाथ कहते हैं कि—

'कवल बदन काया करि कंचन चेतनि करौ जपमाली॥'

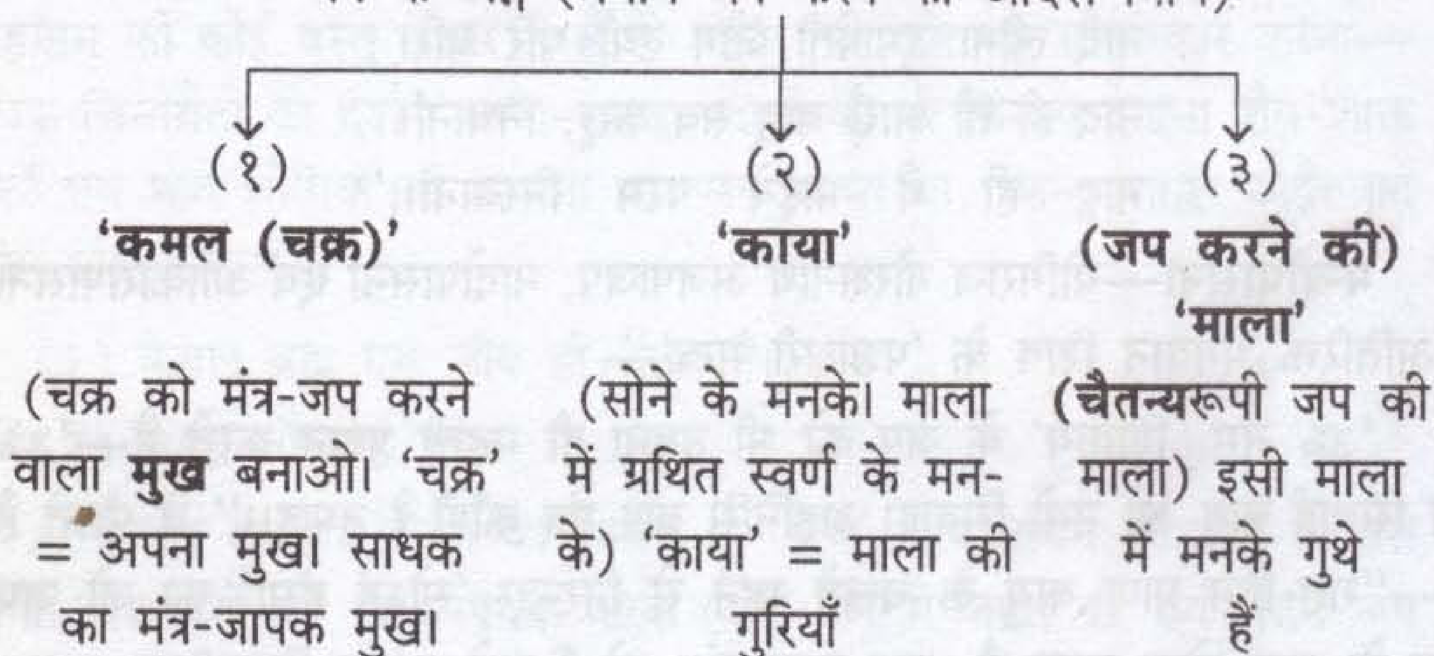
'एक अखीरी एकंकार जपीला, सुंनि अस्थूल दोइ वाणी॥'

प्यण्ड ब्रह्माण्ड सभि तुलि व्यापीले, एक अखिरी हम गुरमुखि जांणी।

गोरक्षनाथ कहते हैं कि शून्य (आत्मिक) एवं बाह्य दोनों वाणियों से एकाकार अद्वय परब्रह्म का जप ही **एकाक्षरी मंत्र** जप है। इसी एकाक्षरी मंत्र जप को मैंने गुरुमुख से सीखा है—

'एक अषीरी एकंकार जपीला। सुंनि अस्थूल दोइ बांणी॥'

जप का यथार्थ स्वरूप—



मंत्र-जप करने वाले साधक का **'मुख'** = चक्र	'शरीर' (मनका)	माला (चैतन्य)

'वर्णेषु नादोऽनुस्यूतः॥'—वरि० रहस्यम् ।

सारांश—

(१) **चैतन्य रूपी माला** द्वारा जप करो।

(२) इस माला में **शरीर को ही मनका** बनाओ।

(३) शरीरस्थ आध्याव्यौगिक विभिन्न चक्रों को ही जप करने वाला **'मुख'** बनाओ।

इस जप-क्रिया में दो तत्त्व प्रमुख हैं—

(१) **'चैतन्य'** (माला) (२) **'चक्र'** (जापक-मुख)।

रहस्यार्थ—'मंत्राश्चिन्मरीचयः॥'

'मन्त्र' चैतन्य की रश्मियाँ हैं।' अत: मंत्र-साधना में **चैतन्य-संचार अपरिहार्य** तत्त्व हैं।

यह **चैतन्य-संचार** बाह्यमुख से वर्ण-पुनरावृत्ति करने से संभव नहीं है। मंत्रोच्चारण **'चक्र'** से हो।

प्रत्येक **'चक्र'** (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, अनाहत, आज्ञा, सहस्त्रार आदि चक्र) के (मुख) द्वारा जब चैतन्य-स्फुरण हो तो उस चैतन्यस्फुरण को ही **मंत्र-जप** समझना चाहिए।

विशेष—अनाहतादि चक्रों से जो मंत्र निकलते रहते हैं वे नादात्मक मंत्र होते हैं। वे स्वयंभू, नित्य, शाश्वत एवं चैतन्यप्राण मंत्र होते हैं। इन मंत्रों से जगत की सृष्टि-स्थिति-संहार आदि सारी क्रियायें सम्पन्न होती हैं।

इस बात को और स्फुट किया जाय तो हमें यह कहना होगा कि—

(१) मुख एवं मुख के उच्चारण-स्थानों से उच्चरित 'मंत्र' यथार्थ मंत्र नहीं हैं प्रत्युत् वे मंत्र की नकल मात्र हैं यथा **प्रतिबिम्ब** 'बिम्ब' की नकल या छाया मात्र होता है, यथार्थ वस्तु का स्वरूप नहीं हुआ करता।

(२) वर्णों का जप काम्य नहीं है प्रत्युत् उसमें अन्तर्निहित **'नादशक्ति'** का स्फुरण काम्य है।

(३) **'नाद'** शिव एवं शक्ति का अन्र्तसम्बन्ध है।

(४) 'आसीच्छक्तिस्ततो **नादः,** नादाद् बिन्दु समुद्भवः।। 'नाद' पारमात्मिकी अचिन्त्य शक्ति की ध्वन्यात्मक बाह्याभिव्यक्ति है। अत: 'नाद' **'परमात्मा की शक्ति'** है।

(५) यही पारमात्मिकी शक्ति जब और स्थूल रूप धारण कर लेती है, तब वह वर्णात्मक मंत्र बन जाती है।

'मंत्र' के विभिन्न स्वरूप

(१)	(२)
नादात्मक मंत्र	(सुषुप्तनाद वाला) **वर्णात्मक मंत्र**
(अनाहत ध्वनि रूप)	(नादात्मक मंत्र ही काम्य है, क्योंकि वर्णात्मक मंत्र
(ओंकार निमज्जित)	(आत्मा चैतन्य-संचार का) साधन है।
*** साध्य मन्त्र ***	(साधन-मंत्र)

नादात्मक मंत्र ⟶ **वर्णात्मक मंत्र**

(सूक्ष्म मंत्र) (स्थूल मंत्र)

(आत्मिक चैतन्य से संस्पृष्ट मन्त्र) (चैतन्यशून्य, मृत वर्णों की समष्टि के रूप में अवस्थित 'मन्त्र')

वेदों की दृष्टि—

"चत्वारि वाक् परिमिता पदानि,
तानि विदुर्ब्राह्मणो ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेंगयन्ति।
चतुर्थो वाचो मनुष्याः वदन्ति।"

सारांश—

वाणी के भेद

(१) *** गुफ़ा में बन्द तीन वाणियाँ ***
(जिन्हें न मानव सुन सकता है और न बोल सकता है।)
(परा। पश्यन्ती। मध्यमा)

(२) **'चतुर्थ वाणी'**
(जिन्हें मनुष्य एवं सारे प्राणी बोलते हैं।) (इस वाणी में बोला गया मंत्र यथार्थ मंत्र नहीं है।)

वर्णों में नाद अन्तर्निहित रहते हैं—

'वर्णेषु नादोऽनुस्यूतः।'

—वरिवस्यारहस्यम्।

*** गुहागत वाणियाँ ***

(१) ये नादात्मक मंत्र हैं। इन वाणियों से उच्चरित मंत्र ही **यथार्थ मंत्र** हैं, क्योंकि इनसे उच्चरित ध्वनियों में चैतन्य का प्रवाह (चेतना का सञ्चार) भी रहता है।

इन मंत्रों को जपा नहीं जा सकता। **ये 'स्वयंभू मंत्र'** हैं। साधक द्वारा बराबर की जाने वाली आत्मिक साधना द्वारा जब उनमें चैतन्य का स्फुरण होता है, तब ये मंत्र अनाहत नाद के रूप में स्वयमेद स्फुरित होने लगते हैं।

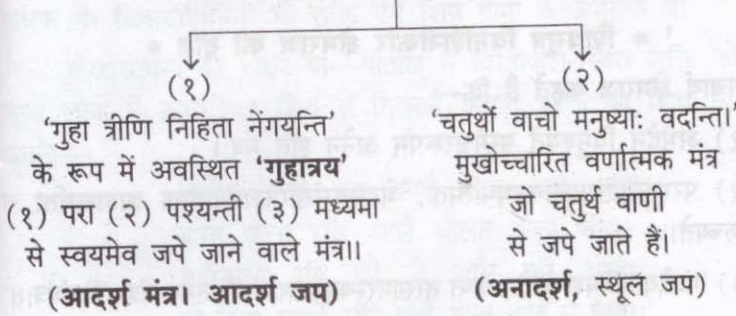
*** मुखोच्चारित वाणी ***

(२) ये अनादात्मक मंत्र हैं और मुख के उच्चारणावयवों से जपे जाते हैं।

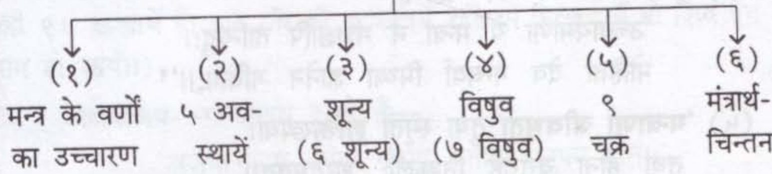
इनमें चैतन्य-प्रवाह नहीं होता।

ये स्वंयभू मंत्र नहीं हैं। ये सप्रयास जपे जाने वाले मंत्र हैं। 'सोऽहं जप' स्वयंभू जप है, किन्तु ये द्वितीय श्रेणी के मंत्र एवं मंत्र-जप स्वयंभू नहीं सायास मंत्र जप हैं।

* जप का यथार्थ स्वरूप एवं अयथार्थ स्वरूप *

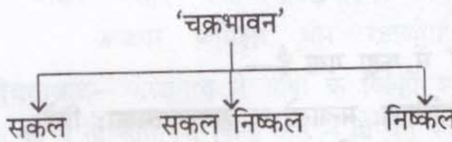


* योगी भास्कर राय प्रोक्त जप का स्वरूप *



'एवमवस्था शून्यविषवन्ति चक्राणि पञ्चषट् सप्त।
नव च मनोरर्थाश्च स्मरतोऽर्णोच्चरणं तु **जपः**।।'

—वरिवस्यारहस्यम् ।



* गोरक्षनाथ का मंत्र-विज्ञान एवं मंत्र-रहस्य *

गोरक्षनाथ ने 'नाथ-सम्प्रदाय' में जिस **मन्त्र-साधना** का प्रचार प्रसार किया **वे 'मन्त्र' वर्णों से संगठित मंत्र नहीं थे प्रत्युत् वे वर्णों में अनुस्यूत चैतन्य-शक्ति के मंत्र** थे, क्योंकि **'मंत्र' वर्णों का नहीं नाद-प्रवाह का होता है,** क्योंकि—

'वर्णेषु नादोऽनुस्यूतः।।'[१]

मंत्र का स्वरूप—मूलाधार से उठने वाला **'नाद'** वर्णों के मध्य से होता हुआ, फूल की माला में पिरोये, सूत्र की भाँति होता है—

---

१. वरिवस्यारहस्यम् (प्रथमोंश:)

'आधारोत्थितनादो गुण इव परिमाति वर्णमध्यगतः॥'

[1] * शिवसूत्र विमर्शिनीकार क्षेमराज की दृष्टि *

आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि—

(१) अभेदेन विमृश्यते परमेश्वररूपम् अनेन इति मंत्रः।

(२) परस्फुरत्तात्मकमननधर्मात्मता, भेदमयसंसारप्रशमनात्मक **त्राणधर्मता** च अस्य निरुच्यते॥

(३) 'मंत्रदेवताविमर्शपरत्वेन प्राप्त तत्सामरस्यम् आराधकचित्तमेव मंत्रः 'चित्तंमंत्रः॥'

—(शिव सूत्र २।१)

(४) मुखोच्चरित मंत्र 'मंत्र' नहीं हैं—

'उच्चार्यमाणा ये मन्त्रा न मंत्राश्चापि तान्विदुः।
मोहिता देव गन्धर्वा मिथ्या ज्ञानेन गर्विताः॥'[2]

(५) '**मन्त्राणां जीवभूता** तुया स्मृता **शक्ति**ख्यया।
तथा हीना वरारोहे निष्फलाः शरदभ्रवत्॥'

(६) पृथङ्मन्त्रः पृथङ्मन्त्री न सिद्धयति कदाचन।

—श्री कण्ठी संहिता।

(७) सहाराधक चित्तेन तेनैते **शिवधर्मिणः**।।

—स्पन्दकारिका

'तन्त्र सद्भाव' में कहा गया है—

(८) सर्वे वर्णात्मकाः मन्त्रास्ते च **शक्त्यात्मकाः**[3] प्रिये।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया **शिवात्मिका**।

(९) अस्मात्तु कारणद्देवि ! मया वीर्यं प्रगोपितम् ।
तेन गुप्तेन ते गुप्ताः शेषावर्णास्तु केवलाः।

(१०) **पशुभावै स्थिता** मन्त्राः केवलावर्णरूपिणः।
सौषुम्णेऽध्वन्युच्चरिताः पतित्वं प्राप्नुवन्ति ते॥

—हंसपारमेश्वर

---

१. वरिवस्यारहस्यम् (२२)
२. सर्वज्ञानोत्तर
३. श्री तन्त्र सद्भाव

शिवशक्तिसामरस्यवाद—योगी गोरक्षनाथ 'शक्ति' एवं 'शिव' दोनों के साधक थे। **त्रिकदार्शनिक** भी शक्ति एवं शिव दोनों के उपासक थे।

गोरक्षसाधना का लक्ष्य था—पाताल में विरहाकुल-स्थित शक्ति को उठाकर शून्य लोक में ऊर्ध्वस्थित शिव से मिलाना अर्थात् शक्ति का शिव से सामरस्य कराना—

'**सक्ति** रूपी रज आछै सिव रूपी व्यंद।।
बारह कला **रवि** आछै सोलह कला **चन्द**।
चारिकला रवि की जे ससि घरि आवै।
तौ **सिव सक्ती** संमि होवै अन्त कोई न पावै।।'

(मूलाधारस्थ अमृतशोषक **सूर्य की १२ कलायें** हैं और सहस्रारस्थ **चन्द्रमा की १६ कलायें** हैं। यदि रवि की ४ कलायें शशि में मिल जायँ तो शिव एवं शक्ति सम हो जायँ।।)

अजपाजप—गोरक्षनाथ कहते हैं—

'**अजपा जाप** जपंता गोरख अतीत अनुपम ज्ञानं।।'

गोरक्ष के जप का स्वरूप—

"जे जाप सकल सिष्टि उतपंना।
ते जाप श्री गोरखनाथ कथियां।
'मछिद्रं प्रसादैं जती गोरखबोल्य,
अजपा जपिला धीर रहाणी।।"

अनिर्वचनीयतावाद—गोरक्षनाथ ने भाषा के किन्हीं शब्दों की लक्ष्मणरेखा खींचकर परमतत्त्व को न तो सीमाबद्ध किया और न तो मन की प्राचीर में कैद करके उसे सीमित बनाया प्रत्युत उन्होंने कहा **'बसती न सुन्यं, सून्यं न बसती अगम अगोचर ऐसा। गगन सिखर महिं बालक बोलै ताका नाँव धरहुगे कैसा।'** वह 'बसती' (अस्ति) और शून्य (नास्ति) दोनों से अतीत है। वह भाव-अभाव दोनों से परे है। वह आकाश मण्डल (ब्रह्मरंध्र) में बोलने वाला बालक है।[1]

कुण्डलिनी योग—गोरक्षनाथ के हिन्दी के ग्रंथों में भी **'कुण्डलिनी योग'** का वर्णन मिलता है—

"पाताल की गंगा ब्रह्माण्ड चढ़ाइबा तहाँ विमल रस पीया।।"[2]

---

१. गोरखबानी (सबदी)
२. गोरखबानी (सबदी २)

गोरक्षनाथ जी ने **कुण्डलिनी का परिचय** इस प्रकार दिया है—

'नाभ अस्थान क मोरा सास नैं सुसरा, ब्रह्म अस्थान क मोरा बासा।
'इला प्यंगुला जोगण भेंटी, सुखमन मिल्या घर बासा।।'

कुण्डलिनी का श्वसुरालय मूलाधार एवं पीहर ब्रह्मरंध्र है।

कुण्डलिनी मूलाधार में नीचे रहती है, किन्तु आरोहण के समय उल्टा चलती है—

उलटी सकति चढ़ै ब्रह्मण्ड' नख सिख पवनां खेलै सरबंग।
उलटि चन्द्र राहू कूं ग्रहै। सिधसंङ्केत जती गोरख कहै।।२१७।।

(जब कुण्डलिनी शक्ति उलटकर ब्रह्माण्ड में पहुँच जाती है और नख से शिखा पर्यन्त सर्वाङ्ग में वायु व्याप्त हो जाती है (वायु भक्षण होने लगता है), तब उलटा सहस्रारस्थ चन्द्रमा ही राहु (आधारस्थ सूर्य) को ग्रस लेता है। इससे अमृतपान होने लगता है। यही **'सिद्ध संकेत'** है।)

अगोचरी मुद्रा एवं शांभवी मुद्रा पर बल—गोरक्षनाथ ध्यानाभ्यास के लिए दो मुद्राओं को प्राधान्य देते हैं—(१) 'अगोचरी मुद्रा' (२) 'शांभवी मुद्रा'।

'नासिका अग्रे भ्रूमण्डले अहनिस रहिबा थीरं।
माता गरभि जनम न आयबा, बहुरि न पीयबा खीरं।।२७५।।'

उन्मन योग—'समना' के बाद 'उन्मनी' की स्थिति है। यह योग-साधना में ऊर्ध्वारोहण की सर्वोच्च स्थिति है, जहाँ मन का अस्तित्व ही नहीं रह जाता। गोरक्ष-योग में इसका अत्यधिक महत्व है। गोरक्षनाथ कहते हैं—ज्ञान और गुरु हमारे दो तूम्बे हैं। चेतन इच्छा तम्बूरे की डाँडी हैं, तम्बूरे पर **उन्मना की** ताँत बज उठी, इससे सारी तृष्णाओं का अन्त हो गया—

'ज्ञान गुरु दोऊ तूँबा अम्हारे, मनसां चेतनि डांडी।
उनमुनी तांती बाजन लागी, यहि बिधि तृष्णा खांडी।।'

बाह्योन्मुख साधना की व्यर्थता—गोरक्षनाथ ने अपनी साधना में तीर्थ-व्रत, मूर्तिपूजन आदि बाह्यवर्ती साधनाओं का खण्डन किया है—

"पषांणची देवली पषांण चा देव।"
'पषांण पूजिला कैसे फटीला सनेह।'
"तीरथि तीरथि सनान करीला। बाहर धोये कैसे भीतरि भेदीला।।"
'नव नाड़ी बहोतरि कोठा। ए अष्टांग सब झूठा।'
"कूँची ताली सुषमन करै। उलटि जिभ्या ले तालू धरै।।"

(शरीर में इतनी नाड़ियाँ है, इतने कोष्ठ हैं—आदि अष्टांग योग का सारा ज्ञान

आभ्यंतर अनुभूति के बिना मिथ्या है। सुषुम्णा के द्वारा ताली पर कुंजी लगाओ (खोलो) ब्रह्मरंध्र का वेधन करो और जिह्वा को उलटकर तालमूल में रखते हुए चन्द्र-स्रवित सुधा का पान करो।)

गोरक्षनाथ ९ नाथ एवं ९४ सिद्धों की भी खबर लेते हुए कहते हैं—

'नौ नाथ नै चौरासी सिधा, आसणधारी हूवा।
जोग कौ तिन पार न पायौ, वनखंडां भ्रमि भ्रमि मूवा।।'

सर्वात्मवाद, 'पूर्णाहन्ता' एवं अपने विराट अहं का साक्षात्कार

काश्मीर के त्रिकदर्शन में दो दृष्टियाँ हैं—

(१) सर्वात्मवाद (२) 'पूर्णाहन्ता' : 'अहमस्मि' 'अहमिदम्' एवं 'इदमहम्' का विमर्श।

इसी उच्चतम आत्मोत्कर्ष के अभ्रंलिह सोपान पर समारूढ़ गोरक्षनाथ को अपने से पृथक् कोई अन्य—('अहं' के अतिरिक्त 'त्वं' एवं 'स:') दिखाई ही नहीं पड़ता। यह अद्वैत की पराकाष्ठा है। इस सोपान पर समारुढ़ गोरक्षनाथ कहते हैं—

कासौं झूझौं अवधू राइ, विषम न न दीसै कोई।
जासौं अब झूझौ रे आत्माराम सोई।
अपाण ही मछ कछ आपण ही जाल।
आपण हीं धीवर आपण हीं काल।।
आपण ही स्यंघ बाघ आपण ही गाइ।
आपण ही मारीला आपण ही खाइ।।

साधना में स्वानुभूति पर बल (अनुभूति-प्राधान्य)—

परमात्मा धार्मिक पुस्तकों से अवबोध्य नहीं है। वह अनुभूति-गम्य है—

'बेदे न शास्त्रे कतेबे न कुराणे पुस्तके न बंच्या जाई।
ते पद जानां बिरला जोगी और दुनी सब धंधै लाई।।'
'बेद कतेब न षाणीं बाणी। सब ढंकी तलि आंणी।।'

गोरक्षनाथ कहते हैं—

'कहणि सहेली रहणि दुहेली, कहणि रहणि बिन थोथी।
पढ्या गुंण्या सूवा बिलाई खाया, पंडित के हाथि रहि गई पोथी,
कहणि सहेली रहणि दुलेली, बिन खायां गुड़ मीठा।
खाई हींग कसूर बखाणैं, गोरख कहै सब झूठा।।'

जीवन्मृत्यु—योगिराज जीवन्मृत्यु का उपदेश देते हैं—

'मरौ वे जोगी मरौ, मरण है मीठा।
तिस मरणी मरौ। जिस मरणी गोरख मरि दीठा।।'

नाड़ी योग—योग में 'नाद' 'बिन्दु' 'शक्ति' आदि सभी की साधना, नाड़ियों का आश्रय लेकर ही की जाती है अतः योग-साधना में **'नाड़ी-योग'** का अत्यधिक महत्व है। गोरक्षनाथ कहते हैं—

'अवधू प्रथम नाड़ी **'नाद'** झमंकै, तेजंग नाड़ी पवनं।
सीतंग नाड़ी ब्यंदका बासा, कोई जोगी जानत गवनं।।'

(सुषुम्णा नाड़ी में **नाद,** पिंगला नाड़ी में **पवन** एवं इड़ा नाड़ी में शुक्र का निवास है। इनकी गति तो कोई विरला योगी ही जानता है।)

'अवधू **ईड़ा मारग** चंद्र भणीजै, **प्यंगुला मारग** भानं।
सुषमना मारग बांणी बोलिए, त्रिय मूल अस्थानं।'

(ये ही तीन मार्ग मूल स्थान ब्रह्मरंध्र तक ले जाते हैं।) (इड़ा मार्ग—पिंगला मार्ग—सुषुम्णा मार्ग)

हंस-जप की साधना—गोरक्षनाथ स्वयंभू श्वास-जप को विशेष महत्व देते हुए कहते हैं कि प्रत्येक प्राणी अहर्निश की कालावधि में २१ हजार ६०० श्वासों के माध्यम से इतनी ही बार सोऽहं-सोऽहं का जप करता रहता है—

'इकबीस सहंस षटसां आदू पवन पुरिष जपमाली।
इला प्यंगुला सुखमन नारी, अहनिसि बहै प्रनाली।।'

नाद-बिन्दु-साधना—गुरु गोरक्षनाथ कहते हैं कि—

(१) अनाहत नाद तो अहरन है।

(२) बिन्दु (शुक्र) हथौड़ा है।

(३) नाड़ियाँ—(हवा धौंकने की) धैंकनी है।

(४) मूलाधार आसन है।

(५) मूलाधार को दबाकर दृढ़ आसन से बैठकर लोहारी करो, इससे आवागमन मिट जाएगा—

'अहरणि नाद नैं व्यंद हथौड़ा, रवि ससि खालां पवनं
मूल चापि डिढ आसणि बैठा, तब मिटि गया आवागमनं।।'

षट्चक्र वेधन—तांत्रिक योग-साधना की विशिष्ट साधनाओं में 'षट्चक्र वेधन' भी एक है।

गोरक्षनाथ कहते हैं—

'उलटिया पवन षट्चक्र बेधिया, तातै लोहै सोखिया पांणी।
चंद सूर दोऊ निज धरि राख्या, ऐसा अलख बिनाणी।।'

(प्राण वायु को उलट कर षट्चक्रों का वेधन किया। उससे तप्त लौह (ब्रह्मरंध्र) ने पानी (रेतस) को सोख लिया। चन्द्रमा (इड़ा नाड़ी) और सूर्य (पिंगला नाड़ी) दोनों को अपने घर (सुषुम्णा) में रक्खा। जो योगी ऐसा करे वह अलक्ष्य और विज्ञानी (ब्रह्म) हो जाता है।

सिद्धान्त-ज्ञान की अपेक्षा साधना पर बल—

गोरक्षनाथ 'रहणी' (व्यवहार। आचरण। 'करनीं साधना) पर विशेष बल देते हैं—

'कथणीं कथै सो **सिख** बोलिए, वेद पढ़ै सो **नाती।**
रहणी रहै सो **गुरु** हमारा, हम रहता का साथी।।
'रहता हमारै **गुरु** बोलिए, हम रहता का **चेला।**'

ब्रह्मचर्य-साधना—गोरक्षनाथ की साधना ब्रह्मचर्याश्रित थी। 'योग' बिन्दु-साधना (बिन्दुरक्षण, बिन्दु-शोधन, बिन्दु का आरोहण) के बिना संभव नहीं है इसीलिए गुरु गोरक्षनाथ कहते हैं कि—

'रस कुस बहि गईला, रहि गई छोई।
भणत मछिन्द्रनाथ पूता, **जोग** न होई।'
'कांमनी बहतां जोग न होई, भग मुख परलै केता।'
'भग राकसि लो, भग राकसि लो, विण दंतां जग खाया लो।
ज्ञानी हुता सु ज्ञानमुख रहिया, जीव लोक आपै आप गँवाया लो।।
जिन जननी संसार दिखाया ताकौं ले सूते खोले'
'ब्रह्म झरंता जे नर राखै सो बोलौ **अवधूता।।**'
आपण ही टाटीं फ़ड़िका, आपण ही बंध।
आपण ही मृतग, आपण ही कंध।।
न्हाइबे कौ तीरथ न पूजिबे कौं देव।
भणंत गोरखनाथ अलख अभेव।।

सामरस्यवाद—तांत्रिक शैवशाक्त मत, त्रिपुरा-सम्प्रदाय एवं त्रिक दर्शन में, तांत्रिकों ने जो **'सामरस्यवाद'** सर्वोच्च साधना, सर्वोच्च सिद्धि एवं सर्वोच्च उपलब्धि के रूप प्रतिष्ठित किया है, वही गोरक्षनाथ में भी प्रतिष्ठापित है।

गोरक्षनाथ 'अमरौघ प्रबोध' में कहते हैं—

'निर्याते चित्तरागे व्रजति खररुचौ मेरुमार्ग समन्तात्।
दुद्रझे वह्निभावे स्त्रवति शशधरे पूरयत्याशुकाये।
उद्यत्यानन्दवृन्दे त्यजति तव ममेत्यादिमोहान्धकारे
प्रोद्भिन्ने **ब्रह्मरंध्रे जयति शिव शिवा सङ्गमः** कोप्यपूर्वः॥'[१]

* शरीर पर पञ्चतत्त्वों का प्रभाव *

योगिराज गोरक्षनाथ कहते हैं कि—चूँकि शरीर पञ्चमहाभूतों से निर्मित है। अतः उनकी अल्पता एवं अधिकता आदि स्थितियों में शरीर प्रभावित हुए बिना नहीं रहता—

(१) **तत्पृथिवीमण्डले क्षीणे** वलिरायाति देहिनाम् ।
(२) **तोय-क्षीणे** तृणानीव चिकुराः पाण्डुराः क्रमात् ।
(३) **तेजः क्षीणे** क्षुधाकान्तिर्नश्यति **मारुते** श्लथे।
(४) वेपथुश्च भवेन्नित्यं
(५) **नाभसे** नैव जीवति।[१]
(६) इत्थं भूतक्षयान्मृत्यु जींवितं भूतधारणात् ।
(७) पञ्चेद्वर्षशते लक्ष्येन्नान्यथा मरणं भवेत् ।

प्राणायाम + महामुद्रा आदि अभ्यास प्रतिदिन दिन के चारों प्रहरों में ८-८ बार करने पर प्राण मध्यम पथ (सुषुम्णा) में प्रविष्ट हो जाता है।

प्राण का सुषुम्णा में प्रवेश कैसे हो ?

गोरक्षनाथ कहते हैं—

'निस्तरङ्गे स्थिरे चित्ते वायुर्भवति मध्यगः।
रविरुर्ध्वपदं याति बिन्दुना याति वश्यताम्।'

* योग साधना में साफल्य-प्राप्ति के प्रति गोरक्ष-दृष्टि *

गोरक्षनाथ कहते हैं—

सर्वचिन्तां परित्यज्य दिनमेकं परीक्ष्यताम्।
यदित्प्रत्ययो नास्ति तदा मे तु मृषा वचः॥

—अमरौघ प्रबोध

---

१. अमरौघ प्रबोध (१६)

योग-साधना में आने वाली विशिष्ट विलक्षणताएँ—

(योग-साधना में सफलता के चिह्न)

गोरक्षनाथ कहते हैं कि योग-साधना के समय अनेक विशिष्ट लक्षण प्रकट होते हैं यथा—

'रुमो (धूमो) **मरीचि खद्योतः दीपज्वालेन्दु भास्कराः।**
अमीकला महाबिम्बं विश्व**बिम्बं** प्रकाशते।'

—अमरौघ प्रबोध

दीपज्वालेन्दुखद्योत विद्युन्नक्षत्र भास्कराः।
दृश्यन्ते सूक्ष्मरूपेण सदा युक्तस्य योगिनः॥[१]

[श्वेताश्वतरोपनिषद् (२।११) 'मण्डलब्राह्मणोपनिषद् (५।१।९-१०) में भी योगिसिद्धि के अनेक चिह्न कहे गए हैं।]

गोरक्ष योग-साधना का चरम लक्ष्य—

(१) चित्त **अहङ्कार के विलय** के साथ **'मैं' और 'मेरा' की पृथकतासञ्जात द्वैतभावना से निर्मुक्त** हो जाता है।

(२) और यह (चित्त) द्वैत के संकल्प-विकल्प से परे हो जाता है। तब वह **समत्वभाव** में स्थित होकर **अद्वैतानुभूति** की स्थिति में **चिति तत्त्व का ध्यान** करने में समर्थ हो जाता है। **चैतन्यसम्पन्नता** ही जीवन है और चैतन्यराहित्य ही मृत्यु है।

(३) **चित्त एवं अचित्त का भेद** समाप्त होने पर **दोनों एक हो जाते** हैं। परिणामस्वरूप सामरस्य से अद्वैतावस्था की परानन्दमयी अनुभूति होती है, जिसे **जीवन्मुक्ति** कहते हैं। यह जीवन एवं मृत्यु दोनों से अतीत एवं अनिर्वाच्य स्थिति है।

(विश्वसत्ता का ब्रह्मसत्ता में लय अद्वय ब्रह्मानुभूति के उदय की ही अवस्था है)

(१) चित्त की **द्वैतभाव से मुक्ति।**

(२) **'अहं'-'मम' की भावना का विनाश**

(३) चित्त और अचित्त में **समत्वभाव**

(४) **जीवन्मुक्ति** की प्राप्ति

(५) **जीवन-मृत्यु** से परे की अवस्था का उदय

(६) राजयोग या अमरौघ की प्राप्ति

---

१. योगशिखोपनिषद (२।१९)

(७) समस्त तत्त्वों पर विजय, तत्त्वों का वशङ्करत्व

(८) विधि-निषेध से परे की स्थिति

—ये समस्त लक्षण, जिस सिद्धावस्था में अन्तर्निहित हों वह **अमरौघप्रबोधकार गोरक्ष** की योग-साधना की चरम उपलब्धि है। गोरक्षनाथ कहते हैं कि—

(१) **समीभावे** समुत्पन्ने **चित्ते द्वैतविवर्जिते।**

(२) **अहं ममेत्यपीत्युक्त्वा सोऽमरौघं** विचिन्तयेत् ।

(३) चित्तं **जीवित**मित्याहु रचितं **मरणं** विदुः।

(४) **चित्ताचित्तेसमीभूते जीवन्मुक्ति**रिहोच्यते।

(५) **न जीवति** ततः कोऽपि न **च कोऽपि मरिष्यति।**

(६) राजयोगपदं प्राप्य सर्वसत्ववशङ्करम् ॥

—अमरौघ प्रबोध

गोरक्षनाथोक्त योगसाधना में आचारविधान—

योगिराज गोरक्षनाथ का योग **'राजयोग' को आदर्श मानकर प्रवृत्त हुआ है** और **'राजयोग' शरीर का नहीं प्रत्युत् मन की साधना का योग है।** अतः गोरक्षनाथ ने स्वप्रवर्तित योग-साधना के लिए एक आचार-संहिता भी निश्चित की है और यह माना है कि उसके बिना कोई भी योग-साधना सिद्ध नहीं हो सकती।

योग-साधना में आचार विषयक नियम—पुस्तक के कलेवर की वृद्धि रोकने हेतु, बिना व्याख्या के ही गोरक्षानुशासन को उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत किया जा रहा है, जो इस प्रकार है—

(१) **अदेखि देखिवा देखि बिचारि बा अदिसिटि राखिया चीया**

(२) **पाताल की गंगा ब्रह्मण्डं चढ़ाइबा।** तहाँ **विमल जल पीया।**

(३) **हसिबा खेलिबा रहिबा** रंग **काम क्रोध न करिबा संग।**
हसिबा खेलिबा गाइबा गीत। दिढ़ करि राखि आपनां चीत।

(४) हसिबा खेलिबा धरिबा **ध्यान** अहनिसि कथिबा **ब्रह्मगियान।**

(५) हसै खेलै न **करै मन-भंग,** ते निहचल सदा नाथ कै संग।

(६) कोई बादी कोई बिबादी, जोगी कौ **बाद न करना।**

(७) अठसठि तीरथ समंदि समावैं, **यू जोगी कौं गुरुमुखि जरनां।**

(८) उतपति **हिन्दू** जरणां **जोगी** अकलि परि **मुसलमानी।**

(९) **अहनिसि मन लै उनमन** रहै, गम की छाँड़ि **अगम की कहै।**

(१०) **छाँड़ै आसा रहै निरास,** कहै ब्रह्मा हूँ ताका दास।

(११) **अरधै जाता उरधै धरै कांम दगध** जे जोगी करै।

(१२) **तजै अल्यंगन काटै माया,** ताका बिसनु परवालै पाया।

(१३) **धन जोबन की** करै न आस, चित्त न राखै कामनि पास।

(१४) **नाद बिंद जाकै घटि जरै।** ताकी सेवा पारबती करै।

(१५) **अजपा जपै सुंनि मन धरै। पाँचौं इंद्री निग्रह** करै।

(१६) **ब्रह्म अगनि में होमै काया।** तास महादेंव बंदै पाया।

(१७) फुरतै भोजन अलप अहारी। नाथ कहै सो काया हमारी।

(१८) (सबदहिं ताला सबदहिं कूँची, सबदहिं सबद जगाया।।
सबदहिं सबद सू परचा हूआ, सबदहिं सबद समाया।)

(१९) पंथ बिन चलिबा, अगनि बिन जलिबा, अनिल तृषा जहटिया।

(२०) (ससंवेद श्री गोरख कहिया बूझिल्यौ पंडित पढ़िया।)

(२१) गगन मँडल मैं ऊँधा कूबा तहाँ अमृत का बासा।
सगुरा होई सु भरि भरि **पीवै** निगुरा जाई पियासा

—गोरखबानी

(२२) **मरो वे जोगी मरौ,** मरण है मीठा
तिस मरणी मरौ जिस मरणीं गोरख मरि दीठा।

(२३) **हबकि न बोलिबा,** ठबकि न चालिबा धीरै- धारिबा पावं।
गरब न करिबा सहजै रहिबा, भणत गोरख रावं।

(२४) नाथ कहै तुम सुनहु रे अवधू, **दिढ करि राखहु चीया।**
काम क्रोध अहंकार निबारौ, तौ सबै दिसंतर कीया।।

(२५) **धाये न खाइबा, भूखे न मरिबा,** अहनिसि लेबा **ब्रह्म अगिनि** का भेवं।
हठ न करिबा, पड़्या न रहिबा, यूं बोल्या गोरख देवं।

(२६) **थोड़ा बोलै, थोड़ा खाइ** तिस घटि **पवनां रहै समाइ।**
गगन मँडल में **अनहद बाजै,** प्यंड पड़ै तो सतगुर लाजै।।

(२७) अवधू **अहार तोड़ौ निद्रा मोड़ौ,** कबहुं न होइगा रोगी।
छठे छ मासै **काया पलटिबा** ज्यूं को को बिरला बिजोगी।।

(२८) देव कला ते संजम रहिबा, भूत कला **अहारं।**
मन पवनां लै उनमनि धरिबा, ते जोगी तत सारं।।

(२९) अवधू **निद्रा कै घरि काल,** जंलालं **अहार** कै घरि चोरं।
मैथुन कै घरि जुरा गरासै, अरध-उरध लै जोरं।।

(३०) **अतिअहार** यंद्रीबल करै **नासै ज्ञान** मैथुन चित धरै।
व्यापै न्यंद्रा झंपै काल ताके हिरदै सदा जंजालं।

(३१) **घटि घटि गोरख कहै कहाणीं। काचै भांडै रहे न पांणी।।**

(३२) घटि घटि गोरख **घटि घटि मींन।** आपा परचै गुर मुख चीन्ह।

(३३) **सोहं हंसा सुमिरै सबद।** तिहिं परमारथ अनंत सिध।

(३४) पाखंडी सो **काया पखालै।** उलटि पवन अगनि प्रजालै।

(३५) **व्यंद न देई** सुपनैं जाण। सो पाखंडी कहिए तत्त समान।

(३६) मनवा जोगी गाया मढी। पंचतत्त ले कंथा गढी।।

(३७) **खिमा खड़ासण** ग्यान अधारी। **सुमति पावड़ी डंड बिचारी।**

(३८) **चालत चंदवा खिसि खिसि पड़ै।** बैठा ब्रह्म अगनि पर जलै।।

(३९) यहु **मन सकती, यहु मन सीव।** यहु मन पाँच तत्त का जीव।

(४०) यहु **मन ले जै उनमन रहै।** तौ तीनि लोक की बातां कहै।

(४१) अवधू **नव घाटी** रोकि लै वाट। **बाई वणिजै चौंसठि हाट।।**

(४२) **काया पलटै** अबिचल बिध। छाया बिवरजित निपजै सिध।

(४३) अवधू दम कौं **गहिबा उनमनि** रहिबा, ज्यूं बाजवा अनहद तूरं।
गगन मंडल मैं तेज चमंकै, चंद नहीं तहां सूरं।

(४४) **सास उसास बाइ कौं मखिवा, रोकि लेहु नव द्वारं।**
छठैं छमासि **काया पलटिबा।** तब **उनमैंनी जोग** अपारं।।

(४५) अवधू **सहंस्र नाड़ी पवन चलैगा। कोटि झमंकै नादं।**

—गोरखबानी

(४६) अमावस कै घरि झिलिमिलि चंदा, पूनिम कै धरि सूर।

(४७) **नाद कै धरि ब्यंद गरजै,** बाजंत **अनहद** तूरं।

(४८) **उलटंत नादं पलटंत ब्यंद,** बाई कै घरि चीन्हसि ज्यंद।।

(४९) सुंनि मंडल तहाँ **नीझर झरिया,** चंद सुरजि ले **उनमुनि धरिया।**

(५०) **अपणीं करणीं** उतरिवा पारं।

(५१) **सुसबदे हीरा** बेधिलै अवधू, जिभ्या करि टकसालं।

(५२) **मन मैं रहिणां भेद न कहिणां,** बोलिवा अमृत बांणीं।
आगिला अगनी होई बा अवधू, तौ आपस होइ बा पांणी।।

(५३) **उनमनि रहिबा** भेद न कहिबा, पीयबा नींझर पांणीं।
लंका छाडि पलंका जाइबा, तब गुरमुख लेवा बाणीं।

* मन:स्थैर्य की विधि *

(५४) उत्तराखण्ड जाइबा सुंनिफल खाइबा
ब्रह्म अगनि पहरिबा चीरं।
नीझर झरणौ **अमृत** पीया।
यूं मन हूवा थीरं।।

(५५) हिन्दू ध्यावै देहुरा, मुसलमान मसीत्।
जोगी ध्यावै परमपद, जहाँ देहुरा न मसीत।।

(५६) गोरख कहै सुणहु रे अवधू, **जग मैं ऐसैं रहणां।**
आंखै देखिबा कांनै सुणिबा **मुख थै कछू न कहणां।।**

(५७) नाथ कहै तुम **आपा राखौ, हठ करि बाद न करणां।**
*** यहु जुग है काँटे की बाढ़ी। देखि देखि पग धरणां।।**

(५८) **दृष्टि अग्रे दृष्टि लुकाइबा,** सुरति लुकाइबा कांनं।
नासिका अग्रे पवन लुकाइबा, तब रहि गया पद निरबांन।

(५९) अवधू **मनसा हमारी गेंद बोलिये, सुरति** बोलिए चौगानं
अनहद ले खेलिबा लागा, तब गगन भया मैदानं।।

(६०) **आसण बैसिबा पवन निरोधिबा** थांन मांन सब धंधा।
वदंत गोरखनाथ **आतमां विचारंत,** ज्यूं जल दीसै चंदा।।

(६१) **अपणी आत्मां** आप बिचारी, तब सोवौ पान पसारी।

(६२) **असार न्यंद्रा बैरी** काल, कैसें कर राखिबा गुरु का भंडार।
असार तोड़ो निंद्रा मोड़ौ, **सिव सकती ले करि जोड़ौं।**

(६३) तब जांनिबा **अनाहद** का बंध, ना पड़ै त्रिभुवन **नहीं पड़ै कंध।**

(६४) **सुणौं हो देवल** तजौ जंजाल, अमिय पीवत **तब होइबा** बाल
ब्रह्म अगनि सींचत मूलं, फूल्या फूल कली फिरि फूलं।

(६५) **उलट्या पवनां गगन समोइ,** तब **बाल रूपं पर तषि** होइ

(६६) **बारा कला सोखै, सोला** कला पोषै, **चारि कला साधै अनंत कला जीवै।**

(६७) असाध साधंत, **गगन गाजंत, उनमुनी** लागंत ताली।
उलटंत, पवनं, पलटंत बांणीं, अपीव पीवत जे **ब्रह्म ग्यानी।।**

(६८) **अलेख लेखंत, अदेख देखंत,** अरस परस ते दरस जांणीं।
सुंनि गरजंत, बाजंत नाद, अलेख लेखंत, ते निज प्रवाणी।

(६९) निहचल धीर बैसिबा, पवन निरोधिबा, कदे न होइगा रोगी।
बरस दिन मैं तीनि बर काया पलटिबा, नाग वंग बनासपही जोगी।

(७०) षोडस नाड़ी चंद्र प्रकास्या, द्वादस नाड़ी मानं
सहंस्र नाड़ी प्राण का मेला, जहाँ असंख कला **सिव थानं**।।

(७१) (अवधू काया हमारी नालि बोलिए, दारू बोलिए पवनं।
अगनि पलीता **अनहद गरजै** व्यंद गोला उड़ि गगनं।।

(**शरीर** = बन्दूक, **पवन** = बारुद। **अनहद** = आग। **बिन्दु** = गोला। गोला ब्रह्मरंध्र में चला जाता है—ऊर्ध्वरितसत्वाप्ति।)

(७२) सन्यासी कोई करै सर्वनास, **गगन मँडल महि माडै आस।**
अनहद सूं मन **उनमन रहै**, सो सन्यासी अगम को कहै।

(७३) **उलटिया पवन, षट्चक्र बेधिया**, तातै **सोखिया पाणी।**
चंद सुर दोऊ निज घरि राख्या, ऐसा अलख बिनांणी।

(७४) **अनहद सबद** बाजता रहै, **सिध संकेत** श्री गोरख कहै।

(७५) परमावस्था का स्वरूप क्या है?
* निरति न सुरति जोगं न भोगं, जुरा मरण नहीं तहां रोगं।
गोरख बोलै एकंकार, नहि तहँ वाचा ओअंकार।)

(इसीलिए **कबीर ने कहा था**—'जाप मेरे अजपा मेरे, अनहद हू मरि जाय 'शब्दब्रह्मणि निष्णात: परब्रह्माधिगच्छति।')—(उपनिषद्)

'शब्दब्रह्म' (अनाहत नाद = ३ॐ) के बाद है 'परपब्रह्म'। 'नाद' के बाद **'नादान्त'** भी तो है।) यह एकाकारावस्था है जो कि 'कैवल्य' कही जाती है।

(७६) **ब्रह्माण्ड फूटिबा**, नगर सब लूटिबा, कोई न जांणवा भेवं।

(७७) **अहंकार तूटिबा, निराकार कूटिबा**, सोखीला गंग जमन का पानी
चंद सुरज दोउ सनमुखि राखिबा, कहो ही अवधूत हां की सहिनाणी।

(७८) **(मीन-मार्ग) मींमा के मारग** रोपी लै भाणं''

(७९) **कहणि** सुहेलीं, रहणि दुेली, **कहणि रहणि बिन थोथी।**
पढ्या गुंण्या सूवा बिलाई खाया, **पंडित के हाथ रह गई पोथी।**

(८०) जल कै संजनि **अटल अकास**, अन कै संजमि **जोति प्रकास**
पवनां संजनि लागै बंद **व्यंद कै संजमि थिर है कंद**

(८१) **सबद बिन्दौ** रे अवधू **सबद बिन्दौ** थान मान सब धंधा।
आतमां मधे प्रमातमा दीसै, ज्यौ जल मधे चंदा।
(८२) **आसण दिठ अहार दिढ** जे **न्यंद्रा दिढ** होई।
गोरख कहै सुणौं रे पूता **मरै न बूढा होई।।**
(८३) तूटी डोरी **रसकस** बहै। **उनमनि** लागा अस्थिर है।
(८४) **उनमनि** लागा होइ अनंद। तूटी डोरीं **बिनसै कंद।**
(८५) **सवद बिन्दौ अवधू सबद बिन्दौ** सबदे सीझंति काया।
(८६) खरतर **पवनां रहै निरंतरि। महारस सीझै** काया उभि अंतरि।
(८७) गोरख कहै अम्हे चंचल ग्रहिया। **सिव सक्ती** ले **निज** धरि रहिया।
(८८) नव नाड़ी बहोतरि कोठा ए **अष्टांग सब झूठा।**
(८९) **उनमन जोगी** दसवैं द्वार। नाद व्यंदले धूंधूंकार।
(९०) दसवें द्वारे देइ कपाट। गोरख खोजी औरै बाट।।
(९१) **बजरी** करंता **अमरी** राखै **अमरि** करंता बाई।
भोग 'करंता जे **ब्यंद राखै** गोरख का गुरभाई।।
(९२) भगमुखि ब्यंद अगनि मुखि पारा।
जो राखै सो गुरु हमारा।
(९३) **अगनि बिहूंणां** बंधन लागै, **ढलकि जाइ रस काचा।**
(९४) **पवन** हीं जोग **पवन** हीं भोग, **पवन** हीं हरै छतीस रोग
या **पवन** कोई जांणै भेव, सो आपै करता आपै देव।।
(९५) **ब्यंद ही जोग,** ब्यंद ही भोग, ब्यंद हीं हरै चौसठि रोग।।
या **बिंद** का कोई जाणै भेव, सो आपैं करता आपैं देव।।
(९६) **काछ का जती मुख का सती।**
(९७) 'अवधू **मन चंगा तौ कठौती ही गंगा।।**
(९८) (ब्रह्माग्नि—वायु, जीवन, शरीर एवं बिन्दु की परिपक्वता।
तौ देवी पाकी **बाई,** पाका **जिंद,** पाकी **काया** पाका **बिंद।**
ब्रह्म अगनि **अखण्डित बलै,** पाका अगनीं **नीर** परजलै।।
(९९) (आसन, पवन एवं ध्यान की निश्चलता—
अग्नि, बिन्दु एवं वायु की रक्षा।
निस्चल **आसन पवनां ध्यानं अगनीं ब्यंद** न जाई।।
(१००) पंथि चले चलि पवनां तूटै **नाद बिंद** अरु **बाई**
घट ही भीतरि अठ सठि तीरथ कहाँ भ्रमै रे भाई।
(१०१) आकास तत **सदासिव** जाण। तसि अभिअंतरि **पद निरबांण।**

(१०२) **दाबि न मारिबा, खाली राखिबा, जानिबा अगनि का भेवं।**
(१०३) **नाद बिंद बजाइले** दोऊ पूरिले **अनहद बाजा।**
(१०४) **अनहद सबद गगन मैं गाजै।** प्यंड पड़ै तो सतगुर लाजै।
(१०५) **गगन मंडल,** मै सुंनि द्वार। बिजली चंमकै घोर अंधार।
(१०६) सूर माहिं चंद,चंद माहि सूर चपंपि तीन तेहुड़ा बाजल तूर।
(१०७) **ज्ञान सरीखा गुरु न मिलिया।** चित्त सरीखा **चेला।**
मन सरीखां मेलू न मिलिया तीथैं गोरख फिरै अकेला।।

—गोरखबानी

गोरक्ष की मनः साधना—'अमनस्क योग'

मनस्तत्त्व एवं 'उन्मन योग'—योगिराज गोरक्षनाथ कहते हैं—

'उनमनि रहिबा भेद न, कहिबा'

क्योंकि—'**मन** एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयो:।।' (उप०)

अत:—

'जिनि **मन** ग्रासे देव दाण, सो **मन मारिले गहि ग्यांन बाँण।।'**
"**कथंत गोरख मुकति लै** मानवा मारि लै रै मन द्रोही।।"
'यह **मन** सकती यहु **मन** सीव। यह **मन** पाँच तत्त का जीव।
यहु **मन** ले जे **उनमुन रहै।** तौ तीनि लोक की बातां कहै।।'

× × × × × × × × × ×

'**उनमन जोगी** दसवैं द्वार। नांद ब्यंद ले धूंधूंकार।।'
'अहनिसि **मन** लै **उनमन** रहै, गम की छांड़ि अगम की कहै।'
'**मन** पवना लै **उनमुनि** धरिबा, ते जोगी तत सारं।।'
मनवां जोगी गाया मढी, पंच तत्त ले कंथा गढी।'
'अवधू दंम कौ गहिबा **उनमनि** रहिबा, ज्यूं बाजबा अनदह तूरं।'
'सास उसार बाइ कौ भखिबा, रोकि लेहु नव द्वारं।'
"छठै छमासि काया पलटिबा, तब **उनमैंनी जोग** अपारं।।"
"सुंनि मंडल तहाँ नीझर झरिया, चंद सुरजि ले **उनमुनि** धरिया।"
'**उनमनि** रहिबा भेद न कहिबा पीयबा नींझर पांणीं।'
'उत्तर खण्ड जाइबा सुंनिफल खाइबा ब्रह्म अगनि पहरिबा चीरं।
'नीझर झरणैं अंमृत पीया यूं **मन हूवा थीरं।।'**
'असाध साधंत गगन गाजंत, **उनमनी** लागंत ताली।
उलटंत पवनं पलटंत बाणी, अपीव पीवत जे ब्रह्मज्ञानी।।'

[1]'अनह सूं **मन उनमन रहै**, सो सन्यासी अगम की कहै।'

'उन्मनी कल्पलतिका'—(स्वात्माराम मुनीन्द्र की दृष्टि)—

(क) 'तत्त्वं बीज हठः क्षेत्र मौदासीन्यं जलं त्रिभिः।
उन्मनीकल्पलतिका सद्य एव प्रवर्तते।'
—हठयोग प्रदीपिका (४।१०४)

ब्रह्मानन्द कहते हैं—

(ख) 'उन्मन्य**सम्प्रज्ञातावस्था सैव** कल्पलतिका'—ज्योत्स्ना

"इयं च ब्रह्मरन्ध्रसंस्थाना। इयमेव **मनोन्मनी**।—भास्कर

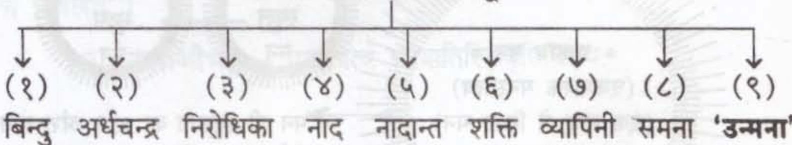
[2]मनसो यथावस्थितरूपस्यैवाभ्यासविशेषेणैतावत्पर्यन्तवृत्युद्गमः सुसाध इत्यतः **समनेत्युच्यते**। एतदुपरि तु रूपान्तरं प्राप्तस्यैव मनसो धृतिविषयतेत्यत **उष्क्रान्त-मनस्कत्वादुन्मना**।।" —भास्करराय।

भास्करराय कहते हैं 'समना' से ऊपर **'उन्मना'** है—

(क) **'समना'**—'ऊर्ध्वाधोबिन्दुद्वयसंयुतरेखाकृतिः **'समना'**।

(ख) **'उन्मना'**—सैवोर्ध्वबिन्दुहीनोन्मना तदूर्ध्वं **महाबिन्दुः**।

जो **'समना'** से ऊर्ध्व में किन्तु **'महाबिन्दु'** से नीचे स्थित है, वही **प्रणव या मन का द्वादशावयव** है और वही **'उन्मना'** है। आज्ञा चक्र के ऊपर **'बिन्दु'** से **'उन्मना'** पर्यन्त ९ भूमियाँ हैं।



विद्यामयी **'उन्मना शक्ति'** की व्याप्ति से जब अवच्छेदक की निवृत्ति हो जाती है, तब अनवच्छिन्न, चिन्मय एवं आनन्दमय **'शिवभाव'** का उदय होता है।

साधक साधना में ऊर्ध्वारोहण करते हुए—**'अबुध'** से **'बुध्यमान'** **'बुध'**

---

१. गोरखबानी
२. वरिवस्यारहस्यम् —प्रकाश

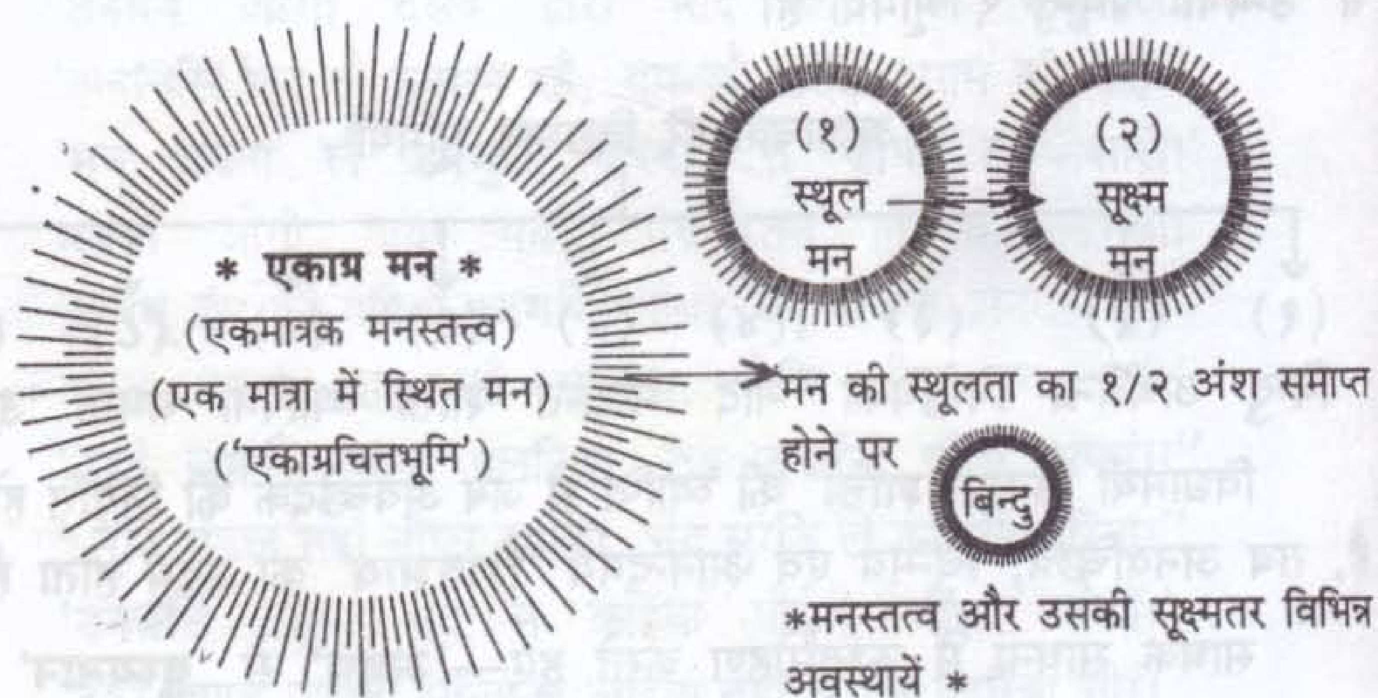
'प्रबुद्ध' एवं **'सुप्रबुद्ध'** की अवस्था में पहुँचता है। इस सुप्रबुद्धावस्था में पहुँचने पर ('समना पर्यन्त समस्त अध्वा को अतिक्रान्त करने पर) **मनःसंस्कार का भी क्षय** हो जाता है। और तब **'उन्मनीभाव'** की प्राप्ति होती है। यह **'ब्रह्मरंध्रभेदनो'परान्त की अवस्था** है। यह पराद्वयमयी **परम शुद्धावस्था** है, जिससे **'जीवन्मुक्ति'** की सिद्धि होती है। यहाँ **कालकलायें, प्राणापानसंञ्चार; ३६ तत्त्व** एवं **देवत्रय** आदि कोई भी नहीं रहते।

'प्रणव' में १२ अंश विद्यमान हैं। इनमें अन्तिम अंश **'उन्मना'** ही है।

मन का १/५१२वाँ भाग **'उन्मना'** है।

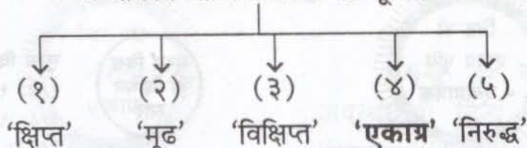
'प्रणव' अमात्र होकर भी अनन्तमात्रात्मक है। **'सिसृक्षा'** होने पर आदि में **'एक'** भाव की स्फूर्ति से **'अनेक'** भावों का उदय होता है, किन्तु क्रमिक विकास की दृष्टि से **'एक'** से आरंभ में **'दो'** का विकास होता है। अतीतावस्था से **'एक'** का विकास होने पर—एक प्रथमतः दो भागों में विभक्त होता है। अतः **'एकमात्रा'** (एक मात्रा ही एकाग्रमन की मात्रा है।) से **'अर्धमात्रा' में उन्नयन** होता है। फिर **'अर्धमात्रा'** से भी अग्रिम अर्धमात्रा का उदय होता है। ये सारी **मात्रायें मन की मात्रायें** हैं। इस प्रकार मन सूक्ष्म होते-होते अपनी ५१२वीं मात्रा की अवस्था में पहुँचने पर **'उन्मन'** कहलाता है, किन्तु **वहाँ 'मन' रहता ही नहीं।** 'मन' समना तक ही रहता है **'उन्मना'** में नहीं।

मनस्तत्त्व की भूमिकायें



*मनस्तत्व और उसकी सूक्ष्मतर विभिन्न अवस्थायें *

यह समस्त विश्व मन की एक या एकाधिक मात्रा में प्रसृत है। मन की जो एकाग्रतावस्था होती है, उसमें **'मन'** एक मात्रा में अवस्थित रहता है।



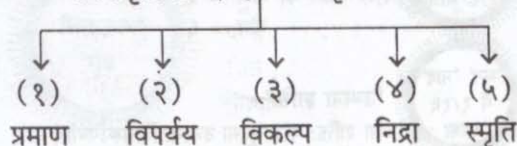
*** एकाग्र चित्त या एकाग्रतावस्थापन्न मनस्तत्त्व *** चित्त की तीन भूमियाँ (क्षिप्त। मूढ़। विक्षिप्त—ये तीनों भूमियाँ) समाधि की यात्रा के लिए अनुपयोगी हैं।

(क) **'क्षिप्त'** रजोगुण प्रधान है।
(ख) **'मूढ़'** तमोगुण प्रधान है।
(ग) **'विक्षिप्त'** सत्त्वोद्रेक प्रधान है।
} ये समाधि के लिए उपयोगी नहीं हैं।

(घ + ङ) **एकाग्र एवं निरुद्ध चित्त** भूमियाँ योगोंपयोगी हैं।*

क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त ये 'समाधि' के लिए उपयोगी नहीं हैं

एकाग्र भूमि में अवस्थित मूल समाधि की दिशा में ले जाता है।



चित्त की एकाग्रता की अवस्था—

(१) **भोजदेव = 'एकाग्रे** बहिर्वृत्तिनिरोध:। निरुद्धे च सर्वासां वृत्तीनां संस्काराणां च प्रविलय''।

(२) **नागोजीभट्ट—'एकाग्रत्वं** ध्येयातिरिक्तवृत्तिनिरोध:

मन की सूक्ष्मतर अवस्थायें

चित की एकाग्र भूमि * एकमात्रक मन

सूक्ष्म विश्व के विभिन्न स्तर

सूक्ष्म विश्व की मात्रायें– १/२; १/४; मात्रायें १/८; १/१६; मात्रायें १/३२; १/६४; मात्रायें १/१२८; १/२५६; १/ २५१२ मात्रायें

ज्ञाता-ज्ञान ज्ञेय के एकाकार होने की अवस्था मात्रा से मात्राहीन की ओर जाने का द्वार

एकाग्र 'मन' 'बिन्दु' में १/२ मात्रा

* आन्तर यात्रा के सोपान * मात्रा से मात्राहीन की दिशा में जाने की आन्तरिक सीढ़ी ('बिन्दु' से 'महाबिन्दु' तक की यात्रा के विभिन्न सोपान)

(१) बिन्दु (२) अर्ध मात्रा (३) निरोधिका (४) नाद (५) नादान्त (६) शक्ति (७) व्यापिका (८) समना (९) उन्मना

नादाभिव्यक्ति

१. जब नाद सुनाई नहीं पड़ता—क. विक्षिप्त, ख. क्षिप्त ग. मूढ़ अवस्था।
२. जब नाद सुनाई देता है = एकाग्रावस्था।
३. जब नाद बन्द हो जाता है—'निरोध'

'आज्ञा' चक्र' में एकाग्रता का पूर्ण विकास होता है।

'मन' 'अर्धचन्द्र' में १/४ मात्रा

'मन' निरोधिका में १/८ मात्रा

(क) अकार की मात्रा = १
(ख) उकार की मात्रा = २
(ग) मकार की मात्रा = ३
योग = ६

'मन' 'नाद' में १/१६ मात्रा

'उन्मना शक्ति'–

सा शक्तिः परमासूक्ष्मा **उन्मना** शिवरूपिणी॥
अस्तित्वमात्रमात्मानं क्षोभ्यं क्षोभयते यदा।
समनासौ विनिर्दिष्टा **शक्तिः** सर्वाध्ववर्तिनी
—नेत्रतन्त्र

नादान्त में १/३२ मात्रा

'वस्तुतो ह्युन्मनाख्यैव परविमर्शमयी पारमेश्वरी स्वातंत्र्यशक्तिरहन्तैकरसा स्वरूप गोपन क्रीड़ा सदाशिवानाश्रितपदात्मक सर्व भावाभासं सूत्रणभितिकल्प समनारुपतया स्फुरति॥' —स्वच्छन्दतंत्र उद्योत
—आचार्य क्षेमराज

शक्ति में १/६४ मात्रा

उन्मना में १/५१२ मात्रा

व्यापिका में १/२८ मात्रा 'समना'—इच्छाशक्तिरूपिणी।

विशुद्ध मन | शुद्ध मन की सूक्ष्मतम एवं अन्तिम अवस्था।

समना में १/१५६ मात्रा

ॐकार की ११वीं कला 'महामाया' विशुद्धतम मन का स्वरूप | मन्तव्यहीन मनन की अवस्था अविकल्प। मन की इच्छाहीन अवस्था। विशुद्ध कैवल्यावस्था

मन से हीन अवस्था | उन्मनी

महाबिन्दु — भगवान की नित्यस्वसमवेता स्वरूप शक्ति। अशेष विश्व का अभेदशर्शन कराने वाली शक्ति। शिव की पराशक्ति

'चित्त' =
(१) सूक्ष्म



'चित्त' =
(२) स्थूल



'चित्त' =
(३) स्थूलतर



'चित्त' =
(४) स्थूलतम



योग साधना की दृष्टि से पूर्णतः अनुपयोगी चित्त भूमियाँ

'बिन्दु' = सत्वगुण की वह अवस्था ही बिन्दु है, जिसे वैष्णव **'विशुद्धसत्व'** और व्यास **'प्रकृष्टसत्व'** कहते हैं। यह तमोगुण एवं रजोगुण से सदा के लिए विमुक्त अवस्था है। तांत्रिकगण इस **'बिन्दु'** कहते हैं।

जब योगी (१) मूढ़ (२) क्षिप्त एवं (३) विक्षिप्त—चितभूमियों को अतिक्रान्त करके **एकाग्रभूमि** में प्रतिष्ठित होते हैं; तब सत्त्वगुण का उत्कर्ष दृष्टिगत होता है। रजोगुण एवं तमोगुण **'सत्वगुण' के भीतर संलीन रहते हैं।**

(२) स्थूल

एकाग्रभूमि

(१) इसमें अस्मिता के रूप से परमप्रज्ञा का उदय होता है।

(२) इसमें ध्येयावलम्बन ज्ञेयरूप में होता है।

(३) जो एक सत्ता एकाग्रभूमि में प्रज्ञारूप में व्यक्त होती है, उसमें ज्ञाता, ज्ञेय एवं ज्ञान अभिन्न रूप में प्रकट होते हैं।

(४) 'मन की **एक मात्रा में स्थिति** होने पर **एकाग्रभूमि** की प्रतिष्ठा होती है। इस समय संपूर्ण विश्व दृष्टिपथ से विलुप्त रहता है। **'एक'** भी मन (चित्त) का ही एकत्व है।''

(५) 'एकाग्र भूमि में प्रतिष्ठित मन को तोड़ कर उसके दो टुकड़े करने होंगे। इसी का नाम है **'अर्धमात्रा'** ।

(६) मन की मात्रा जितनी ही क्षीण से क्षीणतर होती जाती है, उसी अनुपात में उतना ही **चिदालोक बढ़ता जाता है। आनन्द में भी उतनी ही वृद्धि** होती है।

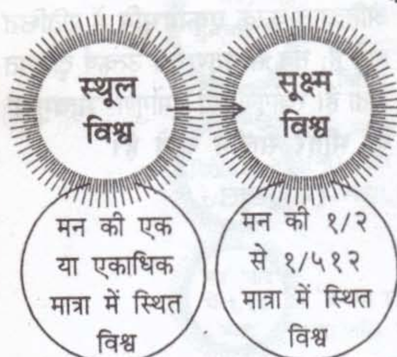
(७) मन की एकाग्रता की अवस्था में स्थूलकाय तो नहीं रहता, किन्तु सूक्ष्म काल तो बना ही रहता है।

कालांश—मात्रांश के अनुसार ज्यादा-कम होते है। अमात्रभूमि में काल का प्रवेश नहीं है।

'मन' बिन्दु की अवस्था में चन्द्रबिन्दु के रूप में पूर्ण रहता है।

मन और उसकी मात्रायें—शैव-शक्ति तांत्रिक योग के ग्रंथों में मन को द्विभूमिक कहा गया है। उसकी प्रथम भूमि है **'स्थूल' और दूसरी है** 'सूक्ष्म'।

मन की मात्रायें एवं स्थूल विश्व—स्थूल विश्व मन की एक या एकाधिक मात्रा में स्थित है।



*** सूक्ष्म विश्व और मन की मात्रायें ***

(१) 'बिन्दु' = १/२ मात्रा।
(२) 'अर्धचन्द्र = १/४ मात्रा।
(३) 'निरोधिका' = १/८ मात्रा।
(४) 'नाद' = १/१६वीं मात्रा।
(५) 'नादान्त' = १/३२वीं मात्रा।
(६) 'शक्ति' = १/६४वीं मात्रा।
(७) 'व्यापिका' = १/१२८वीं मात्रा।
(८) 'समना' = १/२५६वीं मात्रा।
(९) 'उन्मना' = १/५१२वीं मात्रा
समस्त मात्रांशों का योग = एक मात्रा।

*** मन की मात्रायें एवं योग-साधना का लक्ष्य ***

*** 'साधना' स्थूल से सूक्ष्म की यात्रा है। यह 'मात्रा' से 'अमात्रा' की यात्रा है। ***

(१) **'स्थूल विश्व'** तो मन की एक मात्रा में स्थित है।

(२) सूक्ष्म विश्व मन की १/२ मात्रा से मन की १/५१२वीं मात्रा तक स्थित है। अत: मन की इन्हीं सूक्ष्म मात्राओं में अवस्थित होते हुए मन की २५६वीं मात्रा **'समना'** तक पहुँचकर उसको भी अतिक्रान्त करके **'उन्मना'** (मन की ५१२वीं मात्रा का स्तर) तक आरोहण करना योग का **प्रथम साधना-सोपान** है और उसके बाद उसे भी अतिक्रान्त करके **'महाबिन्दु'** के शीर्ष पर आरोहण करना **तांत्रिक योग-साधना का द्वितीय सोपान है।**

'मन' मात्रा-युक्त है। **साधना का लक्ष्य** है, मात्रा से मात्राहीन (अमात्र परमशिव) की यात्रा। समस्त स्थूल जगत की अनुभूति मन की जिस मात्रा में होती है, **उसे मन**

की एक मात्रा माना जाता है। समस्त लौकिक जगत एवं उसकी अनुभूतियाँ इसी **'एक मात्रा'** में अन्तर्निहित हैं। **मात्राधिक्य जड़ता का विधायक है। मन की मात्रा जितनी ही फैलती जाती है, मन उतना ही स्थूल होता जाता है** और उसकी मात्रा जितनी घटती जाती है, मन उतना ही शुभ्र एवं उज्ज्वलतर होता जाता है और उसी क्रम में चिदालोक शुभ्रतर होता जाता है।

एक मात्रा एवं 'अर्द्धमात्रा' की संधिभूमि में ही चिद्रश्मि-सम्पात होता है। ऊपर से एक मात्रा में उस रश्मि के पड़ने से ऊपर की ओर एक मात्रा टूटना आरंभ करती हैं, किन्तु नीचे की ओर **एक मात्रा** अक्षुण्ण ही बनी रहती है।

एक मात्रा ही विभक्त होकर **'अर्द्धमात्रा'** में विभाजित हो जाती है। मन की (१) **'क्षिप्त'** (२) **'मूढ़'** एवं (३) **'विक्षिप्त'** वृत्तियों में चाञ्चल्य वृद्धि (मात्रा-बाहुल्य) रहता है। अत: **मन सामान्यतः एक मात्रा में रहता ही नहीं है।** एक मात्रा ही नि:शेष स्थूल **जगत का मध्य बिन्दु** है और समस्त विश्व इसी एक मात्रा में ही उपसंहृत होता है। **'बिन्दु'** ही मात्रा से मात्राहीन में यात्रा करने का मार्ग है। मात्रा-भंग से ही—

'अर्धमात्रा' **'रोधिनी'** 'नाद' **'नादान्त'** **'शक्ति'** **'व्यापिनी'** **'समनी'** एवं **'उन्मनी'** का उदय होता है।

'मनोन्मनी' की साधना-पद्धति—

इस साधना का प्रथम लक्ष्य है—मन को एकाग्र करके **केन्द्र में स्थापित करना। एक मात्रा** ही नि:शेष **स्थूल जगत का मध्यबिन्दु या केन्द्र है।** जब मन एक मात्रा में अवस्थित होता है, तब **एकाग्रभूमि की प्रतिष्ठा** होती है। इस स्थिति में संपूर्ण जगत विलुप्त हो जाता है और एक मात्र चिदाकाश प्रकाशित हो उठता है, किन्तु चिद्रूप में नहीं 'महाशून्य' के रूप में प्रकाशित होता है। इस स्थिति में व्यष्टि-समष्टि' पिण्ड-ब्रह्माण्ड, एवं देश-काल का व्यवधान एवं पार्थक्य समाप्त हो जाता है। तदनन्तर **'प्रज्ञा'** भी अतिक्रान्त हो जाती है।

इस साधना में एकाग्र भूमि में स्थित **मन को तोड़कर उसके दो टुकड़े करने पड़ते हैं।** मन की यही द्विभाजित स्थिति **'अर्धमात्रा'** कहलाती है।

मन की मात्रा जितनी ही क्षीण से क्षीणतर होती जाती है और चैतन्य तथा आनन्द की मात्रा उतनी अधिक वर्धित होती जाती है। **'समना'** के स्तर पर विकल्प-शून्य मन रहते हुए भी न रहने के समतुल्य हो जाता है। इस समय क्षीण मन का भी त्याग करना पड़ता है, जिसे कि उत्सर्ग (आत्मसमर्पण) कहा जाता है। इस स्थिति में मन लेशमात्र भी नहीं रहता। इसी का नामान्तर है—चिदानन्दमय दिव्यभूमि में

प्रवेश। इस स्थिति में जीव परमशिव के रूप में प्रकट होता है। इस समय **'उन्मना शक्ति'** ही उसकी **'पराशक्ति'** होती है।

जिस प्रकार कृष्णपक्ष में कलाओं के क्षीण होते जाने के अनन्तर अन्त में कला रह ही नहीं जाती और फिर **'अमावस्या'** का उदय होता है, उसी प्रकार **'मन'**, **'बिन्दु'** (पूर्ण चन्द्रवत् बिन्दु) **'अर्धचन्द्र' 'निरोधिका' 'नाद' 'नादान्त' 'शक्ति' 'महाशून्य' 'व्यापिनी'** (विकल्पहीन मन) **'समना'** की यात्रा करता हुआ ब्रह्मविद्यास्वरूपा **'उन्मनाशक्ति'** में लय होकर पूर्णत्व उदित करता है। यहाँ न मन की गति है और न काल की गति है। यहाँ न मन की कोई मात्रा है और न कालराज्य की स्थिति। इसे ही शब्दान्तर में **'भगवद्धाम में प्रवेश'** भी कहते हैं।

साधक की यथार्थ यात्रा का आरंभ—एकाग्रभूमि से होता है और उसका अन्त **'निरोधभूमि'** में होता है। यह निरोध **चित्त का निरोध'** और निरोधवृत्ति का एवं संस्कारों का निरोध है। इस काल में निरोध भी नहीं रहता। इस समय रहता है तो केवल विशुद्ध चैतन्य मात्र रहता है। चित्त का यही आत्यन्तिक रूप में पूर्णाभाव **'उन्मनीभाव'** है। यही विशुद्ध चैतन्य की निजाशक्ति या स्वरूप शक्ति है।

उन्मनीकल्पलता का जन्म—(१) चित्तरूप **'बीज'** हो, (२) प्राण-अपान के ऐक्य (ह०) का **'क्षेत्र'** (खेत = भूमि) हो एवं (३) **परवैराग्य रूप** औदासीन्य का **'जल'** हो तो **'उन्मनीकल्पलतिका'** स्वत: उत्पन्न हो उठती है अर्थात् असम्प्रज्ञात समाधि स्वयं उदित हो उठती है।

"तत्त्वं बीजं हठ: क्षेत्रमौदासीन्यं जलं त्रिभि:।
उन्मनीकल्प लतिका सद्य एव प्रवर्तते॥" (ह० यो० प्र०)

'ब्रह्मकमल' एवं उन्मनीकला—ब्रह्मकमल ऊर्ध्वमुखी होकर प्रस्फुटित है। उसी स्थान पर मन से अतीत **'उन्मनी कला'** अवस्थित है। **'ब्रह्मकमल'** (सहस्रदल के ऊपर) मध्यभाग की कर्णिका में स्थित है और सहस्रदल कमल अधोमुख रहकर प्रस्फुटित है। जब तक पद्म अधोमुख रहता है, तब तक कुण्डलिनी प्रसुप्त रहती है और तब तक विश्व विषम रूप से आभासित होता है और इसे **'समनावस्था'** कहते हैं, किन्तु जब यह पद्म ऊर्ध्वमुखी होता है तब कुण्डलिनी जागृतावस्था में रहती है एवं तब **विश्व चिदानन्दमय हो जाता है**। इसी अवस्था को **'उन्मनी अवस्था'** कहते हैं।

* गोरक्षनाथोक्त 'तारक योग' एवं 'अमनस्क योग' *

गोरक्षनाथ ने अद्वैतपरक ग्रंथ "अमनस्क योग" की भी रचना की है। गुरु गोरक्षनाथ कहते हैं कि परमोत्तम योग **'तारकयोग' है। 'तारकयोग'** के दो भेद हैं—

(१) **'पूर्वयोग'**—**'तारकयोग'** (समनस्क योग)।

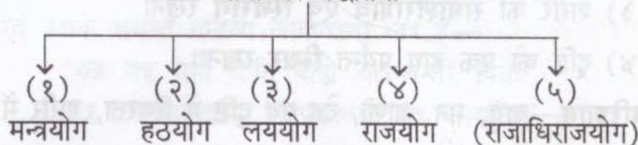
(२) **'अपर योग'**—**'अमनस्कयोग'** (मन से अतीत योग)।।

'पूर्वयोग'=बाह्यमुद्रा युक्त योग=बाह्य योग=बहिर्मुद्रा एवं बहिर्योग से युक्त योग' **'अमनस्कयोग'**='अन्तर्मुद्रात्मक योग' 'यथार्थयोग' 'अन्तर्योग' एवं निर्मनस्कयोग।

शाक्त-साधना में तीन उपायों का आश्रय लिया जाता है। ये निम्नाङ्कित हैं—

(१) **'आणव उपाय'** (२) **'शाक्तोपाय'** (३) **'शाम्भवोपाय'**। इसमें 'अमनस्क योग' इसी 'शाम्भवोपाय' के समतुल्य है।

गोरक्षनाथ ने योग-साधना की कई पद्धतियों पर प्रकाश डाला है।



इनमें **'राजयोग'** (एवं राजाधिराज योग) उपर्युक्त **'अमनस्क योग'** के ही समतुल्य है। इसी कारण इसे **'राजयोग'** भी कहा गया है।

स्वात्माराम मुनीन्द्र कहते हैं—

> **'राजयोगः** समाधिश्च **उन्मनी** च **मनोन्मनी।**
> **अमरत्वं लयस्तत्वं** शून्याशून्यं परं पदम्।
> **अमनस्कं तथाऽद्वैतं** निरालम्बं निरञ्जनम्।
> जीवन्मुक्तिश्च सहजा तुर्या चेत्येकवाचकाः।।'[१]

'अमनस्क' (मनोन्मनी) की साधना-पद्धति—

स्वात्माराम मुनीन्द्र कहते हैं कि—

(१) प्राण एवं अपान का ऐक्य (हठ) **क्षेत्र** है।

(२) चित्त **'बीज'** है।

(३) औदासीन्यरूप वैराग्य ही **'जल'** है।

(४) इस क्षेत्र-बीज-जल के संयोग से उन्मनी कल्पलतिका या 'उपाय प्रत्यय' (असंप्रज्ञात समाधि) का प्रादुर्भाव होता है।

गुरु गोरक्षनाथ प्रोक्त साधना पद्धति—गुरु गोरक्षनाथ कहते हैं कि—तारों

---

१. हठयोगप्रदीपिका

(नेत्र-पुत्रिकाओं) **को ज्योति से संयोजित करने** एवं **भौंहों को किञ्चित उन्नत करने** से क्षणभर में **उन्मनीभाव** उत्पन्न हो जाता है।

इसके लिए साधक को चाहिए कि वह इस साधना के अभ्यास काल में समस्त **चिन्तन-मनन का त्याग** करके 'निर्विचार एवं अविकल्प होकर किसी मनोनुकूल सुरम्य प्रदेश के **एकान्त में स्थिरांग एवं समासनस्थ होकर** एवं पीछे की ओर (यत्किञ्चित) झुककर (तनकर, समशिरोग्रीव होकर) एवं एक हाथ तक **दृष्टि को स्थिर करके** इस साधना का अभ्यास करे।

साधनांग—(१) समस्त **चिन्तनों का त्याग,** (निर्विचार स्थिति)

(२) सुरम्य प्रदेश के **एकान्त** में स्थित होना।

(३) शरीर को **समशिरोग्रीव** एवं **स्थिरांग** रखना

(४) दृष्टि को एक हाथ पर्यन्त **स्थिर** रखना।

परिणाम—वायु, मन, वाणी, देह एवं दृष्टि में स्थिरता, शरीर में मृदुता एवं लाघव।

गोरक्षनाथ कहते हैं—

'विविक्त देशे सुखसन्निविष्टः समासने किञ्चिदुपेत्य पश्चात्।
बाहुप्रमाणं स्थिरदृक् स्थिरांगश्चिन्ताविहीनोऽभ्यसनं कुरुष्व।।'

इसके द्वारा तत्त्व-साक्षात्कार होता है, किन्तु इस साधना में निर्विचार रहना अत्यावश्यक है—

'न किञ्चिन्मनसा ध्यायेत्सर्वचिन्ताविवर्जितः।
स बाह्याभ्यन्तरे योगी जायते तत्त्वसंमुखः।।'
"तत्त्वस्य संमुखे जाते अमनस्क प्रजायते।
अमनस्केऽपि संजाते चित्तादिविलयो भवेत्।।'

मत्स्येन्द्रनाथ एवं गोरक्षनाथ की दृष्टि में भेद

मत्स्येन्द्रनाथ का हठ-मार्ग—

(१) यह प्राणलय-प्रधान योगपद्धति है।

(२) यह प्राणों के नियंत्रण पर अधिक बल देती है।

(३) इसका लक्ष्य शक्ति का आयत्तीकरण है।

(४) इस प्रक्रिया में प्राण के लय से मन को लयीभूत करने की साधना प्रधान है।

(५) चित्त के कारण (क) 'वासना' और (ख) 'वायु' हैं—

"हेतुद्वयं तु चित्तस्य वासना च समीरणः।
तयोर्विनिष्ट एकस्मिंस्ततौ द्वावपि विनश्यतः॥"
'यावद्विलीनं न मनो न तावद्वासना क्षयः।
न क्षीणं वासना यावच्चित्तं तावन्न शाम्यति॥'

(१) तत्त्वज्ञान (२) मनोनाश (३) वासनाक्षय—ये तीनों एक ही महादशा के नामान्तर हैं—

'तत्त्वज्ञानं मनोनाशो वासनाक्षय एव च।
मिथः कारणतां गत्वा दुःसाध्यानि स्थितान्यतः॥"

चूँकि शिव के अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं। अतः मन की भी समस्त अवस्थायें एवं उसके समस्त गन्तव्य शिवावस्था मात्र हैं—

'यत्र यत्र मनो याति बाह्ये वाऽभ्यन्तरे प्रिये।
तत्र तत्र शिवावस्था व्यापकत्वात् क्व यास्यति॥'

चूँकि मन **अस्थिर** एवं सावलम्ब है। अतः योगियों ने उसके क्षय के लिए उसे स्थिर एवं निरालम्ब करने का उपदेश दिया है—

(क) 'अचिरेण **निराधारं मनः** कृत्वा शिवं व्रजेत् ।

(ख) **'निर्विकल्पं** मनः कृत्वा सर्वोर्ध्वे सर्वगोद्गमः।'

(ग) **'निराधारं** मनः कृत्वा विकल्पान्न विकल्पयेत् ॥

(घ) **यदा** यत्र, **यथा** यत्र स्थिरं भवति मानसम् ।
तदा तत्र, **तथा** तत्र, तस्मात् न तु चाल्पं कदाचन॥

(ङ) एवमभ्यसतो योगं मनो भवति सुस्थिरम् । (अमनस्क योग)

उन्मनीभावोत्पादक मुद्रा—तारों (पुतलियों) को ज्योति में लगाकर भौंहों को कुछ ऊर्ध्वोन्मुख चढ़ाने से उन्मनी का उदय होता है—

'तारे ज्योतिषि संयोज्य किंचिदुन्नमयनभ्रुवौ।
पूर्वयोगस्य मार्गोऽयमुन्मनीकारः क्षणात्॥'

तारक योग और मनोन्मनी—गुरु गोरक्षनाथ के मतानुसार योगों में सर्वोत्तम योग **'तारकयोग'** है। यह **'तारकयोग'** ही **'पूर्व'** एवं **'अपर'** दो नामों से विभक्त है।

'पूर्वयोग' ही **'तारकयोग'** है एवं **'अपरयोग'** ही **'अमनस्कयोग'** है। 'अमनस्क योग' की साधना का मेरुदण्ड ही **'मनोन्मनी'** है।

'अमनस्कयोग' की विशिष्टता—गुरु गोरक्षनाथ ने 'मंत्रयोग' 'ध्यान योग, 'जपयोग' आगम, निगम, तर्क, मीमांसा, न्याय, फलित, गणित, ज्योतिष, वेद, वेदान्त, स्मृति, कोष, छन्दशास्त्र, व्याकरण, काव्य एवं अलंकार शास्त्र आदि सभी शास्त्रों एवं तन्निहित विद्याओं से **'अमनस्क योग'** को श्रेष्ठतर कहा है। [1]

परम प्राप्तव्य है **'परमतत्त्व'** और **'अमनस्क योग'** उसी को प्राप्त करने का यौगिक साधन है, अत: यह योग श्रेष्ठतम है।

इस योग की **साधना की परिणति है**—'लय'—

'परतत्त्वं समाख्यातं जन्मबंधविनाशनम्।
तस्याभ्यासं प्रवक्ष्यामि येन संजायते **लयः**॥' [2]

गोरक्षनाथ कहते हैं कि **'परमतत्त्व'**—'चक्र' 'षोडशाधार' 'त्रिलक्ष्य' पंचव्योम' सुषुम्नादि नाड़ियों के योग तथा प्राणसाधना आदि के द्वारा प्रकाशित नहीं होता है—

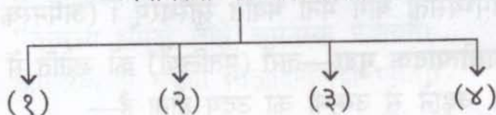
'आधारादिषु चक्रेषु सुषुम्नादिषु नाडिषु।
प्राणादिषु शरीरेषु परं तत्त्वं न तिष्ठति॥'

यह परतमतत्त्व (परात्पर तत्त्व) अमनस्कयोगसाधित 'मनोन्मनी' के द्वारा ही प्राप्त है। इसीलिए इसे 'मनोन्मनीकारक योग' कहा गया है—

'पूर्वयोगस्य मार्गोऽयमुन्मनीकारकः क्षणात्॥' [3]

मन की विभिन्न भूमिकायें एवं मनोन्मनी—मन अपनी विभिन्न मात्राओं एवं मात्रांशो में विभिन्न भूमिकाओं में अवस्थित है। इसकी चार अवस्थायें हैं—

मनोवस्था के चार प्रकार



विशिलष्टावस्था गतागतावस्था सुशिलष्टावस्था 'सुलीनावस्था'

(१) **'विशिलष्टावस्था'** तमोगुणात्मक है।

(२) **'गतागतावस्था'** रजोगुणात्मक है।

---

१. अमनस्क योग
२. अमनस्क योग
३. अमनस्क योग

(३) **'सुश्लिष्टावस्था'** सतोगुणात्मक है।

(४) **'सुलीनावस्था'** निर्गुण है।

(क) विश्लिष्ट एवं गतागतावस्था—यह विकल्पों से भरी हुई एवं विषयों को ग्रहण करने वाली है।

(ख) सुश्लिष्ट एवं सुलीनावस्था—यह विकल्प रूपी महाविष का नाश करने वाली अवस्था है।

मन की क्रमिक गति—(१) मन सर्वप्रथम (चल होने के कारण) **'विश्लिष्ट'** फिर—

(२) किञ्चित् निश्चल होने पर **'सानन्द'**, फिर

(३) अत्यन्त निश्चल हो जाने पर—**'सुनील'** कहलाता है।

मन की सुलीनावस्था ही **मनोन्मनी की** अवस्था है।

मनोन्मनी के उच्चतर सोपान पर आरोहण करने के लिए मन को अपनी विभिन्न भूमिकाओं एवं मात्रांशों को अतिक्रान्त करना पड़ता है।

मन के मात्रांश तो पहले बताये जा चुके हैं। अतः पुनरुक्ति उचित नहीं। (मात्रांशों का वर्णन गोरक्षनाथ ने **'अमनस्क योग'** नामक अपने ग्रंथ में नहीं किया है, तथापि तांत्रिक योग-साधना में इस पर सविस्तार प्रकाश डाला गया है। उपयोगी होने के कारण इसे यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

मनोन्मनी का महत्व—

'एकं सृष्टिमयं बीजमेका मुद्रा च खेचरी।
एको देवो निरालम्बश्चैकावस्था **मनोन्मनी**॥'

महामाहेश्वर भगवान् गोरक्षनाथ एक ओर तो भारतीय योग-साधना के महाव्योम के ध्रुवनक्षत्र थे तो दूसरी ओर भारतीय मनीषा की मनोज्ञ विभावरी के मनोज्ञ शशाङ्क। एक ओर वे हठयोग की कायिक साधना के प्रवर्तक थे, तो दूसरी ओर मनोन्मनीयोग (राजयोग) के साधक। वे योग की इस बाह्यान्तरवर्ती दोनों साधनाओं में सिद्ध थे।

* गोरक्ष-सिद्धान्त का तान्त्रिक स्वरूप *

सामान्यतः तो यही स्वीकार किया जाता है कि मत्स्येन्द्रनाथ कौलतांत्रिक मत के उद्भावक, उपासक एवं प्रचारक थे तथा गोरक्षनाथ योग के विशुद्ध स्वरूप के उपासक एवं प्रचारक थे, न कि तांत्रिक मत के। किन्तु यदि हम 'गोरक्षसंहिता' आदि ग्रंथों का अवलोकन करें तो गोरक्षमत में भी तांत्रिक उपादान उपलब्ध होते हैं।

*** 'गोरक्ष-संहिता और तन्निहित तान्त्रिक उपादन ***

'सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय' से प्रकाशित 'गोरक्षसंहिता' नामक ग्रंथ के अनेक श्लोक गोरक्षनाथ एवं मत्स्येन्द्रनाथ के अन्य ग्रंथों में भी प्राप्त होते हैं। इसके अनेक श्लोक 'हठयोग प्रदीपिका' एवं 'अकुलवीर तंत्र' आदि ग्रंथों में भी उपलब्ध होते हैं। चूँकि गोरक्ष के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ ने '**योगिनीकौलमत**' का प्रवर्तन किया था। अत: संभव है गोरक्षनाथ के सिद्धान्तों पर तांत्रिकमत का गंभीर प्रभाव पड़ा हो।

गोरक्ष-प्रणीत ग्रंथों में तांत्रिक योग की—

(१) वज्रोली (२) अमरोली (३) सहजोली (४) षट्चक्रवेधन (५) अजपाजप (६) कुण्डलिनी योग (७) काल-शोधन (८) काल-वञ्चन (९) पीठतत्त्व (१०) शिव-शक्ति की उपासना (११) सामरस्यवाद (१२) नादबिन्दुवाद (१३) 'परा' 'पश्यन्ती' प्रभृति वाणियों की उपासना—की क्रियायें तो गोरक्षनाथ के विशुद्ध योग के योग-ग्रंथों में भी प्रतिपादित, उपासित एवं स्वीकृत मिलती है, किन्तु तन्त्रशास्त्र के ग्रंथों में प्रतिपादित न्यासतत्त्व, आदि तत्त्व उनके योग शास्त्र के ग्रंथों में उपलब्ध नहीं होते, किन्तु 'गोरक्ष-संहिता' प्रभृति ग्रंथों में वे भी सारे तांत्रिक उपादन मिलते हैं।

गोरक्ष-संहिता शतसाहस्री (लक्षश्लोकात्मिका) कही जाती है।

'गोरक्ष-संहिता' में—भैरव स्तुति, दीक्षा-प्रकार, श्रीशैलोत्पत्ति, ओडियानपीठोत्पत्ति, जालन्धरपीठोत्पत्ति, पूर्णपीठोत्पत्ति, कामरूप पीठोत्पत्ति, मातङ्गीपीठ वर्णन, उपपीठवर्णन, कुलाकुल व्याख्या, पीठस्थान एवं उसके परिवार का वर्णन, मातृका-स्थापना, मुद्रा, बीज, बीजोद्धार, त्रिखण्डा, मन्त्र का उद्धार, पञ्चप्रणवोद्धार, चक्रभेद वर्णन, वस्त्रन्यास, शिखान्यास, मालिनीबीजविन्यास, ५० भैरवों का विवरण एवं वर्णन्यास, मालिनी चक्रविन्यास, मुद्रा के भेद, योनिमुद्रा, मुद्राबन्ध, जपप्रकार, जालन्धर साधन, मण्डलवर्णन, हृदयदूती एवं शिरोदूती का जपस्थान, दूतीमंत्रोद्धार, दूती, मुद्रा, होमविधि, शिखादूतीमन्त्रोद्धार, कुण्डविधान, होम-विधान,संख्या, द्रव्य, कुलाकुल, अघोर निर्णय, मंत्रराज का कीलनोत्कीलन, स्वच्छन्द यंत्र, कवचदूती, नेत्रदूती, अस्त्रदूती, देवी चक्र का स्वरूप, १६ दिव्य योगिनियों का नाम एवं स्वरूप, मातृमण्डल निर्माण, योगिनी मण्डल निर्माण डाकिनी, राकिनी, लामा, काकिनी, शाकिनी, हाकिनी, याकिनी, खेचरीचक्र, द्वादशारस्था योगिनियाँ, २४ दलस्थ योगिनियाँ, ६४ दलस्थ योगिनियाँ, चक्रपञ्चक, पृथिव्यादिपञ्चक्रोंके मंत्रबीजल, दीक्षाभिषेक विधान, कुलपिण्ड, कालवञ्चन, कालावरोध, मृत्युञ्जयमंत्रविधान, मृतसञ्जीविनी विद्या, कालदमिनी विद्या, अपराविद्या, पराविद्या, परापराविद्या, कामेश्वरी विद्या, त्रिपुरशेखराविद्या, षोढ़ान्यास, अघोर-न्यास, मालिनीन्यास, त्रिविधन्यास, अस्त्र (पाशुपत) न्यास, वर्णमालान्यास,

रत्नन्यास, नवात्मन्यास, बीजपञ्चकन्यास, त्रितत्व न्यास, वक्त्राङ्गन्यास, भूतशुद्धि, गुरुमण्डल, क्रमपूजन, पञ्चाशतरुद्र, उनके आयुध, द्वीपाम्नाय, देहस्थपीठ एवं द्वीप, चक्राम्नाय, बाह्यादिषोडशचक्र एवं चर्याधर गुणानन्द के पर्यटनस्थान आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन २७ पटलों में प्राप्त होता है।[१]

* गोरक्षनाथोक्त 'लय योग' *

गोरक्षनाथ ने 'लययोग' को अनेक प्रकार से परिभाषित एवं व्याख्यात किया है।

'चित्त का सन्तत लय ही **लय है**—

'यच्चित्तसन्तततलयः स **लयः** प्रदिष्टः।।'

—अमरौघ प्रबोध

नियम—

'किनच्चिन्तयेद् योगी औदासीन्यपरो भवेत्।
न किंचिच्चिन्तनादेव स्वयं तत्त्वं प्रकाशते।।'

शिथिलीकरण—शिथिलीकृत सर्वाङ्गं आनखाग्रशिखाग्रतः।
स बाह्याभ्यन्तरे सर्वं चिन्ता**चेष्टा**विवर्जितः।।

—गोरक्षनाथ

ऋषि घेरण्ड की दृष्टि—

घेरण्डसंहिताकार ऋषि घेरण्ड ने अनेक प्रकार की समाधियों में से एक समाधि को **'लयसिद्धि समाधि'** कहा है। उसका स्वरूप इस प्रकार है—

''योनिमुद्रां समासाद्य स्वयं शक्तिमयो भवेत्।
सुशृंगाररसेनैव विहरेत्परमात्मनि।
आनन्दमय संभूत्वा ऐक्यं ब्रह्मणि संभवेत्।
अहं ब्रह्मेति वाऽद्वैतं समाधिस्तेन जायते।।''

नाथयोगी हठयोगप्रदीपिकाकार स्वात्माराम मुनीन्द्र की दृष्टि—

स्वात्मारामपुनीन्द्र ने **'लय' एवं समाधि** को अभिन्नार्थक माना है। उनकी दृष्टि में—'राजयोग' 'समाधि' 'उन्मनी' 'मनोन्मनी' 'अमनस्क' 'अद्वैत' 'निरालम्ब' 'निरञ्जन' 'जीवन्मुक्ति' 'सहजा' एवं तुर्यावस्था—आदि सभी एकार्थक ही हैं। वे कहते हैं—

'राजयोगः समाधिश्च उन्मनी च मनोन्मनी।
अमरत्वं **लय**स्तत्त्वं शून्याशून्यं परं पदम्।।'

---

१. गोरक्षसंहिता (प्रथम से सप्तविंश पटल)

वे 'लय' को इस प्रकार भी परिभाषित करते हैं—

(१) उच्छिन्नसर्वसङ्कल्पो निःशेषाशेष चेष्टितः।
स्वावगम्यो **लयः** कोऽपि जायते वागगोचरः।।

(२) प्रनष्टश्वासनिश्वासः प्रध्वस्तविषयग्रहः।
निश्चेष्टो निर्विकारश्च **लयो** जयति योगिनाम्।।

(३) इन्द्रियाणां मनो नाथो मनोनाथस्तु मारुतः।
मारुतस्य **लयो** नाथः स **लयो** नादमाश्रितः।।[१]

(४) सोऽयमेवास्तु मोक्षाख्यो वाऽस्तु वापि मतान्तरे।
मनःप्राणलये कश्चिदानन्दः सम्प्रवर्तते।।

(५) यत्र दृष्टिर्लयस्तत्र भूतेन्द्रिय सनातनी।
सा शक्तिर्जीवभूतानां द्वे अलक्ष्ये **लय** गते।।[२]

'लय' है क्या? उसकी परिभाषा क्या है?
स्वात्माराम मुनीन्द्र कहते हैं—

'लयो लय इति प्राहुः कीदृशं **लयलक्षणम्?**
अपुनर्वासनोत्थानाल्लयो विषय-विस्मृतिः।।'[३]

* लय के प्रकार *

स्वात्माराम मुनीन्द्र का कथन है कि भगवान् शिव के अनुसार **सवा करोड़ लय के प्रकार हैं,** किन्तु उनमें मैं **'नादानुसन्धान'** को श्रेष्ठतम लय-प्रकार मानता हूँ—

'श्री आदिनाथेन सपादकोटि-
लयप्रकाराः कथिता जयन्ति।
नादानुसन्धानकमेकमेव,
मन्यामहे मुख्यतमं लयानाम् ।।'[४]

गोरक्षनाथ की दृष्टि—नाद-लय सर्वसुलभ नादोपासना है।

'अशक्यतत्त्वबोधानां मूढानामपि संमतम्।
प्रोक्तं **गोरक्षनाथेन नादोपासन**मुच्यते।।' (४।६५)

---

१. हठयोग प्रदीपिका
२. हठयोग प्रदीपिका
३. ह० यो० प्र० (चतुर्थ उपदेश)
४. ह० यो० प्र० (उप० ४)

'नाद' क्या है? नाद शिवशक्ति का पारस्परिक सम्बंध है—

'यत्किंच्चिन्नादरूपेण श्रूयते शक्तिरेव सा।'

'लय' का आदर्श या ध्येय क्या है? राजयोग की प्राप्ति —

'सर्वे हठलयोपाया राजयोगस्य सिद्धये।'

'राजयोग' क्या है? 'मनसः सर्ववृत्तिनिरोधः॥'—(ज्योत्स्ना)

लययोगसाधना का नियम—

सर्वचिन्तां परित्यज्य दिनमेकं परीक्ष्यताम्।
यदितत्प्रत्ययो नास्ति तदा मे तु मृषा वचः।

—अमरौघ प्रबोध (गोरक्षनाथ)

चित्त निस्तरङ्ग होना चाहिए—'निस्तरङ्गे स्थिरे चिते वायुर्भवति मध्यगः॥
रविरुर्ध्वपदं याति बिन्दुना याति वश्यताम्॥ —(गोरक्षनाथ)

'अमनस्क योग' के लय का स्वरूप—

गोरक्षनाथ का कथन है कि—

(१) न किंचिन्मनसा ध्यायेत्सर्व चिन्ता-विवर्जितः।
स बाह्याभ्यन्तरे योगी जायते तत्त्वसंमुखः॥३२॥

(२) तत्त्वस्य संमुखे जाते अमनस्क प्रजायते।
अनमस्केऽपि संजाते चित्तादि **विलयो** भवेत् ॥३३॥

(३) **'लयस्थ'** कौन हैं?

'यदा सर्वसमे जाते भवेद् व्यापारवर्जितः।
परब्रह्मणि सम्पन्नो योगी **प्राप्तलयस्तदा**॥३६॥'

सदैव अभ्यासरत रहने पर ही लयभाव अधिगत होता है, अन्यथा नहीं—

'सदाभ्यासरतानां च यः परो जायते **लयः**।'

लयस्थ का लक्षण—

(क) सुखदुःखे न जानाति शीतोष्णं न च विन्दति।
विचारं चेन्द्रियार्थानां न वेत्ति **विलयं** गतः।

(ख) न जीवन्न मृतो वापि न पश्यति न मीलति।
निर्जीवः काष्ठवत्तिष्ठेत् **लयस्थश्चाभिधीयते**।

(ग) निर्वात स्थापितो दीपो भासते निश्चलो यथा।
जगद् व्यापार निर्मुक्तस्तथा योगी **लयं** गतः।

(घ) यथा वातैर्विनिर्मुक्तो निश्चलो निर्मलोऽर्णवः।
शब्दादिविषयैस्त्यक्तो **लयस्थो** दृश्यते तथा।

(ङ) प्रक्षिप्तं लवणं तोये क्रमाद् यद्वद्विलीयते।
मनोऽप्यभ्यासयोगेन तद्वद् ब्रह्मणि लीयते।।

—गोरक्षनाथ

सुखदु:ख, शीतोष्ण, इन्द्रियार्थी के विचार, जीवन-मृत्यु, उन्मीलन-निमीलन, सजीव-निर्जीव आदि सभी से परे एवं वायुशून्य तथा शान्त समुद्र की भाँति निस्पन्द-निश्चल, शब्दादिविषयों से असंस्पृष्ट, समुद्र में डाले गए नमक की भाँति ब्रह्म में लयीभूत एवं **ब्रह्मीभूत व्यक्ति ही लयस्थ कहा जाता है।**[१]

* साधनाकाल और तदनुगत सिद्धियाँ *

लय साधना का समय	लयस्थ योगी की सिद्धियाँ
(१) एक निमेष का लय	—परतत्त्व स्पर्श किन्तु व्युत्थान।
(२) ६ निमेषों का लय	—तापशान्ति, बार-बार निद्रा-मूर्च्छा
(३) एक श्वास पर्यन्त लय	—प्राणादि वायुओं का स्वस्थान में संचार
(४) दो श्वास पर्यन्त लय	—कूर्म, नाग आदि वायु निवृत्त, धातुपुष्टि
(५) चार श्वास पर्यन्त लय	—धातुओं के रसों की पुष्टि
(६) एक पल पर्यन्त लय	—एकासनस्थ होने पर क्लान्ति नहीं।
(७) दो पल पर्यन्त लय	—अनाहतनादोत्थान।
(८) चार पल पर्यन्त लय	—कान में अकस्मात्, सुमधुर ध्वनि का श्रवण
(९) आठ पल पर्यन्त लय	—काम 'वासना निवृत्त'
(१०) चौथाई कला तक लय	—प्राणादि वायु का सुषुम्णा में प्रवेश और वायु की शुद्धि
(११) आधी घड़ी तक का लय	—कुण्डलिनी का जागरण।
(१२) एक घड़ी तक का लय	—कुण्डिलिनी का ऊर्ध्वारोहण
(१३) दो घड़ी तक का लय	—एकक्षण में एक बार मन में कम्पन
(१४) चार घड़ी तक का लय	—निद्रा की निवृत्ति
(१५) आधे दिन तक का लय	—आत्मज्योति का प्रकटीकरण
(१६) दिनभर का लय	—इन्द्रियों के ज्ञान का विस्तार-समस्त ब्रह्माण्ड तक तथा आत्म तत्त्व प्रकाशित।

१. अमनस्क योग

(१७) अहोरात्र का लय —दूर से गन्ध-संवेदना की प्राप्ति।
(१८) दो अहोरात्र का लय —दूर से ही रससंवेदना की प्राप्ति।
(१९) तीन अहोरात्र का लय —दूर दर्शन
(२०) चार अहोरात्र का लय —दूर स्पर्श
(२१) पाँच अहोरात्र का लय —दूर श्रवण
(२२) छ अहोरात्र का लय —अतीतानागत विश्व का ज्ञान
(२३) सात अहोरात्र पर्यन्त लय —ब्रह्मपर्यन्त विश्वज्ञान एवं श्रुतिज्ञानं
(२४) आठ अहोरात्र पर्यन्त लय —क्षुधा, तृणा आदि मुक्ति।
(२५) नौ अहोरात्र पर्यन्त लय —वाक् सिद्धि।
(२६) ११ अहोरात्र पर्यन्त लय —मनोगति के समान कायागति।
(२७) द्वादश अहोरात्र पर्यन्त लय —आधे निमेष में भूतल के चतुर्दिक परिभ्रमण की क्षमता।
(२८) त्रयोदश अहोरात्र पर्यन्त लय —खेचरी सिद्धि
(२९) १४, १६, १८, २० अहोरात्र पर्यन्त लय—क्रमशः अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, सिद्धियों की प्राप्ति।

इसी प्रकार और अधिक लय-काल होने पर, 'प्राप्ति' 'प्राकाम्य' ईशित्व' आदि सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है।

—(अमनस्क)

*** * अमरौघशासनोक्त योग-विधान * ***

'अमरौघशासन' नामक गोरक्ष-प्रणीत ग्रन्थ में कहा गया है कि—

(१) मेरुदण्ड के मूल में सूर्य और चन्द्र के मध्य **'योनि'** है और उसी के मध्य **'स्वयंभूज्योतिर्लिंग'** स्थित है।

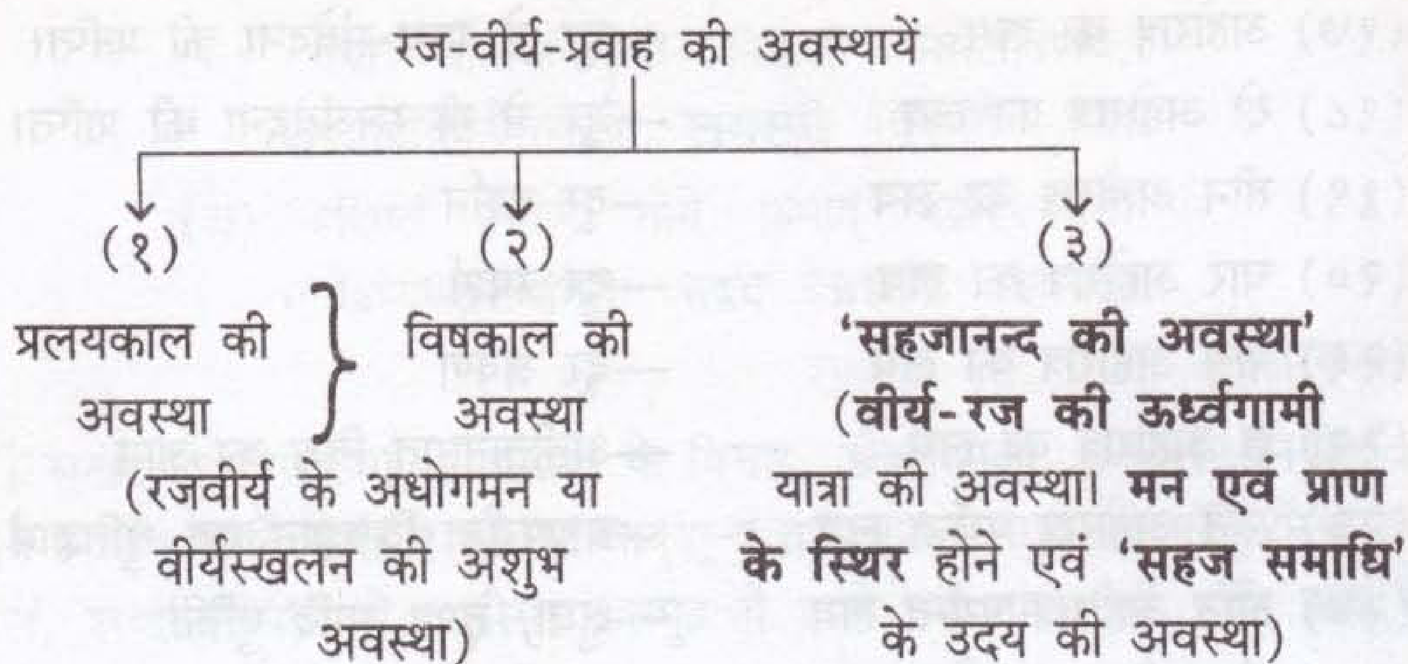
(२) यहीं पर पुरुषों के रेतस् एवं नारियों के रजः स्खलन का मार्ग भी स्थित है।

(३) यहीं पर (क) **'काम'** (ख) **'विषहर'** एवं (ग) **'निरञ्जन'** का स्थान है।

(४) वीर्य के स्खलन (अधःपतन) की दो अवस्थायें हैं—(क) **'प्रलयकाल'** (ख) **'विषकाल'**

इन दोनों अवस्थाओं का आनन्द अशुभ एवं घातक हुआ करता है।

(५) इन दोनों घातक अवस्थाओं के स्वामी पृथक्-पृथक् हैं। इसमें एक का स्वामी है—**''काम''** तथा दूसरे का स्वामी है—**''विषहर''**।



इनके अधिष्ठता हैं—(१) काम (२) विषहर

शक्तित्रयविनिर्भिन्ने चित्ते बीजनिरञ्जनात्।
वज्रपूजापदानंदं यः करोति स **मन्मथः**।
चित्ते वतृप्ते मनोमुक्तिरुर्ध्वमार्गाश्रितेऽनले।
उदानचलितं रेतो मृत्युरेखा**विषं** विदुः॥

'निरञ्जन'—'चित्तमध्येभवेद्यस्तुबालाग्रशतधाश्रये ।
नानाभावविनिर्मुक्तः स च प्रोक्तो **निरञ्जनः**॥'

—गोरक्षनाथ (अमरौघ शासनम्)

'बिन्दु' की वह तृतीयावस्था जो **नानाभावविनिर्मुक्त** और **सहजानन्दावस्थात्मक** है तथा जिसमें बिन्दु ऊर्ध्वमुखी होकर आरोहण करता है और जो 'सहजसमाधि' उदित करती है, वह मन तथा प्राण को स्थिर कर देती है।

प्र० ऊर्ध्वरेतसत्व कैसे प्राप्त किया जाय?

(१) ब्रह्मचर्य एवं (२) प्राणायाम दो ऐसे साधन हैं, जिससे बिन्दु स्थिर होते हैं और सिद्धावस्था में ऊर्ध्वमुख हो जाते हैं।

प्राणसाधना **'नाड़ीशुद्धि'** से ही सफल हो पाती है। हठयोग में जो **'षटकर्म'**, (धौति, वस्ति, त्राटक, नौलि आदि) हैं वे नाड़ीशुद्धि के कारक हैं। वे **'षट्कर्म'** इस प्रकार हैं—

'धौतिर्बस्तिस्तथा नेति लौंलिकी त्राटकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट् कर्माणि समाचरेत्॥' (घे० सं०)

घटस्थ सप्त साधन—

"शोधनं दृढ़ता चैव स्थैर्य धैर्यं च लाघवम्।
प्रत्यक्ष च निर्लिप्तिं च **घटस्थसप्तसाधनम्**॥"

घटस्थसप्तसाधन—

(१) षट्कर्मणा **शोधनं** च आसनेन भवेद दृढ़म् ।
(२) मुद्रया **स्थिरता** चैव प्रत्याहारेण **धीरता।**
(३) प्राणायामा**ल्लाघवं** च **ध्यानात्प्रत्यक्ष**मात्मनि।
(४) समाधिना **निर्लिप्तं** च मुक्तिरेव न संशयः।।[१]

नाड़ीशुद्धि→बिन्दु में स्थिरता। नाड़ीशुद्धि से बिन्दु-स्थैर्य के साथ, सुषुम्णा-पथ भी शुद्ध हो जाता है, उसमें प्राण एवं मन स्थिर होकर प्रवाहित होने लगते हैं तथा प्राण, मन एवं जीव के साथ, मूलाधार चक्र की सुषुप्त शक्ति कुण्डलिनी भी अपना स्थान त्याग कर सहस्त्रारोन्मुख होकर, परमशिव से मिलने ऊर्ध्वारोहण करने लगती है। सहस्त्रार में ही शिव के साथ शक्ति को **'समरसत्व'** या **'सामरस्य'** प्राप्त होता है।

(५) बिन्दु-साधना में 'वज्रोली' 'सहजोली' एवं 'अमरोली' क्रियायें सहायता पहुँचाती है। इस क्रिया में जननेन्द्रिय द्वारा रसाकर्षण (योगिनी द्वारा वीर्य का एवं योगी द्वारा रज का आकर्षण) किया जाता है और वीर्य या रज को स्खलित नहीं होने दिया जाता।

नाड़ी-शोधन हो जाने पर वायुओं का शमन कठिन नहीं रह जाता। अनुकूल आसन, नाड़ीयोग, प्राणपानैक्य आदि द्वारा सुषुम्णा नाड़ी से प्राण को ऊपर चढ़ाया जाता है और उसके साथ मन एवं कुण्डलिनी भी ऊपर की ओर समाकृष्ट होकर सहस्त्रार-तीर्थ की यात्रा पर निकल पड़ती हैं।

कुण्डलिनी के जाग्रत हो जाने पर **'षट्चक्रभेदन' 'ग्रंथिभेदन' चक्र-जागरण** एवं **अनाहतनाद का प्रस्फुटन** आदि एक साथ सम्पन्न होते हैं। इस समय नाद-श्रवण होने लगता है। इसकी विधि इस प्रकार है—

'अर्द्धरात्रिगते योगी जंतूनां शब्दवर्जिते।
कर्णौ पिधाय हस्ताभ्यां कुर्यात्पूरक कुंभकम्।।
श्रृणुयाद्दक्षिणो कर्णे नादमंतर्गतं शुभम्।।'

दाहिने कान से श्रुतिगोचरनाद का स्वरूप भी भिन्न-भिन्न है।

नाद के प्रकार—

(१) 'प्रथमं झिंजीनादं च'
(२)'वंशीनादं ततः परम्'
(३)'मेघझर्झरभ्रमरीघण्टाकांस्यं ततः परम्।'

---

१. घेरण्ड संहिता

(४) 'तुरी भेरीमृदंगादिनिनादानक दुंदुभिः।'
एवं नानाविधं नादं जायते नित्यमभ्यसात्॥

अनाहतनाद और विष्णु का 'परमपद'—

'अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः
ध्वनेरंतर्गतं ज्योति ज्योतेरन्तर्गतं मनः।
तन्मनो विलयं याति तद्विष्णोः परमं पदम्॥'[१]

मूलकन्द से, जो सोमसूर्यपथोद्भवस्वरूप वायु उठती है, वह शक्ति के आधारस्थल में स्थित है। मूल कन्द में कुण्डलाकार 'भुजङ्गिनी' स्थित है, जो कि शिव से पृथक् होने से 'मूलाधार चक्र' में मूर्च्छित है—

'मूलकन्दोद्यतो वायुः सोमसूर्यपथोद्भवः।
शक्त्याधारस्थितो याति ब्रह्मदण्डकभेदकः।
मूलकन्दे तु या शक्ति कुण्डलाकाररूपिणी।
कन्ददण्डेन चोद्दण्डैर्भ्रामिता या भुजङ्गिनी।
मूर्च्छिता सा शिवं वेत्ति प्राणैरेवं व्यवस्थिता॥'[२]

योगिराज गोरक्षनाथ ने **'हठयोग'** की साधना-प्रक्रिया प्रस्तुत करके पातञ्जल योग की राजयोग-साधना-प्रक्रिया को क्रमिक साधना का सोपान प्रस्तुत किया है। पातञ्जल योग हठयोगरहित है। **'राजयोग' योग का अन्तिम सोपान है।**

'हकारः कथितः सूर्यष्कारश्चंद्र उच्यते।
सूर्याच्चन्द्रमसोर्योगात् हठयोगो निगद्यते॥'

—कहकर **सिद्धसिद्धान्तपद्धतिकार** ने जिस योग-प्रणाली का विधान किया है वह गोरक्षनाथ से भी पूर्ववर्ती है।

'हठयोग की विभिन्न परम्परायें

(१)	(२)
मृकण्डु के पुत्र मार्कण्डेय —प्रवर्तित परम्परा	गोरक्ष-प्रवर्तित परम्परा

'द्विधा हठः स्यादेकस्तु गोरक्षादिसुताधितः।
अन्यो मृकण्डुपुत्राद्यैः साधितो हठ संज्ञकः॥'

(१) **मार्कण्डेय-प्रवर्तित** हठयोग परम्परा आष्टाङ्गिक है।

(२) **गोरक्ष-प्रवर्तित** हठयोग परम्परा षडाङ्ग है।

---

१. घेरण्ड संहिता, २. अमरौघ शासनम् ।

(३) **गोरक्षनाथ और योगाङ्ग**—

(क) **'गोरक्ष शतक'** में —षडङ्गयोग का प्रतिपादन।

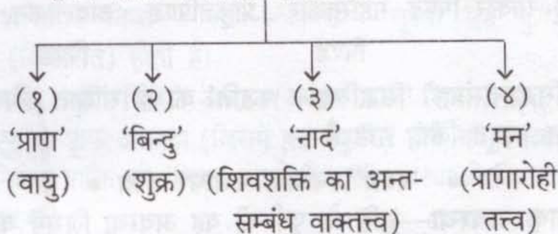
(ख) **'सिद्धसिद्धान्त संग्रह'** में —अष्टाङ्गयोग का प्रतिपादन।

पायु-उपस्थ के मध्यभाग में स्थित **'त्रिकोणचक्र'** में अवस्थित (अर्थात् **'अग्निचक्र'** में स्थित) जो **'स्वयंभूलिङ्ग'** है उसे **'साढ़े तीन या आठ'** वलयों से लपेट कर सुषुप्ता भगवती कुण्डलिनी शक्ति 'ब्रह्मद्वार' (सुषुम्णा का मुखद्वार) को अवरुद्ध करके अवस्थित है।[१] यही अपने ब्रह्माण्डव्याप्त स्वरूप में **'महाकुण्डलिनी शक्ति'** कहलाती है किन्तु व्यष्टि स्वरूप में **'कुण्डलिनी'**।

इसी कुलशक्ति को उद्बुद्ध करके **शिव से समरस** कराना **योगी का चरमलक्ष्य** है। योगी कुण्डलिनी की चाभी से मोक्षद्वार खोलता है—

'उद्घाटयेत् कपाटं तु यथा कुञ्चिकया हठात्।
कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं प्रभेदयेत्॥'

मानव शरीर में स्थित योगोपयोगी प्रधान तत्त्व

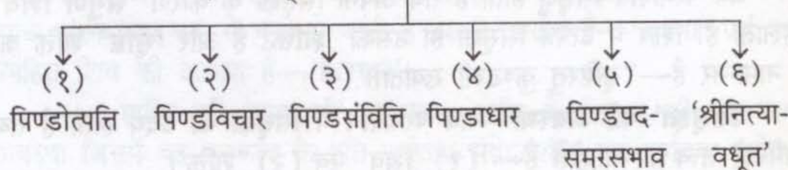


'प्राण' = 'संवित् प्राक् **प्राणे** परिणता॥' (वाक्तत्त्व)

ये चारों तत्त्व अन्तर्संबंधित हैं अतः उनमें से एक के अस्थिर होने पर अन्य सभी एवं एक के स्थिर होने पर शेष अन्य सभी स्थिर हो जाते हैं। गोरक्षनाथ ने 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' में योग विषयक दूसरी दृष्टि प्रस्तुत की है।

'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' गोरक्षनाथ का प्रसिद्ध ग्रंथ है। उसके अनुसार सारा (गोरक्षोक्त) योग शास्त्र ६ उपदेशों में वर्णित है।

* गोरक्षोक्त षड्विधात्मक 'सिद्धमत' * (सि०सि०प०)



---

१. गोरक्षपद्धति

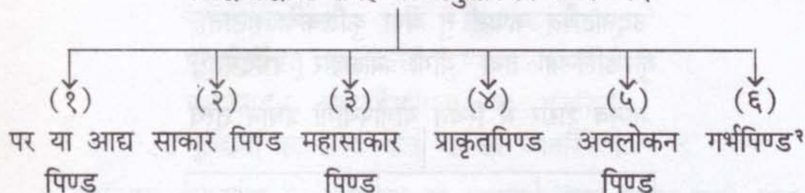
'सिद्धमते सम्यक् प्रसिद्धा 'पिण्डोत्पत्तिः' 'पिण्डविचारः।'
'पिण्डसंवित्तिः' पिण्डाधारः पिण्डपदसमरसभावः॥'
श्री नित्यावधूतः'।—'सिद्धसिद्धान्त पद्धति'

सृष्टिप्राक् अवस्था—योगी गोरक्षनाथ ने इस सृष्टि प्राक्अवस्था में स्थित अव्यक्त परब्रह्म को **'अनामा'** संज्ञा दी है—

'यदा नास्ति स्वयं कर्ता कारणं न कुलाकुलम्।
अव्यक्तश्च परं ब्रह्म 'अनामा' विद्यते तदा॥'[1]

'सिद्धसिद्धान्त पद्धति' एवं **'सिद्धसिद्धान्त संग्रह'** दोनों में पिण्डोत्पत्ति आदि विषयों पर सविस्तार प्रकाश डाला गया है।

'सिद्धसिद्धान्त संग्रह के अनुसार पिण्ड के भेद



'सिद्धसिद्धान्तसंग्रह' 'सिद्धसिद्धान्त पद्धति' का ही संक्षिप्त रूप है। सृष्टि-क्रम को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

* "स्वयं" नामक परात्पर तत्त्व *

सृष्टिप्राक् अवस्था—सृष्टि के पूर्व की वह अवस्था जिसमें कार्यकारणभाव, सृष्टिकर्तृत्व एवं कार्यकारणचक्र विद्यमान नहीं रहता और परमशिव इन सारे सृष्टि-स्थिति पालन आदि व्यापारों से अतीत रहता है (अव्यक्तावस्था में अवस्थित रहता है) **'स्वयं'** कहलाता है—

"कार्यकारणकर्तृत्वं यदा नास्ति कुलाकुलम्।
अव्यक्तं परमं तत्त्वं "**स्वयं**" नाम तदा भवेत्॥"

यही सृष्टिप्राक्अवस्था शिव की **'स्वयं'** की अवस्था कहलाती है।

सृष्टि-क्रम के विभिन्न सोपान

जब परमशिव सिसृक्षु होता है तब अपनी सिसृक्षा के कारण **'सगुण शिव'** कहलाता है। शिव में उत्पन्न सिसृक्षा ही उसकी **'शक्ति'** है और **'सृष्टि'** शक्ति का ही नामान्तर है—"सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता॥"

'सिसृक्षा' की अवस्था—जब परमशिव में सिसृक्षा का उदय होता है तब उसमें दो तत्त्व उत्पन्न होते हैं— (१) 'शिव' एवं (२) 'शक्ति'।

---

१. सि०सि०प० (१।४)
२. महा० गोपीनाथ कविराज—'सिद्धसिद्धान्तसंग्रह' की भूमिका।

'स्वयं' या **'परमशिव'** में सिसृक्षा का उदय
↓
'सगुण शिव'

(१) 'शिव'	(२) 'शक्ति'
(१) **'अपरं पदम्'** की अवस्था	(१) **'निजा' शक्ति** की अवस्था।
(२) **'परम' शिव** की अवस्था	(२) **'परा' शक्ति** की अवस्था।
(३) **'शून्य' शिव** की अवस्था	(३) **'अपरा' शक्ति** की अवस्था।
(४) **'निरञ्जनशिव'** की अवस्था	(४) **'सूक्ष्माशक्ति'** की अवस्था।
(५) **'परमात्मा शिव'** की अवस्था	(५) **'कुण्डलीशक्ति'** की अवस्था

सृष्टि-विकास की इस अवस्था में—

(क) **'शिव'**—'अपर'-'परम'—'शून्य'—'निरंजन' एवं 'परमात्मा' के रूप में तथा

(ख) **'शक्ति'**—'निजा'—'परा'—'अपरा'—'सूक्ष्मा' एवं 'कुण्डली' के रूप में रूपान्तरित (विकसित) होती है।

(१) **शक्ति की 'निजा' अवस्था**—जब परम शिव सिसृक्षु होता है तब उसकी सृष्टि-स्फुरण प्राक् अवस्था (जिसमें वह **स्फुरित होने को उपक्रान्त होता** है।) में उसकी स्वनिहित शक्ति को 'निजा' कहते हैं। इस अवस्था में स्थित शिव का नाम है—**'अपरं पदम्'**।

(२) **शक्ति की 'परा' अवस्था**—स्फुरण-पूर्ववर्ती जो निजा शक्ति अभी परमशिव की अवस्था मात्र धर्म से युक्त थी और स्फुरित होने को उपक्रान्त होकर भी स्फुरित नहीं हुई थी अब इस अवस्था में स्फुरणोन्मुखी हो जाती है और **'परा'** शक्ति कहते हैं तथा उसे अधिष्ठाता शिव को **'परम'** कहा जाता है।

(३) **शक्ति की 'अपरा' अवस्था**—यह शक्ति की वह स्फुरणधर्मा अवस्था है जिसमें शक्ति स्पन्दित हो जाती है और शक्ति के इस स्वरूप के साथ जो शिव संश्लिष्ट हैं उनका नाम है—**'शून्य'**।

(४) **शक्ति की 'सूक्ष्मा' अवस्था**—शक्ति के विकास का वह स्तर जिसमें शक्ति सूक्ष्म **'अहन्ता'** से युक्त हो जाती है उसकी आख्या है—**'सूक्ष्मा'** एवं उससे उपहित शिव की आख्या है—**'निरञ्जन'**।

(५) **शक्ति की 'कुण्डली' अवस्था**—शक्ति के विकास की वह परवर्ती अवस्था जिसमें वह पृथकत्व के प्रति पूर्णतया संवेदनशील एवं पूर्णतया सचेत हो जाती है **'कुण्डली'** कहलाती है तथा उससे सम्बद्ध शिव **'परमात्मा'** कहे जाते हैं।

'निजा पराऽपरा सूक्ष्मा कुण्डली तासु पञ्चधा।
शक्तिचक्रक्रमेणैव जातः पिण्डः परः शिवे।'

'ततोऽस्मितापूर्वमर्चिर्मात्रं स्यात्परं परम्।
तत्स्वसंवेदनाभासमुत्पन्नं परमं पदम्॥
स्वेच्छामात्रं ततः शून्यं सत्तामात्रं निरञ्जनम्।
तस्मात्ततः स्वसाक्षादभूः परमात्मपदं मतम्।'

—सिद्धसिद्धान्तसंग्रह (१/१-३-१-५)

*** 'स्वयं' (परशिव) की सिसृक्षा के विविध विकास-सोपान हैं—**

'अव्यक्त स्वयं'—

कार्यकारणकर्तृत्वं यदा नास्ति कुलाकुलम्।
अव्यक्तं परमं तत्त्वं **'स्वयं'** नाम तदा भवेत्॥

'निजा शक्ति'—

तस्यावस्थामात्रधर्मधर्मिणीति प्रसिद्धिभाक्।
निजाशक्तिरभूत् तस्या औन्मुख्याङ्का **परोत्थिता।।'**

इसी प्रकार—

ततः स्पन्दमात्रा **स्यादपरेति** स्मृता ततः।
सूक्ष्माहन्तार्धार्धमात्रा चिच्छिलाकुण्डलिन्यतः॥

'निजा' के गुण—५ गुण

निराकृतित्वान्नित्यत्वान्निरन्तरतया तथा।
निष्पन्दत्वान्निरुत्थत्वान्निजाः पञ्चगुणा स्मृताः॥

(निराकृतित्व। नित्यत्व। निरन्तरत्व। निष्पंदत्व। निरुत्थत्व) (१/७)

'परा' के गुण—५गुण

अस्तित्वमप्रभेयत्वमभिन्नत्वमनन्तता।
अव्यक्तेति पञ्चस्युः परायां **सम्मता** गुणाः॥ (१/८) (सि०सि०प०)

(अस्तित्व, अप्रमेयत्व, अभिन्नत्व। अनन्तत्व अव्यक्तत्व॥)

'अपरा' शक्ति के गुण—५ गुण

स्फुरत्तास्फारतायुक्ता स्फुरता स्फोरता तथा।
स्फूर्तिरेवं पञ्च गुणा अपरायामपि स्मृताः॥

'सूक्ष्मा' शक्ति के गुण—५ गुण

निरन्तरत्वं नैरंश्यं नैश्चल्यं निश्चयत्वकम्।
निर्विकल्पत्वमेव स्यात् सूक्ष्माया गुण पंञ्चकम्।

(नैरन्तर्य, नैरंश्य, नैश्चल्य, निश्चयत्व, निर्विकल्पकत्व।)

'कुण्डली' शक्ति के गुण—५ गुण

पूर्णत्वं प्रतिबिम्बत्वं तथा प्रकृतिरूपता।
प्रत्यङमुखत्वमौच्चल्यं पञ्चैते भोगिनां गुणाः।

(पूर्णत्व, प्रतिबिम्ब, प्रकृतिरूपत्व, प्रत्यङमुख, औच्चल्य)

—सिद्धसिद्धान्तसंग्रह

* सिसृक्षु परमशिव की सिसृक्षा एवं सृष्टि-विकास के विभिन्न सोपान *



'परो हि शक्तिरहितः शक्तः कर्तुं न किञ्चन। शक्तस्तु परमेशानि शक्त्या युक्तो यदा भवेत् ॥'
—वामकेश्वर तंत्र

'शिव' एवं 'शक्ति' के स्फुरण का विकास (प्रथम दो तत्त्व)

'शिव'

'अपर' शिव

'परम' शिव

'शून्य' शिव

'निरञ्जन' शिव

'परमात्मा' शिव

(स्फुरण के स्फुट, स्फुटतर एवं स्फुटतम विकास के अनुसार शिव एवं शक्ति के स्फुट, स्फुटतर एवं स्फुटतम स्वरूपों के विभिन्न सोपान।)

'शक्ति'

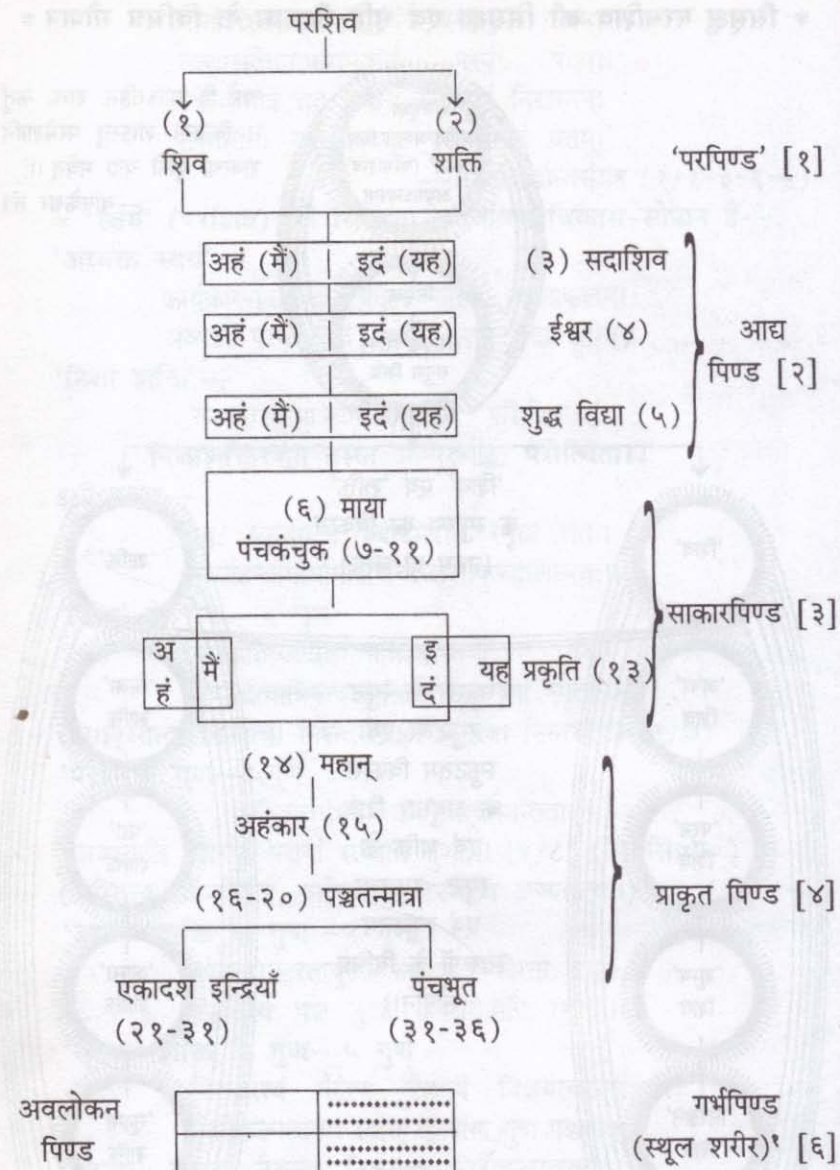
'निजा' शक्ति

'परा' शक्ति

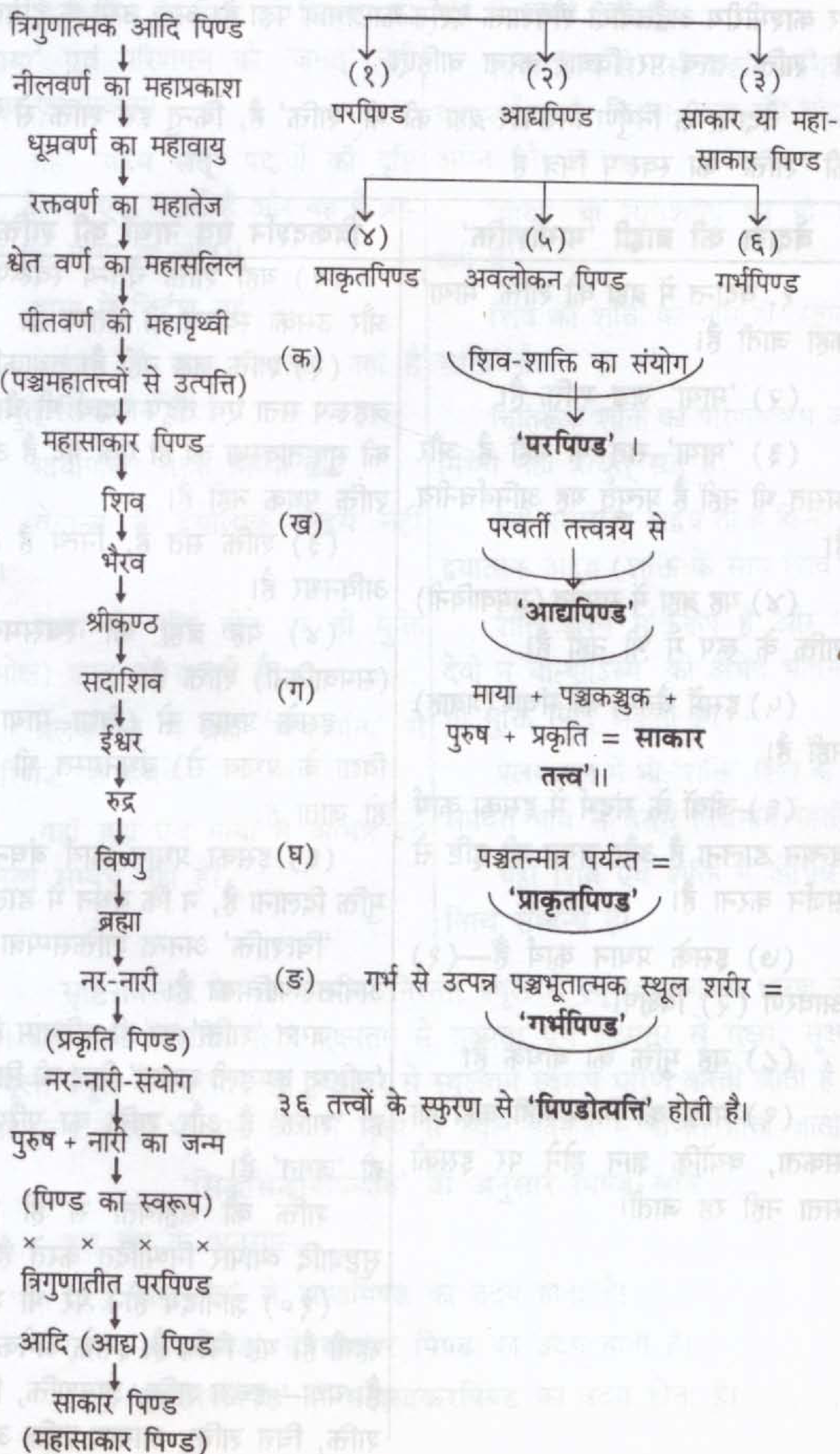
'अपरा' शक्ति

'सूक्ष्मा' शक्ति

'कुण्डली' शक्ति



१. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी । 'नाथसम्प्रदाय'।



सृष्टि-क्रम—
त्रिगुणात्मक आदि पिण्ड
नीलवर्ण का महाप्रकाश
धूम्रवर्ण का महावायु
रक्तवर्ण का महातेज
श्वेत वर्ण का महासलिल
पीतवर्ण की महापृथ्वी
(पञ्चमहातत्त्वों से उत्पत्ति)
महासाकार पिण्ड
शिव
भैरव
श्रीकण्ठ
सदाशिव
ईश्वर
रुद्र
विष्णु
ब्रह्मा
नर-नारी
(प्रकृति पिण्ड)
नर-नारी-संयोग
पुरुष + नारी का जन्म
(पिण्ड का स्वरूप)
× × × ×
त्रिगुणातीत परपिण्ड
आदि (आद्य) पिण्ड
साकार पिण्ड
(महासाकार पिण्ड)
मुख्य ६ पिण्ड
(१) परपिण्ड
(२) आद्यपिण्ड
(३) साकार या महा-साकार पिण्ड
(४) प्राकृतपिण्ड
(५) अवलोकन पिण्ड
(६) गर्भपिण्ड
(क) शिव-शक्ति का संयोग
'परपिण्ड'।
(ख) परवर्ती तत्त्वत्रय से
'आद्यपिण्ड'
(ग) माया + पञ्चकञ्चुक + पुरुष + प्रकृति = साकार तत्त्व'॥
(घ) पञ्चतन्मात्र पर्यन्त =
'प्राकृतपिण्ड'
(ङ) गर्भ से उत्पन्न पञ्चभूतात्मक स्थूल शरीर =
'गर्भपिण्ड'
३६ तत्त्वों के स्फुरण से 'पिण्डोत्पत्ति' होती है।

वेदान्तदर्शन, सिद्धमत तथा त्रिक दर्शन की 'शक्ति'—चूँकि नाथ-सम्प्रदाय पर काश्मीरीय अद्वैतवादी शैवशाक्त दर्शन का प्रभाव पड़ा है। अतः उसी के दृष्टिकोण से 'शक्ति' तत्त्व पर विचार करना चाहिए।

वेदान्त के निर्गुण निराकार ब्रह्म की भी 'शक्ति' है, किन्तु इस शक्ति से नाथों की 'शक्ति' का स्वरूप भिन्न है

वेदान्त की ब्राह्मी 'मायाशक्ति'	त्रिकदर्शन एवं नाथों की शक्ति
१. वेदान्त में ब्रह्म की शक्ति 'माया' कही जाती है।	(१) यहाँ शक्ति चैतन्य स्वरूप है और उसका स्वरूप ही चैतन्य है।
(२) 'माया' जड़ शक्ति है।	(२) शक्ति जड़ नहीं है। तथाकथित जड़रूप सत्ता एवं तद्रूप पदार्थ भी चैतन्य की सुषुप्तावस्था का ही एक भेद है अतः शक्ति पृथक नहीं है।
(३) 'माया' सत् भी नहीं है और असत् भी नहीं है प्रत्युत् यह अनिर्वचनीय है।	(३) शक्ति सत है, नित्य है और अविनश्वर है।
(४) यह ब्रह्म में समवेत (समवायिनी) शक्ति के रूप में भी नहीं है।	(४) यह ब्रह्म की स्वसमवेता (समवायिनी) शक्ति है।
(५) इसमें चैतन्य का संचार (प्रवाह) नहीं है।	इसके प्रभाव से (विद्या माया या विद्या के प्रभाव से) बंधनग्रस्त भी मुक्त हो जाता है।
(६) जीवों के संदर्भ में इसका कार्य बन्धन डालना है और जगत की दृष्टि से सर्जन करना है।	(६) इसका प्रधान कार्य बंधन से मुक्ति दिलाना है, न कि बंधन में डालना। 'चित्शक्ति' अनन्त शक्तिसम्पन्ना एवं अनन्तरूपात्मिका है।
(७) इसके प्रधान कार्य हैं—(१) आवरण (२) विक्षेप।	जगत 'शक्ति' का ही परिणाम है— 'सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता' शिव की सिसृक्षा ही 'शक्ति' है और शक्ति का परिणमन ही 'जगत' है।
(८) यह मुक्ति का बाधक है।	शक्ति की सहायता से ही शिव सृष्ट्यादि व्यापार निष्पादित करते हैं।
(९) माया को नित्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ज्ञान होने पर इसकी सत्ता नहीं रह जाती।	(१०) ज्ञानोदय होने पर भी शक्ति रहती है। यह नित्य है। इसके अनेक भेद हैं। यथा—इच्छा शक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रिया शक्ति, चित्त शक्ति, आनन्द शक्ति आदि।

माया भी असीम शक्तिसम्पन्ना है तथापि शिव के अधीन है। शिव की सिसृक्षा को 'माया' एवं परिणमन को 'जगत्' नहीं कहा जा सकता।

यहाँ **'परम सत्'** पदार्थों की दृष्टि से, केवल एक पदार्थ है और वह है ब्रह्म (न कि माया या जीव)।

माया में चिदंश नहीं है।

वेदान्त की माया **'स्वतंत्र'** नहीं है प्रत्युत् शिवाधीन है।

मायोपहित जगत मिथ्या है।

वेदान्त में द्वयात्मक अद्वय नहीं है।

माया से मुक्ति होने पर ही मुक्ति (मोक्ष) प्राप्त हो सकती है।

प्रलयकाल में ब्रह्म 'मायाशक्ति' से परिणद्ध या समवेत नहीं रहता।

यहाँ ब्रह्म एवं माया में अभिन्न एवं नित्य सम्बंध नहीं है।

शक्ति से रहित शिव कुछ भी कर पाने में समर्थ नहीं है।

शक्ति शिव से उसी प्रकार अभिन्न है यथा शर्करा और मिठास, चन्द्र और चाँदनी, अग्नि और ताप।।

'माया' भी चितशक्ति का ही एक रूप है।

शिव की शक्ति का नाम ही 'स्वातंत्र्य शक्ति' है।

चितिरूपा शक्ति का परिणामरूप जगत मिथ्या नहीं प्रत्युत् सत् है।

यहाँ परमसत्य अद्वय तो है किन्तु यहाँ द्वयात्मक अद्वय (शक्ति के साथ शिव) है।

शक्ति स्वयं मुक्तिरूप है और 'अहं देवी न चान्योऽस्मि' की अभेद भावना से भी मुक्ति मिल सकती है।

प्रलयकाल में भी 'शक्ति' शिव के साथ समवेत भाव से उसमें विद्यमान रहती है।

यहाँ शिव एवं शक्ति में अभिन्न एवं नित्य सम्बन्ध है।

सृष्टि-विस्तार के लिए 'शक्ति' निरन्तर स्थूल से स्थूलतर स्वरूप धारण करती है। इसी क्रम में शक्ति पहले सूक्ष्मतम से सूक्ष्मतर एवं सूक्ष्मतर से सूक्ष्म, सूक्ष्म से स्थूल, स्थूल से स्थूलतर एवं स्थूलतर से स्थूलतम स्वरूप धारण करती जाती है और तदनुरूप जगत भी इसी क्रम में सूक्ष्म से स्थूल स्वरूप में पणित होता जाता है।

'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' के अनुसार पिण्ड-सृष्टि

इस ग्रंथ के अनुसार—

(१) **'परपिण्ड'** से **आद्यपिण्ड** का उदय होता है।

(२) **'आद्यपिण्ड'** से **साकार पिण्ड** का उदय होता है।

(३) **'साकारपिण्ड'** से **महासाकरपिण्ड** का उदय होता है।

(४) **'महासाकारपिण्ड'** से **प्राकृतपिण्ड** का उदय होता है।

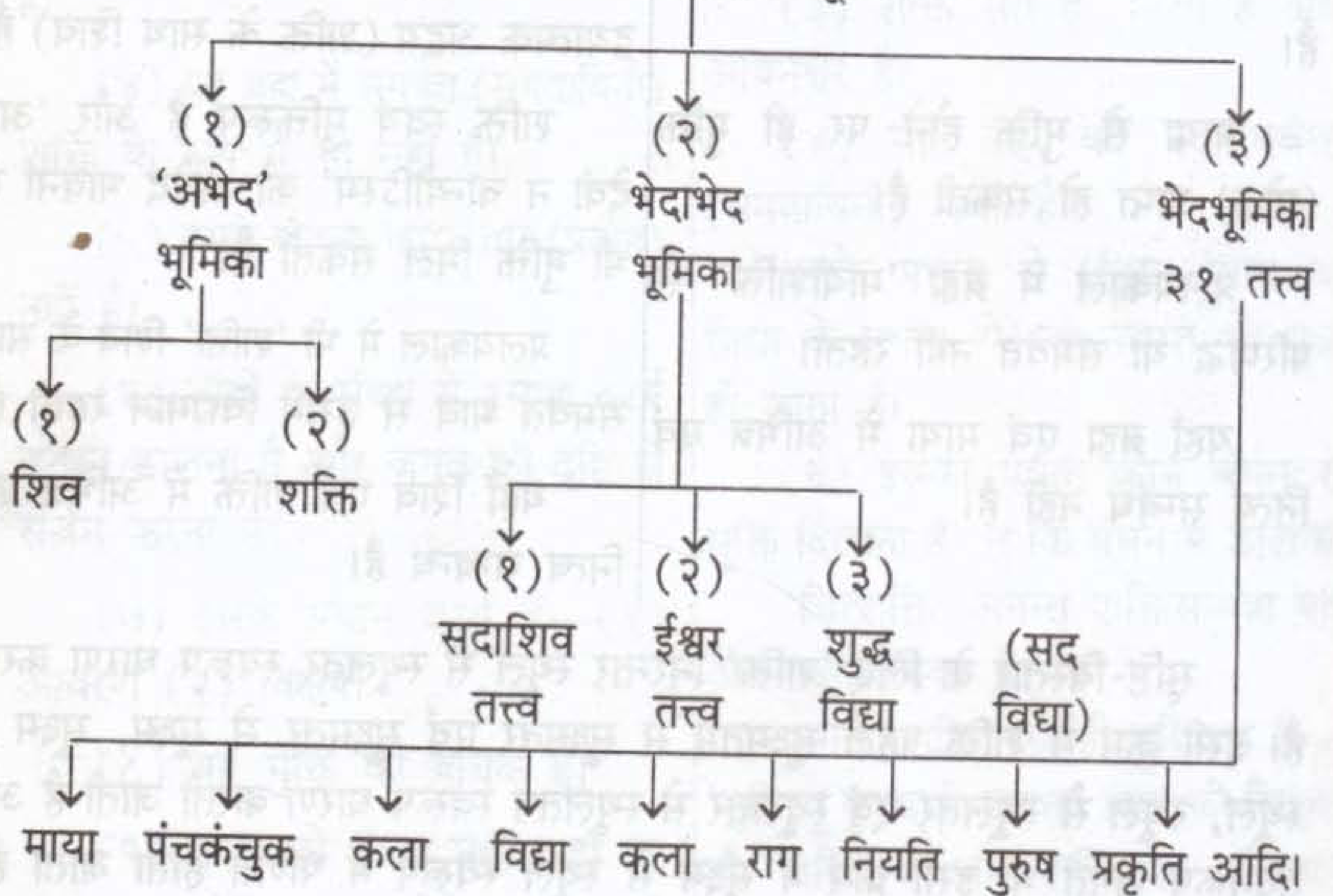
(५) **'प्राकृतपिण्ड'** से **गर्भपिण्ड** का उदय होता है।

२५-२५ तत्त्वों से पिण्डोत्पत्ति होती है। वैसे तो 'सिद्धसिद्धान्तसंग्रह' ६ प्रकार की पिण्डोत्पत्ति स्वीकार करता है किन्तु उमसें कई प्रकार की पिण्डोत्पत्ति प्रक्रियाये उल्लिखित है।

'परपिण्ड'—**'आद्यपिण्ड'**—**'साकारपिण्ड'**—**'महासाकारपिण्ड'**—**'प्राकृतपिण्ड'** एवं **'गर्भपिण्ड'** में से प्रत्येक पिण्ड पूर्ववर्ती पिण्डों से स्थूलतर है। **'गर्भपिण्ड'** से ही स्थूल शरीर का निर्माण होता है।

* काश्मीरीय शैव दर्शन और सृष्टि-प्रक्रिया *

काश्मीरीय अद्वैतवादी शैव-शाक्त दर्शन का नाथ-सम्प्रदाय पर पुष्कल प्रभाव है अत: उस पर प्रकाश डालना भी आवश्यक है।



तत्त्व और सृष्टि-क्रम

परमेश्वर अवरोह-क्रम से अपने भीतर ही ३६ तत्त्वों का स्वेच्छया आभासन करता है जो इस प्रकार हैं—

(१) **अभेद भूमिका**—(क) शिव (ख) शक्ति।

(२) **भेदाभेदभूमिका**—(क) सदाशिव (ख) ईश्वर तत्त्व (ग) 'शुद्धविद्या' या 'सद्विद्या'

(३) **भेदभूमिका**—(६) माया (७) कला (८) विद्या (९) राग (१०) काल (११) नियति (१२) पुरुष (१३) प्रकृति (१४) बुद्धि (१५) अहंकार (१६) मन (१७) श्रोत्र (१८) त्वक् (१९) चक्षु (२०) जिह्वा (२१) घ्राण (२२) वाक् (२३) पाणि (२४) पाद (२५) वायु (२६) उपस्थ (२७) शब्द (२८) स्पर्श (२९) रूप (३०) रस (३१) गन्ध (३२) आकाश (३३) वायु (३४) वह्नि (३५) सलिल (३६) पृथिवी।

शिव से पृथ्वी तक ३६ तत्त्व हैं। शिव से पृथ्वी पर्यन्त ३६ तत्त्वों में अभेदात्मना स्फुरित आत्मा का इच्छा-प्रसार ही विश्व है।

काश्मीरी अद्वैतवादी शैव दर्शन का अद्वैत रूप परमतत्त्व तत्त्वातीत है और उसे **'परमशिव'** एवं **'चिति'** या **'आत्मा'** कहा गया है। यही **'परा संवित्'** एवं **'अनुत्तर'** भी कहा गया है। इसी में षट्त्रिंशदात्म जगत स्थित है—

'यत् पर तत्त्वं तस्मिन् विभाति षट् त्रिंशदात्मजगत्।'

—परमार्थसारकारिका (११)

इसी चिद्धन को अनुत्तर भी कहा गया है—

'अनुत्तरं न विद्यते प्रकृष्टमुत्तरं यतस्तरनुत्तरं चिद्घनम् ।। (परात्रिंशिका विवृति)

यह परतत्त्व **'प्रकाशविमर्शमय'** है।

'प्रकाश' आत्मा का स्वरूप है।

'विमर्श' प्रकाश रूप परमात्मा के स्वरूप की प्रतीत है। यह **'विमर्श'** (शक्ति तत्त्व) ही शिव का महेश्वरता की प्रतीति है। यही शिव परासंवित् है—चिति है। चिति ही परासंवित है। 'चिति' परमशिव है। यही आत्मा भी है : 'चैतन्यमात्मा' (शिवसूत्र)।

'विमर्श' ही परमशिव का अहं है। **'प्रकाश'** शिवस्वरूप है। **'शक्ति'** शक्तिरूप है। शक्तिस्वभाव से सम्पन्न होने पर ही शिव 'कर्ता' (कर्तृत्वाधिकारी) बन पाता है।

[१-२] **'शिव' और 'शक्ति'**—ये दोनों परमशिव के दो रूप हैं।

शिव एवं शक्ति में अभेद—'शिवदृष्टि' में सोमानन्दपाद कहते हैं कि शिव एवं शक्ति आपस में कभी एक-दूसरे से पृथक नहीं हो सकते।

"न शिवः शक्ति-रहितो न शक्तिर्व्यतिरेकिणी।
शिव शक्तस्तथा भावानिच्छया कर्तुभीहते।
शिव शक्तस्तथा भावानिच्छया कर्तुमीहते।
शक्तिशक्तिमतोभेदः शैवे जातु न वर्ण्यते।।"

—शिवदृष्टि (३१२-३)

शक्ति है—'कर्तुं अकर्तुं तथा अन्यथाकर्तुं' की क्षमता।

विमर्श क्या है?—**'विमर्शो** हि सर्वसहः परमपि आत्मीकरोति, आत्मानं च परीकरोति, उभयम् एकीकरोति एकीकृतं द्वयमपि न्यग्भावयति इत्येवं स्वभावः।।

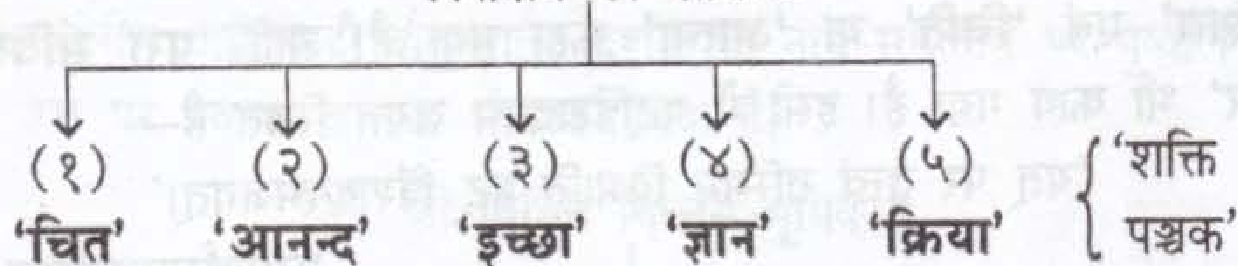
—ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी

'शक्ति' आत्मारूपी परमशिव का दर्पण है। परमेश्वर की इच्छाशक्ति ही **'स्वातंत्र्य शक्ति'** कहलाती है। शिव 'स्वतंत्र' हैं।

परामशिव विश्वोत्तीर्ण है। विश्व परमशिव (आत्मा) का शंक्तिसंघात है—

'स्वशक्तिप्रचयोऽस्य विश्व'८ (शिवसूत्र ३/३०)

परमशिव की शक्तियाँ



[३] **सदाशिव**—आभास-क्रम में तृतीय तत्त्व 'सदाशिव' हैं। इसका जन्म शिव की इच्छाशक्ति से हुआ है। शिव की इच्छा का अन्तर्मुख स्पंद **'ज्ञानशक्ति'** एवं बहिर्मुख स्पन्द**'क्रियाशक्ति'** है। अन्तर्मुख स्पन्द का उल्लासन (आन्तर ज्ञान दशा) ही **'सदाशिव तत्त्व'** है। सदाशिव दशा के प्रमाता की पारिभाषिक संज्ञा **'मंत्रमहेश्वर'** है। मंत्रमहेश्वर के विमर्श का स्वरूप है—इसमें अहम् शिव का एवं 'इदम्' विश्व का परिचायक है।



यहाँ 'अहन्ता' प्रधान है और 'इदन्ता' गौण है।

'पराप्रावेशिका' में कहा गया है—

'सदेवांकुरायमाणमिदं जगत् स्वात्मनाहन्तयाच्छाद्य स्थितं रूप **सदाशिवतत्त्वम्** ।।'

'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी' में कहा गया है—

'ततश्चान्तरी ज्ञानरूपा या दशा तस्या उद्रेकाभासने सादाख्यं.......**सदाशिव-**रूपाया इदं वाच्यं तत्त्वम् ।।' 'निमेषोऽन्तः **सदाशिवः** ।।' (ईश्वर प्रत्य०)

मंत्रमहेश्वर प्रमाता का जो अस्फुट वेद्य सा ज्ञानरूप चित विशेषत्व है उसे ही **'सदाशिव तत्त्व'** कहते हैं। **'शिव-शक्ति'** की सामरस्यावस्था में सत असत् जैसे विकल्प उदित नहीं होते अतः सृष्टि के विकास में यह **'सदाशिव'** प्रथम तत्त्व है जिससे सत् का ज्ञान होता है। शैवागमों में इसे **'निमेष'** कहा गया है।

[४] **ईश्वर तत्त्व'**—यह आभासन-क्रिया में चतुर्थ तत्त्व है। शिव की इच्छा

का अन्तर्मुख स्पन्द **'सदाशिव'** है और बहिर्मुखी स्पन्द **'ईश्वरतत्त्व'** है। इसकी अभिव्यक्ति शिवेच्छा में 'क्रियाशक्ति' के उद्रेक से होती है।

'बहिर्भावस्य क्रियाशक्तिमयस्य परत्वे उद्रेकाभासे सति पारमेश्वरं परमेश्वर शब्दवाच्य**मीश्वरत्वं** नाम॥'
—ईश्वर प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी

सदाशिव तत्त्व में जो विश्व 'अंकुरायमाण अवस्था में रहता है और **अहन्ता-परामर्श-प्राधान्य** के कारण अस्फुट था, वही ईश्वर तत्त्व की दशा में अंकुरित होकर स्फुटभाव से परामृष्ट होने लगता है।

शिवतत्त्व का विमर्श है—(इदमहम्)—



यहाँ इदम् प्रधान है और अहं गौण है। यहाँ अहं का परामर्श अस्फुट रहता है किन्तु 'इदम्' का परामर्श स्फुट रहता है।

स्पन्दविवृतिकार ने कहा कि—क्रिया के प्राधान्य के कारण उन्मिषित शक्ति की परम अहंभाव में जो विश्रान्ति है उसे **'ईश्वरदशा'** कहते हैं।

ईश्वरदशा—'यत्र पुनः शक्तेषः क्रियाप्राधान्येन बहिर्गृहीतोन्मेषायाः पराहंभावविश्रान्तिः सा ईश्वरदशा'।
—स्पन्द विवृति

अहं—परामर्श की दृष्टि से 'सदाशिव तत्त्व' एवं 'ईश्वरतत्त्व' में अभेद है किन्तु 'इदम्' के परामर्श की दृष्टि से भेद है। 'इदम्' की अस्फुटता एवं स्फुटता ही दोनों में वैभिन्य का कारण है। 'सदाशिव' में इदम् अस्फुट है किन्तु ईश्वरतत्त्व में स्फुट है। **'ईश्वरो बहिरुन्मेषो'** ईश्वर बहिरुन्मेष है।

[५] **'शुद्धविद्या'** (सद्विद्या)—विश्वोल्लासन के व्यापार में शुद्ध विद्या पंचम तत्त्व है। शिव का 'अहं' रूप अभेद-बोधक है किन्तु सद्विद्यावस्था में विमर्श का स्वरूप 'अहम् इदम्' इस प्रत्यय द्वारा प्रकट किया जाता है क्योंकि यहाँ 'अहम्' एवं 'इदम्' में सामान्याधिकरण्य है—

'सा भवति शुद्धविद्या येदन्ताहन्तयोरभेदमतिः।'
—षट्त्रिंशतत्त्वसन्दोह

जैसे परमशिव का बहिः औन्मुख्य 'शक्तितत्त्व' कहलाता है उसी प्रकार 'सदाशिव' एवं 'ईश्वर' का बाह्य औन्मुख **'शुद्धविद्यातत्त्व'** कहलाता है।

'अहम् इदम् अस्मि'—यह विमर्श 'शुद्धविद्या' कहलाता है। 'शक्ति' का उन्मेषनिमेष ही क्रमशः **'सदाशिव'** एवं **ईश्वर'** कहा जाता है।

'उन्मेष निमेषौ बहिरन्तःस्थिती एवेश्वरसदाशिवौ बाह्याभ्यन्तरयोर्वेद्यवेदकयोरेक-

चिन्मात्रविशान्तेरभेदात्सामानाधिकरण्येनेदं विश्वमहमिति विश्वात्मनो मतिः शुद्धविद्या।।'

—ईश्वरप्रत्यभिज्ञावृत्ति

[६] **'माया'**—भेदात्मिका सृष्टि का छठवां तत्त्व **'माया'** है। यह परमेश्वर की **'स्वातंत्र्य शक्ति'** ही है—'परमेश्वरस्य भेदावभासने स्वातंत्र्यं तदेवाव्यतिरेकिणी अपूर्णता प्रथनेन मीनाति हिनस्ति इति माया शक्तिः।।'

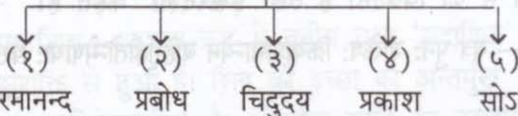
—तन्त्रालोक की टीका

यह परमेश्वर की **स्वरूप गोपनात्मिका इच्छा शक्ति है**—

'माया स्वरूपगोपनात्मिका पारमेश्वरी इच्छाशक्तिः।।'

—तन्त्रालोक की टीका

सृष्टि को विकासोन्मुख करने हेतु **'अहन्ता'** ५ सोपानों से होकर गुजरती है। इन अवस्थाओं की आख्या **'आनन्द'** है ।



इन्हीं आनन्दों के भीतर से यात्रा करते हुए शिव क्रमशः **जीवरूपत्व** की ओर अग्रपद होते हैं।

पिण्डब्रह्माण्डैक्यवाद—ब्रह्माण्ड के निर्माण में जो-जो अवस्थायें अतिक्रान्त करनी पड़ती हैं वही-वही अवस्थायें पिण्ड के निर्माण में अतिक्रान्त करनी पड़ती है। पिण्ड-ब्रह्माण्ड दोनों में एक ही तत्त्व है। पिण्ड में ब्रह्माण्ड अन्तर्निहित है।

'कुण्डलिनी शक्ति' भी पिण्ड एवं ब्रह्माण्ड दोनों में स्थित है। 'ब्रह्माण्डवर्ति यत् किंचित् तत् पिण्डेप्यस्ति सर्वथा।।'' —(सि०सि०सं० ३/२)

अद्वैतवाद और नाथपन्थ—नाथपन्थी अद्वैतवाद के प्रतिपादक हैं किन्तु उन्होंने शाङ्कर अद्वैत को स्वीकार नहीं किया है। नाथमार्गियों ने कहा—

(१) 'महासिद्धैरुक्तं यदद्वैताद्वैतविवर्जितं पदं निश्चलं दृश्यत तदेवसम्यगित्यभ्युपगभिष्यामः।।' —गोरक्षसिद्धान्त संग्रह

'गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह' में यह भी कहा गया है कि—

'अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे।
समं तत्त्वं न विन्दन्ति द्वैताद्वैतवलक्षणम्।

यदि सर्वगतो देवः स्थिरः पूर्णो निरन्तरः।
अहो माया महामोहो द्वैताद्वैतविकल्पना।।'

—अवधूतगीता।

आद्य स्फोट और जगत—चूँकि सृष्टि का उद्भव या जगत की उत्पत्ति 'शक्ति' के स्फोट के अनन्तर ही होती है। अतः जगत की सृष्टि का मूल सूत्रधार तो शक्ति ही सिद्ध होती है। ठीक भी है—

(१) 'चितिः स्वतंत्रा विश्वसिद्धि हेतुः।।'[१]

(२) 'स्वेच्छया स्वभित्तौविश्वमुन्मीलयति।।'

(३) 'चिदेव भगवती स्वच्छस्वतंत्ररूपा ततदनन्त जगदात्मना स्फुरति—इत्येतावत्परमार्थोऽयं—कार्यकारणभावः।।'[२]

(४) 'चितिः एव भगवती स्वतंत्रा अनुत्तरविमर्शमयी शिवट्टारकाभिन्ना हेतुः कारणम्।।'

—प्रत्यभिज्ञा हृदयम् ।

स्पष्ट है कि जगत्कर्त्री तो **'शक्ति'** है। शिव केवल ज्ञेय है, वह सृष्टिकर्ता नहीं है। वैसे शिव को पञ्चक्रियाकर्ता भी कहा जाता है। **'शक्ति'** और **'शिव'** में अभेद है, अतः यदि शिव अपनी स्वसमवेता एवं स्वाभिन्ना शक्तियों के माध्यम से कोई व्यापार निष्पादित करता है तो उसे भी शिव का ही व्यापार कहा जाएगा।

नाथ साधना का लक्ष्य—नाथ-साधना का लक्ष्य **'पिण्डपदसमरसीकरण''** **'समरसत्व'** **'शिवशक्तिमारस्य'** या **'शिवशक्ति-सङ्गम'** है।

किसी अनादिकाल में 'शिव' और 'शक्ति' 'परमशिव' से पृथक् हुए थे और वे निरन्तर स्थूलता की दिशा में बढ़ते ही गए और अपने स्वरूप को भूल गए। एक दिन 'शिव' और 'शक्ति' दोनों एकरस हो जायेंगे। तब सृष्टि-चक्र का अन्त भी हो जाएगा।

कुण्डलिनी योग—परमशिव की शक्ति, मानव पिण्ड के मूलाधार चक्र में, प्राणी के जन्मजन्मान्तर के संचित मलों (आणव कमल, कर्म मल आदि मलों) के भार से आक्रान्त होकर स्थित है। **'नाड़ी-शोधन'** **'भस्त्रिका'** (प्राणायाम) **'षट्चक्रभेदन'** **'ग्रंथि-उद्भेद'** **'नादानुसन्धान'** **'प्रणवसाधना'** **प्राणापानैक्य-योग** आदि साधनों से कुण्डलिनी को 'ब्रह्मनाड़ी' में ले जाकर सारे तत्त्वों, सारी ग्रंथियों एवं सारे चक्रों का

---

१. प्रत्यभिज्ञा हृदयम् (१) (२) प्रत्य० हृ० (२)

२. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् —आचार्य क्षेमराज

वेधन कराते हुए उसका 'सहस्रार' में परमशिव से सामरस्य कराना ही शरीर के अमृतीकरण, मोक्ष एवं जीवन्मुक्ति का मार्ग है।

सृष्टि और शक्ति में एकत्व

'सिद्धसिद्धान्त संग्रहकार' ने सृष्टि एवं शक्ति को अभिन्न माना है—

'सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता सर्वभावगता हि सा।
बहुधा स्थूलरूपा च लोकानां प्रत्ययात्मिका।
अपरा सर्वगा सूक्ष्मा व्याप्तिव्यापक-वर्जिता।
तस्या भेदं न जानाति मोहितः प्रत्यये न तु।
ततः सूक्ष्मा परासंवित् मध्यशक्तिमहेश्वरी॥'

अद्वैतवाद और 'गोरक्षोपनिषद' की दृष्टि—इस ग्रंथ में कहा गया है कि अद्वैत से परतर भी सत्ता है।

(१) अद्वैत के ऊर्ध्व में **सदानन्द देवता स्थित** हैं।

अद्वैतभाव ही चरमावस्था नहीं है प्रत्युत् **'सदानन्द'**-अवस्था उससे भी ऊर्ध्ववर्ती है।

नाथ स्वरूप में ही मुक्ति है।
(१) **'शक्ति'** सृष्टि करती है।
(२) **'शिव'** पालन करते हैं।
(३) **'काल'** संहार करते हैं।
(४) **'नाथ'** मुक्ति देते हैं।
(५) **'नाथ'** सगुण-निर्गुण दोनों से परे हैं।

'सिद्धसिद्धान्तपद्धतिकार' की दृष्टि—ग्रंथकार का कथन है कि सबसे परे स्वयं ज्योतिस्वरूप सच्चिदानन्द मूर्ति ही परतत्त्व है—

'न ब्रह्मा विष्णु रुद्रौ न सुरपतिसुरा नैव पृथ्वी न चापो।
नैवाग्निर्वापिवायुर्न च गगनतलं नो दिशो नैव कालः।
नो वेदा नैव यज्ञा न च रविशशिनौ नो विधिः नैव कल्पः।
स्वज्योतिः सत्यमेकं जयति तव पदं सच्चिदानन्दमूर्तें॥'

—सिद्धसिद्धान्तपद्धति

सिद्धसिद्धान्तपद्धतिकार की दृष्टि—सिद्धान्त और साधना।

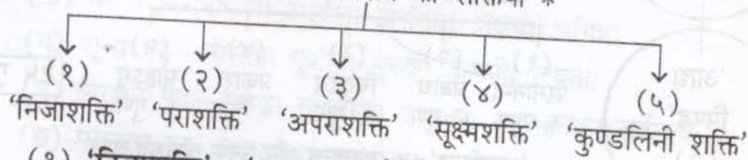
*** शक्ति-युक्त शिव की उपासना ***

गोरक्षनाथ ने 'शक्तियुक्त जगद्गुरु आदि नाथ' की वन्दना करते हुए इस ग्रंथ का प्रणयन प्रारम्भ किया है। तांत्रिक शाक्तमत, त्रिपुरा मत एवं त्रिकमत—तीनों ही द्वयात्मक अद्वैतवाद में आस्था व्यक्त करते हुए **'शक्ति-युक्त शिव'** की उपासना स्वीकार करते हैं। गोरक्षनाथ कहते हैं—'आदिनाथं नमस्कृत्य शक्तियुक्तं जगद्गुरुम् ॥''

*** परात्पर शक्ति *** सि० सि० प० में परात्पर शक्ति को **'अनामा'** कहा गया है और उसका स्वरूप इस प्रकार कहा गया है—

'यदा नास्ति स्वयं कर्ता कारणं न कुलाकुलम्।
अव्यक्त परं ब्रह्म अनामा विद्यते तदा।'

* अनामा परमशिव की शक्तियाँ *



(१) **'निजाशक्ति'**—**'इच्छामात्र**धर्माधर्मिणी **निजा** शक्ति॥' (१/५)
(२) **'पराशक्ति'**—**'तस्योन्मुखत्वमात्रेण परा**शक्तिरुत्थिता॥' (१/६)
(३) **'अपराशक्ति'**—'तस्य **स्पन्दन**मात्रेण **अपरा**शक्तिरुत्थिता॥' (१/७)
(४) **'सूक्ष्मशक्ति'**—**'ततोऽहंतार्थ**मात्रेण **सूक्ष्म** शक्तिरुत्पन्ना॥' (१/८)
(५) **'कुण्डलिनी शक्ति'**—'ततो **वेदनशीला कुण्डलिनी** शक्तिरुद्गता।'(१/९)

इन पाँचों शक्तियों के गुण एवं धर्म सि० सि० सं० एवं सि० सि० प० दोनों में एक समान वर्णित हैं। (सि० सि० प०)

*** परपिण्डोत्पत्ति ***—एक शक्तितत्व में ५-५ के गुणयोग से 'परपिण्ड' की उत्पत्ति हुआ करती है।

'एकं शक्तितत्त्वे पञ्च पञ्च गुण योगात् परपिण्डोत्पत्तिः॥' (१/१५) * (सि० सि० पद्धति)

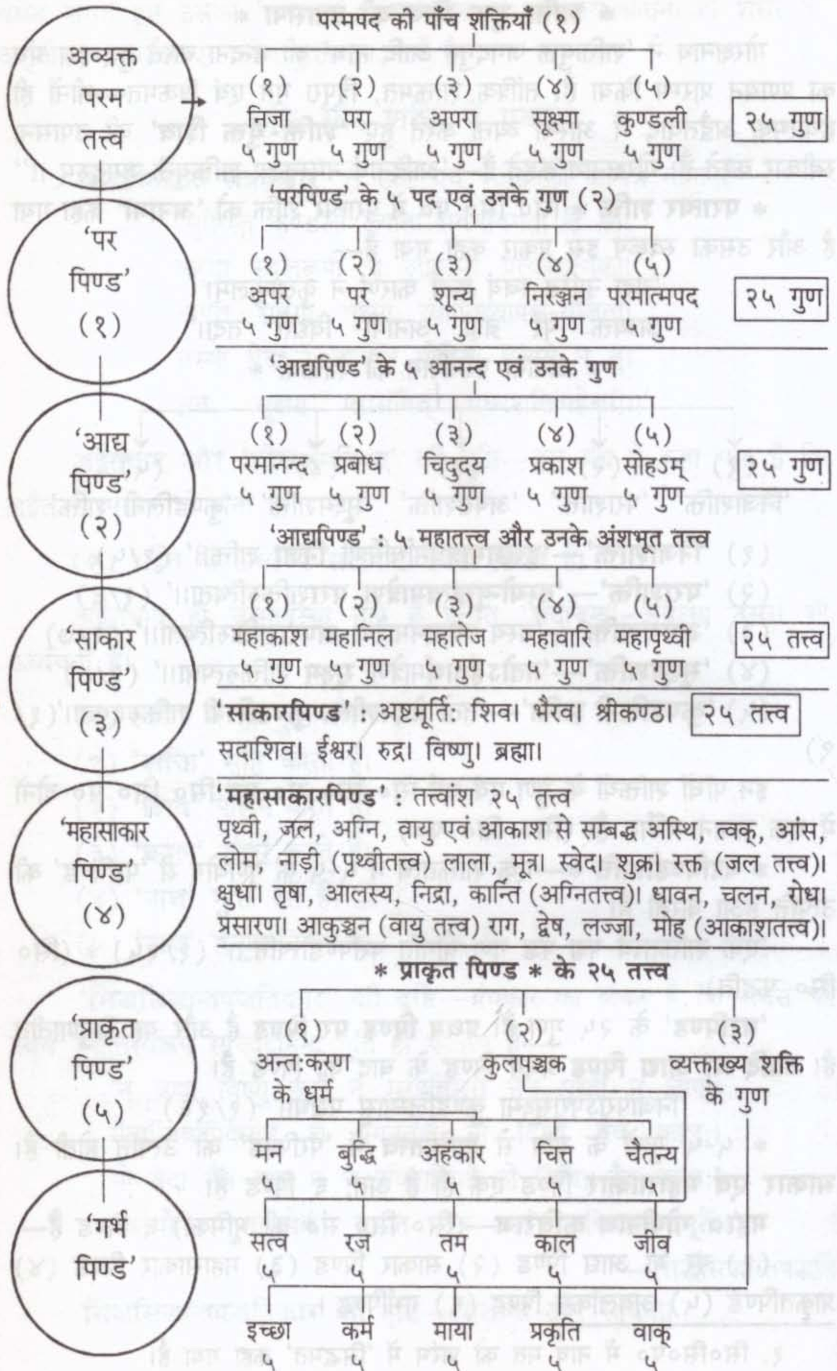
'परपिण्ड' के २५ गुण हैं। **प्रथम पिण्ड पर पिण्ड** है और यह त्रिगुणातीत है। **आदि या आद्य पिण्ड** प्रथम पिण्ड के बाद का पिण्ड है।

'निजापराऽपरासूक्ष्मा कुण्डलिन्यासु पञ्चधा।' (१/१६)

* ५-५ गुणों के योग से **शक्तितत्त्व** में 'परपिण्ड' की उत्पत्ति होती है। **साकार एवं महासाकार** पिण्ड एक ही हैं अतः ६ पिण्ड हैं।

महा० गोपीनाथ कविराज—(सि० सि० सं० की भूमिका) ६ पिण्ड हैं—(१) पर या आद्य पिण्ड (२) साकार पिण्ड (३) महासाकार पिण्ड (४) प्राकृतपिण्ड (५) अवलोकन पिण्ड (६) गर्भपिण्ड ।

१. सि०सि०प० में नाथ मत को प्रारंभ में 'सिद्धमत' कहा गया है।



परमपद की पाँच शक्तियाँ (१)
अव्यक्त परम तत्त्व
(१) निजा ५ गुण
(२) परा ५ गुण
(३) अपरा ५ गुण
(४) सूक्ष्मा ५ गुण
(५) कुण्डली ५ गुण
२५ गुण
'परपिण्ड' के ५ पद एवं उनके गुण (२)
'पर पिण्ड' (१)
(१) अपर ५ गुण
(२) पर ५ गुण
(३) शून्य ५ गुण
(४) निरञ्जन ५ गुण
(५) परमात्मपद ५ गुण
२५ गुण
'आद्यपिण्ड' के ५ आनन्द एवं उनके गुण
'आद्य पिण्ड' (२)
(१) परमानन्द ५ गुण
(२) प्रबोध ५ गुण
(३) चिदुदय ५ गुण
(४) प्रकाश ५ गुण
(५) सोहऽम् ५ गुण
२५ गुण
'आद्यपिण्ड' : ५ महातत्त्व और उनके अंशभूत तत्त्व
'साकार पिण्ड' (३)
(१) महाकाश ५ गुण
(२) महानिल ५ गुण
(३) महातेज ५ गुण
(४) महावारि ५ गुण
(५) महापृथ्वी ५ गुण
२५ तत्त्व
'साकारपिण्ड' : अष्टमूर्तिः शिव। भैरव। श्रीकण्ठ। सदाशिव। ईश्वर। रुद्र। विष्णु। ब्रह्मा।
२५ तत्त्व
'महासाकार पिण्ड' (४)
'महासाकारपिण्ड' : तत्त्वांश २५ तत्त्व
पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश से सम्बद्ध अस्थि, त्वक्, आंस, लोम, नाड़ी (पृथ्वीतत्त्व) लाला, मूत्र। स्वेद। शुक्र। रक्त (जल तत्त्व)। क्षुधा। तृषा, आलस्य, निद्रा, कान्ति (अग्नितत्त्व)। धावन, चलन, रोध। प्रसारण। आकुञ्चन (वायु तत्त्व) राग, द्वेष, लज्जा, मोह (आकाशतत्त्व)।
* प्राकृत पिण्ड * के २५ तत्त्व
'प्राकृत पिण्ड' (५)
(१) अन्तःकरण के धर्म
(२) कुलपञ्चक
(३) व्यक्ताख्य शक्ति के गुण
मन ५
बुद्धि ५
अहंकार ५
चित्त ५
चैतन्य ५
'गर्भ पिण्ड'
सत्व ५
रज ५
तम ५
काल ५
जीव ५
इच्छा ५
कर्म ५
माया ५
प्रकृति ५
वाक् ५

(१) * अव्यक्त परम तत्त्व की शक्तियाँ एवं उनके गुण *

(१) **'निजा'**—निराकृतित्व। नित्यत्व। निरन्तरत्व। निष्पन्दत्व। निरत्थत्व।

(२) **'पराशक्ति'**—अस्तित्व। अप्रमेयत्व, अभिन्नत्व। अनन्तत्व। अव्यक्तत्व।

(३) **'अपराशक्ति'**—स्फुरता, स्फारता। स्फुरत्ता। स्फोटता। स्फूर्ति।

(४) **'सूक्ष्मा शक्ति'**—नैरन्तर्य। नैरंश्य। नैश्चल्य। निश्चयत्त्व। निर्विकल्पत्व।

(५) **'कुण्डली'**—पूर्णत्व। प्रतिबिम्बत्व। प्रकृतिरूपत्व। प्रत्यङमुख। औच्चल्य।

(२) 'परपिण्ड' के पाँच पद एवं उनके ५-५ गुण

(क) अपर पद—अकलत्व। असंशयत्व। अनुमतत्व। अन्यपारता। अमरत्व।

(ख) पर पद—निष्फल। अलोल। असंख्य। अक्षय। अभिन्न।

(ग) शून्य पद—नीलता। पूर्णता। मूर्च्छा। उन्मनी। लयता।

(घ) निरञ्जन पद—सहज। सामरस्य। सत्यत्व। सावधानता। सर्वगत्व।

(ङ) परमात्म पद—अभयत्व। अभेद्यत्व। अच्छेद्य। अनाश्य। अशोष्य।

'निजापराऽपरासूक्ष्माकुण्डलिन्यासु पञ्चधा।
शक्ति-चक्रं क्रमेणोत्थो जातः पिण्डपरः शिवः॥' (सि० सि० प० १।१६)

* परपिण्डोत्पत्ति की प्रक्रिया *

(१) 'शक्ति तत्त्व' में प्रत्येक शक्ति (निजा शक्ति, पराशक्ति, अपराशक्ति, सूक्ष्मा शक्ति, कुण्डलिनी शक्ति) के ५-५ गुण, धर्म या अवस्थायें हैं। (२५ गुणों) में 'परपिण्ड' से (सगुण-साकार परमेश्वर से) पिण्ड का आविर्भाव होता है—

'एवं शक्तितत्त्वे पञ्चपञ्च गुणयोगात् परपिण्डोत्पत्तिः।' (१५)[१]

(२) जिस प्रकार हमारी पाञ्चभौतिक **काया पञ्चभूतों का पिण्ड है** और उसका **अधिष्ठाता** जीवात्मा है, उसी प्रकार **'शक्ति'** के २५ गुणों वाले **'परपिण्ड'** का अधिष्ठाता सगुण साकार परमेश्वर है।

(३) **'परपिण्ड'** में व्याप्त यह **परमेश्वर** जगत् की सृष्टि पालन एवं संहार के लिए प्रकट होता है। **'परपिण्ड'** उत्पन्न नहीं **प्रकट होता** है और **लयीभूत होता है,** न कि उत्पन्न एवं नष्ट।

(४) **साकार-सगुण परमेश्वर का पिण्ड** द्वैताद्वैतविवर्जित अलख निरञ्जन परमेश्वर में लयीभूत हो जाता है, नष्ट नहीं होता।

---

१. सि०सि०प० (प्रथमोपदेश)

(५) **'निजा'**, **'परा'**, **'अपरा'**, **'सूक्ष्मा'** एवं **'कुण्डलिनी'**—इन ५ **शक्तियों में शक्तिचक्रक्रम** के माध्यम से **सदाशिव** ५ प्रकार से प्रकट होते हैं।

(६) एक-एक शक्ति के विकास से एक-एक पिण्ड आविर्भूत होता है। इन ५ पिण्डों के अधिष्ठाता रूप ५ देव होते हैं। यही है—शक्तिचक्र क्रम।

(७) **शक्तिचक्रत्रिकोण** में बिन्दु (परब्रह्म शिव। आदि नाथ परमेश्वर) रहता है।

(८) सदाशिव की शक्ति के विकास के समय यह **शक्ति**—(१) इच्छा (२) ज्ञान एवं (३) क्रिया का स्वरूप धारण करती है। इन **तीनों शक्तियों** (गौरी। लक्ष्मी। सरस्वती) से **परमेश्वर व्यापक शिव** का प्राकट्य होता है।[१]

*** अनादि पिण्ड के ५ तत्त्व एवं २५ गुण ***

५ शक्तियों के, शक्तिचक्र क्रम से, प्रकट ५ अधिष्ठाता देवता हैं यथा—

(१) **निजाशक्ति** के अधिष्ठाता देव—अपरम्पर सदाशिव—हैं।

(२) **पराशक्ति** के अष्ठिाता देव—परमपद परमेश्वर हैं।

(३) **अपराशक्ति** के अष्ठिाता देव—शून्य, रुद्र हैं।

(४) **सूक्ष्माशक्ति** के अष्ठिाता देव—निरञ्जन (विष्णु) हैं।

(५) **कुण्डलिनी शक्ति** के अष्ठिाता देव—परमात्मा (ब्रह्मा) हैं।

(क) अपरम्पर सदाशिव से—'स्फुरत्ता' (उत्साह)

(ख) परमपद परमेश्वर से—'भावना'

(ग) शून्य (रुद्र) से—'सत्ता मात्र'

(घ) निरञ्जन (विष्णु) से—स्वसाक्षात्कार मात्र (अहंकार)

(ङ) परमात्मा (ब्रह्मा) से—बीजरूप समष्टि पिण्ड उत्पन्न हुए हैं।

—(सि० सि० प० १/१८)

"अपरम्पर परमपदं शून्यं निरञ्जनं परमात्मेति।"[२]

अनादि पिण्ड की उत्पत्ति—'अपरम्परं, परमपदं। शून्यं, निरञ्जनपरमात्मानौ पञ्च भिरेतैः सगुणौर**नाद्यपिण्डः** समुत्पन्नः।।[३]

(क) सृष्टि की रचना के समय **५-५ गुणों से युक्त ५ महाशक्तियों का प्रकटीकरण** होता है।

---

१. सि०सि०प० (गोरक्षनाथ)
२. सि०सि०प० (१।४७)
३. सि०सि०प० (२४)

(ख) वे ५-५ देवों से पृथक्-पृथक् युक्त होती हैं।

ये ही ५ देव स्वनिहित शक्तियों के अनुरुप—

(क) **'अपरम्पर'** (ख) **'परमपद'** (ग) **'शून्य'** (घ) **'निरञ्जन'** एवं (ङ) **'परमात्मा'** कहे जाते हैं।

इन सभी ५ प्रधान महाशक्तियों के साथ संयुक्त चेतनसत्ता का नाम है—**'अनाद्यपिण्ड'**।

यह सच्चिदानन्दघनस्वरूप **परमेश्वर** ही गुण एवं नाम से ५ रूपों में अभिव्यक्त होता है। यह समष्टि देव ही परमेश्वर **'शिव'** या **'आदिनाथ'** हैं।

*** महासाकार आद्य पिण्ड पुरुषः उत्पत्ति, ५ तत्त्व एवं २५ गुण ***

'अनाद्यपिण्ड परमेश्वर' से **'आद्यपिण्ड पुरुष'** की अभिव्यक्ति है—

(१) अनाद्य पिण्ड—परमानन्द

(२) परमानन्द—प्रबोध

(३) प्रबोध—चिदुदय

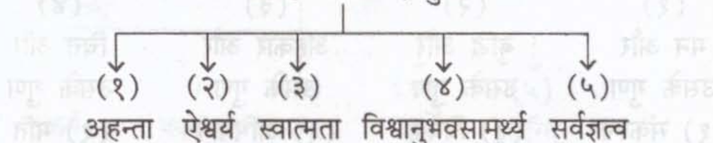
(४) चिदुदय—चित्प्रकाश

(५) चित्प्रकाश—अहंभाव की अभिव्यक्ति हाती है—

('अनाद्यात् परमानन्दः परमानन्दात् प्रबोधः, **प्रबोधा**च्चिदुदयश्चिदुदयात् चित्प्रकाशः चित् प्रकाशात् सोऽहंभावः॥—सिद्धसिद्धान्तपद्धति (१।२५)

इस आद्य पुरुष परमेश्वर के भी ५-५ गुणों से विशिष्ट ५ देव हैं।

'परमानन्द', 'प्रबोध', 'चिदुदय', एवं 'चित्प्रकाश' आदि में से प्रत्येक के ५-५ गुण हैं।



महत्तत्त्व रूप **आद्यपिण्ड** है। यही आद्यपिण्ड पुरुष **'हिरण्यगर्भ' है।** ५ भूतों का कारण **'सूत्रात्मा'** है।

आद्यपिण्ड सूत्रात्मा—महाप्रकाश→महावायु→महातेज→महासलिल→महापृथ्वी (सि०सि०प० १।३१)

१. सि०सि०प० (१।३०)

पाँचों तत्त्वों के ५-५ गुण हैं।

* महासाकार पिण्ड की अष्टमूर्तियाँ *

'महासाकार पिण्ड' पञ्चाननशिव की अष्टमूर्तियाँ हैं—

शिव से → भैरव → श्रीकण्ठ → सदाशिव → ईश्वर → रुद्र → विष्णु → ब्रह्मा व्यक्त हुए हैं।

'स एव शिवः शिवाद् भैरवो, भैरवात् श्रीकण्ठः श्रीकण्ठात् सदाशिवः, सदाशिवादीश्वर ईश्वराद्रुद्रो, रुद्राद्विष्णु, विष्णोर्ब्रह्मेति **महासाकार पिण्डस्य मूर्त्यष्टकम्** ।''[1]

* नरनारी रूप 'प्रकृतिपिण्ड' *

ब्रह्मा के **अवलोकन** (ईक्षणात्मक संकल्प) से नारीसम्पुटित **पुरुषप्रकृतिपिण्ड** (शतरूपा मनु प्रजापति) का आविर्भाव होता है।

इसके उपरान्त जरायुजादि भौतिक शरीरों की उत्पत्ति होती है। यही **'प्रकृति पिण्ड'** भूमि आदि पञ्चभूतों के ५ गुणों से युक्त **'पाञ्चभौतिक'** शरीर कहा जाता है।

''तद् ब्रह्मणः सकाशाद**वलोकनेन** नर-नारी रूप **प्रकृति पिण्डः** समुत्पन्नस्तच्चं प्रञ्चपञ्चात्मक शरीरम् ॥'

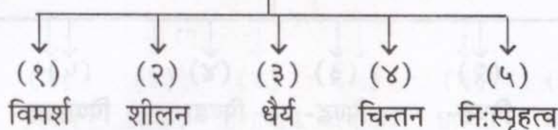
शरीर में ५ महाभूत अस्थि, मांस, त्वक्, नाड़ी, रोम, मूत्र, शुक्र, रक्त, स्वेद, क्षुधा, तृषा, निद्रा, कान्ति, आलस्य, भ्रमण, आकुञ्चन, राग, द्वेष, भय, लज्जा, मोह आदि के रूप में अवस्थित हैं।

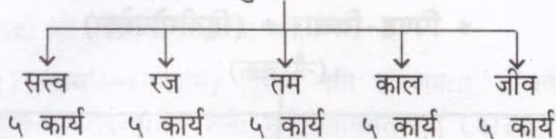
* अन्तःकरणपञ्चक *

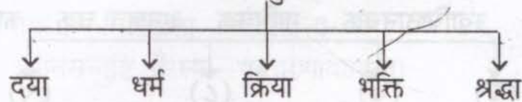
(१)	(२)	(३)	(४)
मन और उसके गुण	बुद्धि और उसके गुण	अहंकार और उसके गुण	चित्त और उसके गुण
(१) संकल्प	(१) विवेक	(१) अभिमान	(१) मति
(२) विकल्प	(२) वैराग्य	(२)मदीयं	(२)इच्छा
(३) मूर्च्छा	(३) शान्ति	(३)मम सुखं	(३) स्मृति
(४) जड़ता	(४) सन्तोष	(४) मम दुखं	(४) त्याग
(५) मनन	(५) क्षमा	(५)ममेदम्	(५) स्वीकार

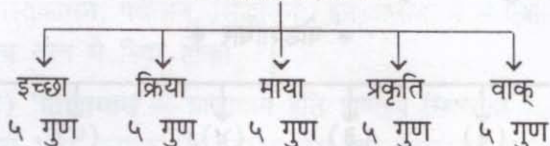
---

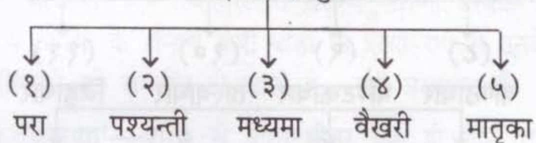
१. सि०सि०प० (१।३७))

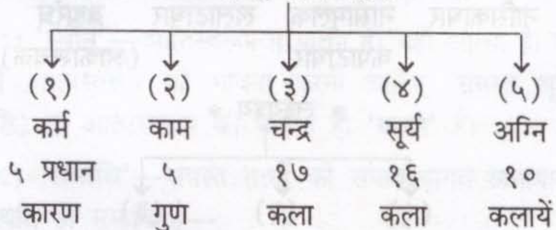










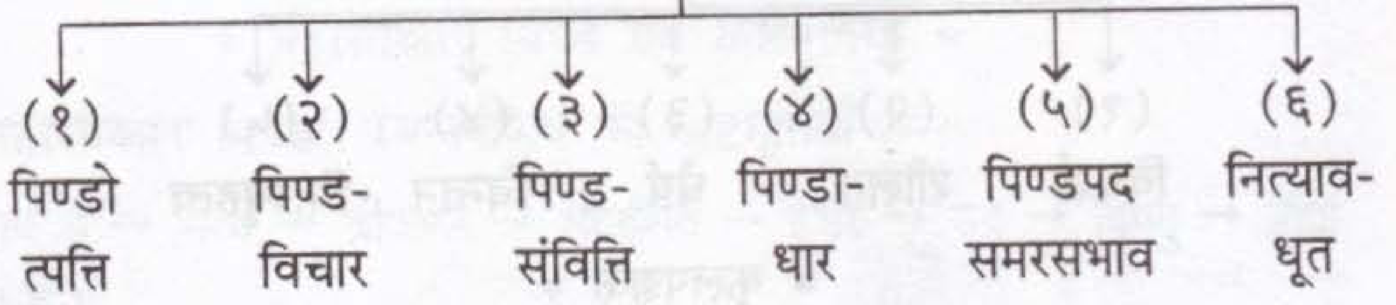


(क) * **१० प्रधान नाड़ियाँ** *

(ख) * १० वायु (प्राण)

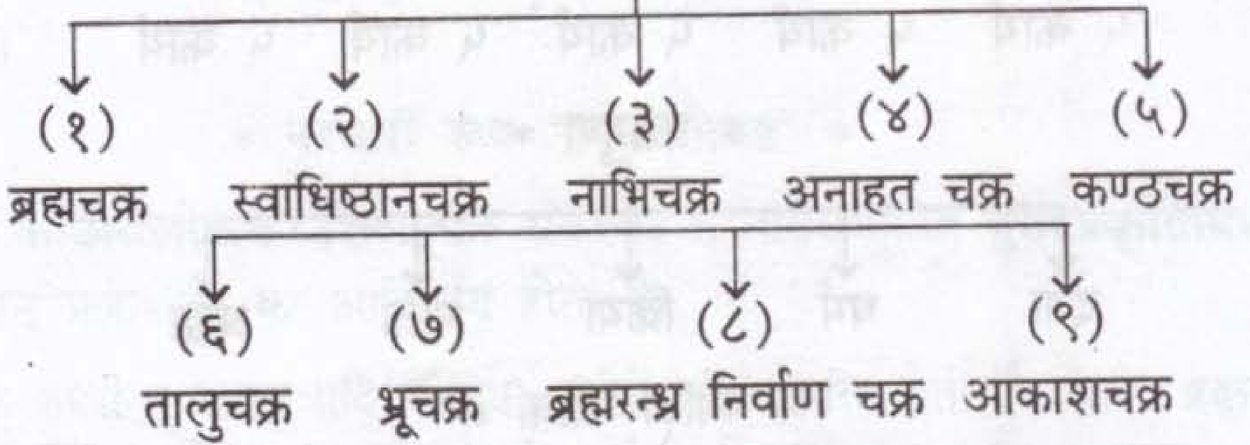
(ग) * जीवात्मा के स्थूल शरीर का उत्पत्ति क्रम।

सिद्धमत में पिण्डविचार (सिद्धसिद्धान्तपद्धति)

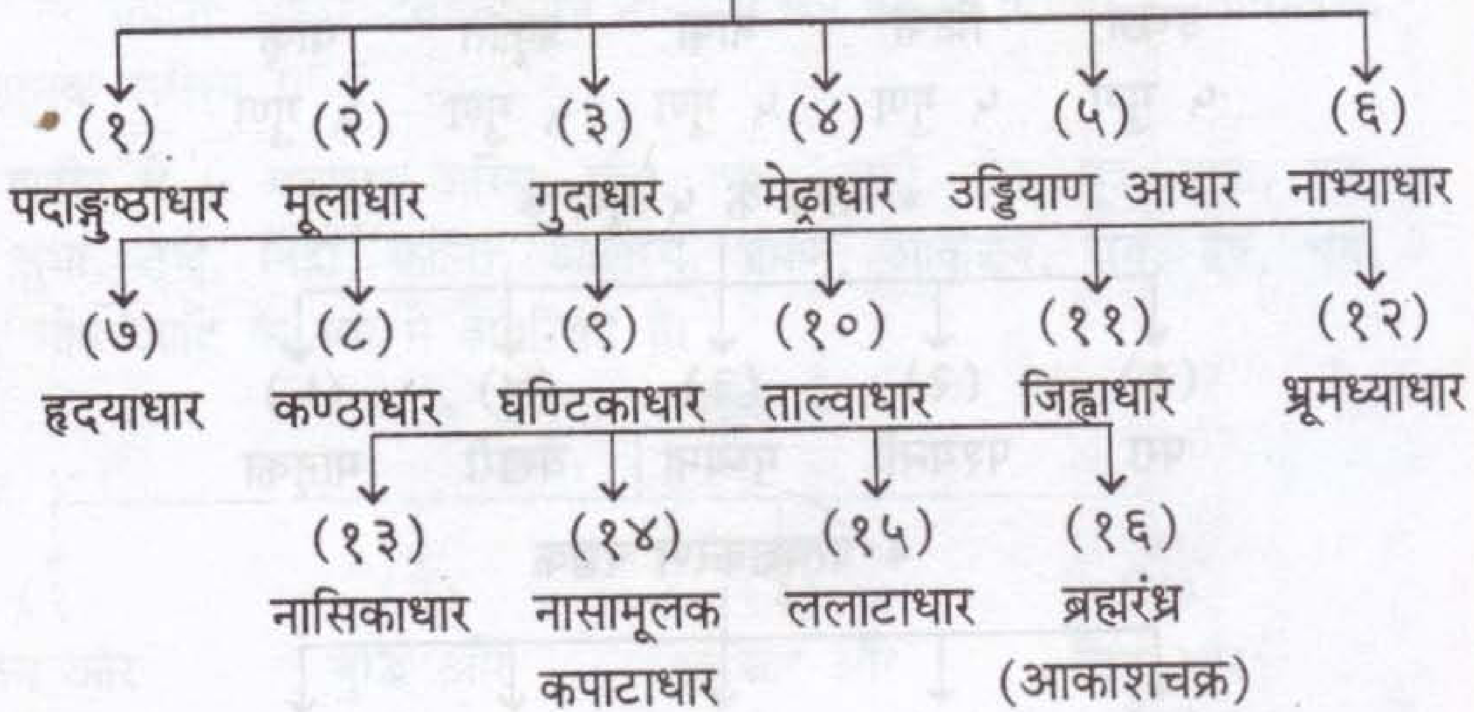


*** पिण्ड-विचार * (द्वितीयोपदेश)**

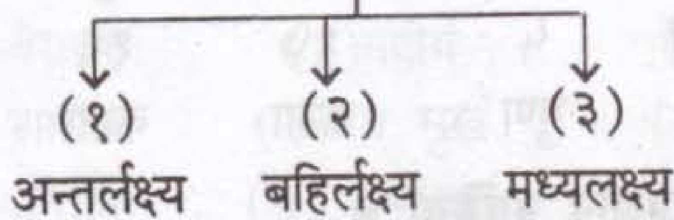
(नौ चक्र)



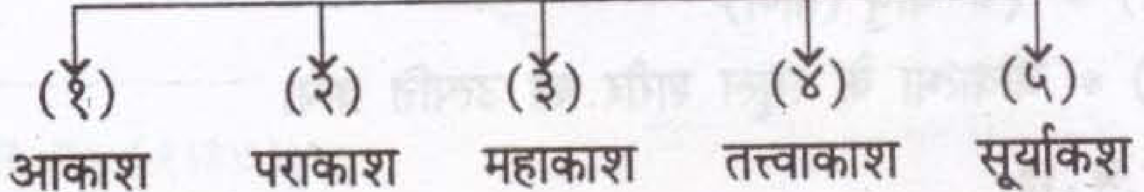
* षोडशाधार *

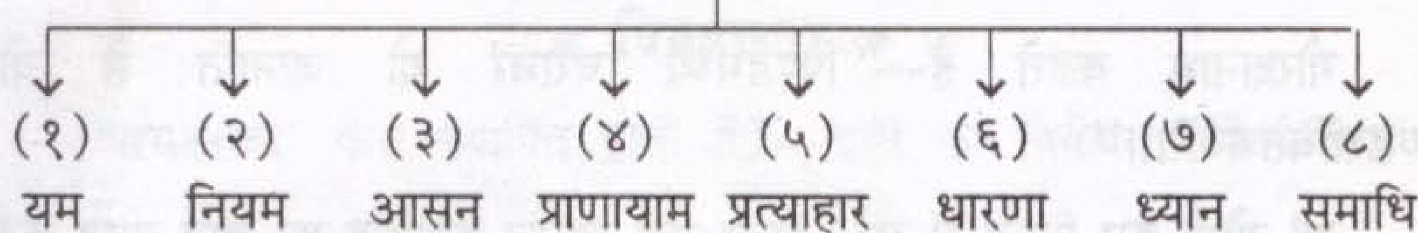


* लक्ष्यत्रय *



* व्योमपञ्चक *





गोरक्षनाथ जी ने इस ग्रंथ में योग को 'षडङ्ग' न मानकर **'अष्टाङ्ग'** माना और योगाङ्गों की मौलिक विवेचना की।

(१) **'यम'**—(उपशम) "**यम** इति उपशम:॥" 'सर्वेन्द्रियजयआहार—निद्रा—शीत—वातपजयश्चैवं शनैः शनैः साधयेत् ॥" (२।३२)

(२) **'नियम'**—"**नियम** इति मनोवृत्तिनां नियमनम्।"
एकान्तवास—नि:सङ्गता—औदासीन्य—
यथा प्राप्तिसन्तुष्टि वैरस्य—गुरुचरणावरुढ़त्व।

(३) **'आसन'**—'आसनमिति स्वस्वरूपे समासन्नता।'
स्वस्तिकासन, पद्मासन, सिद्धासनः। इन आसनों में से एक आसन में सावधान होकर ध्येय तत्त्व में स्थिर होना।

(४) **'प्राणायाम'**—'प्राणायाम इति प्राणस्य स्थिरता॥'
रेचक-पूरक-कुम्भक-संघटकरणा रूप चार प्राणायाम के लक्षण हैं।

(५) **'प्रत्याहार'**—'प्रत्याहारमिति चैतन्यतुरङ्गाणां प्रत्याहरणम्'।
चैतन्य आत्मा के इन्द्रिय रूपी घोड़ों के प्रत्याहरण से उनके विकारग्रस्त होने से उत्पन्न विकारों की समाप्ति हो जाती है—यही प्रत्याहार है।

(६) **'धारणा'**—शरीर से बाहर-भीतर एक ही निज तत्त्व स्वरूप आत्मा व्याप्त है। अन्त:करण से इस तरह की भावना ही **'धारणा'** है।

(७) **'ध्यान'**—अद्वैतस्वरूप परमात्मा है। यही आत्मा है। जो-जो वस्तु प्रतीत हो उसमें आत्मस्वरूप की भावना करनी चाहिए। समस्त भूतमात्र में समदृष्टि (आत्मदृष्टि) या आत्मस्वरूप की भावना ही **'ध्यान'** है।

(८) **'समाधि'**—समस्त तत्त्वों की समावस्थागत अनायास एवं स्वाभाविक सहज स्थिति ही समाधि है—

'अथ समाधिलक्षणं सर्व तत्त्वानां समावस्था निरुद्यमत्वमनायास स्थितिमत्वमिति समाधि लक्षणम्॥'[१]

---

१. सि०सि०प० (द्वितीय उपदेश)

* **पिण्डसंवित्ति** * (पिण्डब्रह्माण्डैक्यवाद)[१]

गोरक्षनाथ कहते हैं—"पिण्डमध्ये चराचरं यो जानाति से योगी पिण्डसंवितर्भवति।।"

जो योगी इस पिण्ड में चर, अचर एवं समस्त ब्रह्माण्ड का ज्ञान प्राप्त करता है वह पिण्डसंवित्ति' (पिण्डज्ञान) वाला होता है।

* सप्तपाताल और लोकादि *

सारे पाताल एवं लोक शरीर में विद्यमान हैं। यथा—गुह्यस्थान में भूर्लोक, लिंगस्थान में भुवर्लोक आदि।।

* वर्णचतुष्टय, सप्तद्वीप एवं सप्तसमुद्र *

सारे द्वीप एवं समुद्र भी इसी शरीर में स्थित हैं।

* नव खण्ड अष्टकुलपर्वत *

नवखण्ड एवं अष्टकुल पर्वत भी शरीर में ही स्थित हैं।

* नक्षत्रादि एवं स्वर्गनरक एवं मुक्ति *

नक्षत्रादि, एवं स्वर्गनरक आदि भी हमारे शरीर में ही स्थित हैं।

तृतीय उपदेश के अन्त में निम्न प्रश्नों का समाधान किया गया है—

(१) सुख क्या है ? स्वर्ग क्या है? "यत्सुखं तत् **स्वर्गं**।।

(२) दु:ख क्या है? नरक क्या है? यद् दु:खं **तन्नरकं**।'

(३) बन्धन क्या है? 'यत् कर्म तद् **बन्धनम्** ।।'

(४) मुक्ति क्या है? 'यन्निर्विकल्पं तन्मुक्तिः।।'

(५) शान्ति कैसे मिलती है?

'स्वरूपदशायां निद्रादौ स्वात्मजागर: **शान्तिर्भवति**।'

(६) **पिण्डसंवित्तियोगी कौन है?**—

सभी देहों में **विश्वरूप परमात्मा,** अखण्डस्भाव द्वारा, चिद्रूप में अवस्थित है ऐसा जानने वाला ही **पिण्डसंवित्ति** योगी है।

"एवं सर्वदेषेशु विश्वरूपपरमेश्वर: परमात्माऽखण्डस्वभावेन घटे घटे चित्स्वरूपो

---

१. सि०सि०प० (द्वितीय उपदेश)

२. सि०सि०प० (तृ० उप० १३))

तिष्ठति। एवं पिण्डसंवत्तिर्भवति।।"[२]

* पिण्डाधार *

'समरसता' कैसे स्थापित होती है?—इसी का विवेचन **'पिण्डाधार'** में किया गया है।

'शक्ति' का स्वरूप क्या है? वह **'निजाशक्ति'** जिससे शिव अभिन्न है, जो उनकी **नित्य, निजा, समवायिनी** शक्ति है—उस **मूलभूता शक्ति** का स्वरूप



क्या है?

(१) **'शक्तिचक्र'**—

"निजा पराऽपरासूक्ष्मा कुण्डली तासु पञ्चधा।
शक्ति चक्रक्रमेणैव जातः पिण्डः परः शिवे।।"

(२) **शिव के ५ भिन्न-भिन्न स्वरूप**—

(१) ततोऽ**स्मितापूर्वमर्चिर्मात्रं स्यादपरं** परम् ।

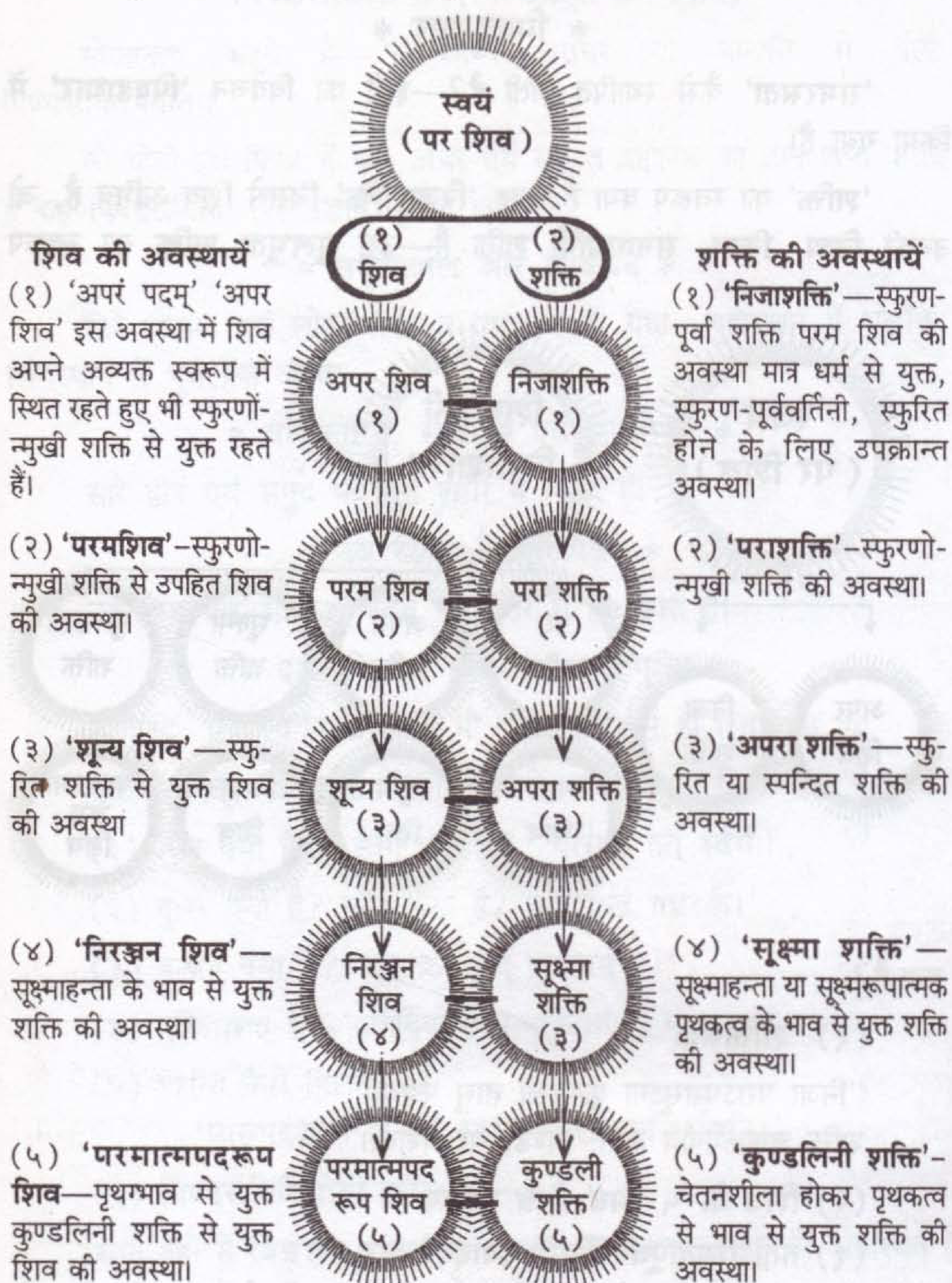
(२) तत्स्व**संवेदनाभा**मुत्पन्नं परमंपदम् ।

(३) **स्वेच्छामात ततः**शून्यं............

(४) सत्तामात्रं **निरञ्जनम्** ।

(५) तस्मात्ततः स्वसाक्षादभूः **परमात्मपदं** मतम् ।।

* शिव शक्ति के स्फुरण का विकास-चित्र *



'परमात्मा' और कुण्डली जो शिव के पाँचवे विकास सोपान हैं—विश्व-सृष्टि के मूल है।

'कुण्डली शक्ति'—

'कन्दोर्ध्वं कुण्डली शक्तिरष्टधा कुण्डलाकृतिः।
बन्धनाय च मूढ़ानां योगिनां मोक्षदा स्मृता।'

—गोरक्षनाथ—गोरक्षशतक

कुण्डली जागरण की विधि—

वज्रासनस्थितो योगी **चालयित्वा तु कुण्डलीम्।**
अष्टधा कुण्डलीभूतामृजुं कर्तुं तु कुण्डलीम्।
भानोराकुञ्चनं कुर्यात्कुण्डलीं चालयेत्ततः।।
वज्रासनगतो नित्यं **मासार्धं** तु समभ्यसेत्।
वायुनाज्वलितो वह्निः कुण्डलीमनिशं दहेत्।
संतप्ता साग्निना नाड़ी शक्तिस्त्रैलोक्य मोहिनी।।

—गोरक्षनाथ—योगबीज

'आधार शक्ति'—

'पिण्डाधार' (सि०सि०प० का चतुर्थोपदेश) के आरम्भ में 'निजाशक्ति' या **'आधार शक्ति'** के स्वरूप की विवेचना करते हुए कहा गया है कि—

(१) **'परासंवित्'** निजाशक्तिसंयुक्त है।

(२) यह शक्ति स्वसंवेद्य, संवित्स्वरूपा, नित्यप्रबुद्धा, परमशिवसमवेता, कूटस्थ, एवं स्वातंत्र्य है।

(३) यह शक्ति ही **आधारस्वरूपा आद्या भवानी** है। वह नित्यप्रकाशरूपा है।

(४) यह शिव की **अन्तरङ्गा शक्ति** है। यही सबका आधार है। यही सबका **उपादानकारण** है। यह चिद्रूपा पराशक्ति है। वह शुद्ध रूप में **शिवस्वरूपिणी है।**

(१) ''अस्ति का चिदपरंपरा **संवित्स्वरूपा, सर्वपिण्डाधारत्वेन, नित्यप्रबुद्धा, निजाशक्ति,** प्रसिद्धा कार्यकारणकतृर्णाणामुत्थानदशाङ्कुरोन्मीलनेन कर्तारं करोतीत्यनन्तर-**वाधारशक्ति**रिति कथ्यते।।''

(२) **'अत्यन्तनिजप्रकाश स्वसंवेद्यानुभवैकगम्यमाना** शास्त्रलौकिक-**साक्षात्कारसाक्षिणी** सा **परा चिद्रूपिणी शक्तिर्गीयते।'**

(३) ''सैव शक्तिर्यदा सहजेन स्वस्मिन्नुन्मीलिन्यां वर्तते **तदा शिव स एव भवति।।**''[१]

---

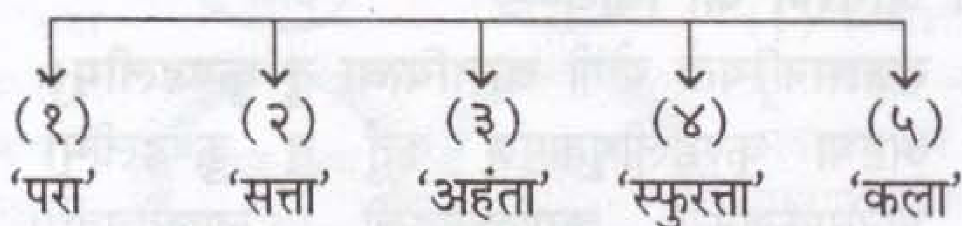
१. सि०सि०प० (४था उपदेश) सूत्र १

कुलाकुल-सामरस्य—यह कुलाकुलस्वरूपिणी पराशक्ति, कुलाकुल **शिवशक्ति** की अभेदावस्था ही, **सामरस्य प्राप्ति की भूमिका** कही जाती है—

"अतएव कुलाकुलस्वरूपा **सामरस्य निजभूमिका** निगद्यते।।"[१]

'कुलशक्ति' का स्वरूप—'कुलशक्ति' विश्वाधारस्वरूप में स्थित है। कुल शक्ति **'अधारशक्ति'** के रूप में पञ्चधा विभक्त है।

विश्वाधार **'कुलशक्ति'** के पाँच रूप[२]



*** कुल शक्ति' के विभिन्न स्वरूप ***

(क) **'पराशक्ति'**—यह समस्त विश्व के आधार के रूप में स्थित है। यह परापरा सभी वस्तुओं में स्थित है। यह प्रकाशरूपा शक्ति सबकी प्रकाशिका होने से 'परा' कहलाती है।[३]

(ख) **'सत्ताशक्ति'**—यह अनादिसंसिद्ध, परमाद्वैत, परम, एका है। यह सजातीय-विजातीय-स्वगतभेदशून्य, संसिद्ध (स्वप्रकाश(, परमाद्वैत एवं एक (सजातीयता से परे) अद्वितीय है। ऐसे अस्तित्व को स्वीकार करने वाली है और **'सत्ता'** कहलाती है।[४]

(ग) **'पराहन्ताशक्ति'**—यह अनादिनिधन, अप्रमेय, सहजः स्वभाव-किरणानन्दसन्दोह, स्वप्रकाश, सच्चिदानन्दस्वरूपा, अहन्तारूप में शिवाभिन्ना पराशक्ति है। यही **अहंतास्वरूपिणी** कुल शक्ति है।[५]

(घ) **'स्फुरत्ताशक्ति'**—जो स्वानुभव चिच्चमत्कार **निरुत्थानदशा** को प्रस्फुटित करती है वही स्फुरत्ता शक्ति है। यह अपने 'स्फुरत्ता' के स्वरूप में, अवाङ्मनस

---

१. सि०सि०प० (४।२)

२. 'कुलमिति परासत्ताऽहंता स्फुरत्ता कूलास्वरूपेण सैव पञ्चधा विश्वस्याधारत्वेन तिष्ठति।। (४।८)

३. अतएव कुलाकुलस्वरूपा सामरस्यनिजभूमिका निगद्यते।

कुलमिति परासत्ताऽहंता स्फुरत्ता फलास्वरूपेण सैव ९ञ्चधा विश्वस्याधारत्वेन तिष्छिति।

४. **'परा'**—'एतएव परापरा निराभासादवभासकान् प्रकाशस्वरूपा या सा परा।।

५. **'सत्ता'**—'अनादि संसिद्धं परमाद्वैतपरमेकमेवास्तीति याऽङ्गीकारं करोति सा **'सत्ता'**।।५।।

गोचर, अनुभवैकगम्य चैतन्य-विलास की द्वैताभास शून्य अद्वैतावस्था को व्यक्त करती है—'स्फुरत्ता' है।[२]

(ङ) **'पराकलाशक्ति'**—जो नित्य शुद्धबुद्धस्वरूप एवं स्वयंप्रकाश (बोधस्वरूप, स्वसंवेद्य) आत्मतत्त्व की प्रकाशिका शक्ति है उसे 'कला' कहते हैं।[२]

(च) **'अकुलरूपाशक्ति'**—समस्त भेदों से परे यह अद्वितीया शक्ति अखण्ड, अद्वय, अनन्य, कार्यकारणविमुक्त, नामातीत एवं रूपातीत, जाति-वर्ण-गोत्र आदि भेदों से अतीत **अकुल शिव** में कूटस्थ पराशक्ति **'अकुल'** कही गई है।

आज्ञावती 'पराशक्ति'—(१) यह कुलाकुलरूपा पराशक्ति है।

(२) यह सामरस्य को प्रकाशित करने वाली है।

(३) इसी पराशक्ति को **'अपरम्परा' 'निजा'** आदि नामों से पुकारा जाता है।

(४) यह महाप्रलयकाल में भी विद्यमान रहती है और विश्वाधार है।

(५) यही समस्त प्रपञ्चजाल को परमतत्त्व में एकीभूत करके स्थापित कर देती है। इसे ही आदिनाथ की 'आज्ञावली' शक्ति कहा गया है।

*** परशिव ***—"अकुलंकुलमाधत्ते कुलञ्चाकुलमिच्छति जलबुदबुद्बवन्या यदेकाकार: **पर: शिव:**।।' (४।११)

परमेश्वर शिव ही कुलाकुल रूप से अभिव्यक्त होते हैं। **शिव से अभिन्न शक्ति** ही महाप्रलयकाल में **अकुलावस्था युक्त** कहलाती है। उस समय वह विश्व को उपसंहत करके शिव से अभिन्न होकर रहती है।

सृष्टि के समारंभ के काल में यही शिव की **'निजाशक्ति'** परा-अपरा-सूक्ष्म-कुण्डली आदि भेदस्वरूप धारण करके **कुलरूप (व्यक्त) अवस्था** धारण करती है। विश्व-सृजन करने पर वही शक्ति **'कुल'** कहलाती है। यथा जल एवं बुलबुले भिन्न एवं अभिन्न दोनों हैं उसी प्रकार **वह द्वैत (कुल) एवं अद्वैत (अकुल)** दोनों हैं।[३]

यह द्वैताद्वैतरहित अभेद ही **सामरस्य** है।

---

१. **'पराहन्ता'**—अनादिनिधनोऽप्रमेय: स्वभावकिणानन्दोऽहमस्मीत्यहं सूचनशीला या सा **'पराहन्ता'** ॥६॥

२. **'स्फुरत्ता'**—स्वानुभवचिच्चमत्कारनिरुत्थानदशां प्रस्फुटीकरोति या सा स्फुरत्ता।
—गोरक्षसिद्धान्त (सिद्धसिद्धान्तपद्धति)

३. 'अकुलंकुलमाधत्ते कुलञ्चाकुलमिच्छति जलबुद बुदवन्न्यायदिकाकार: **पर: शिव:**॥ (४।११)

अनन्त शक्तिमान परमशिव का स्वरूप—परमशिव द्वैताद्वैत रूप में एकाकार हैं और समरसत्त्व के कारण अनन्त शक्तिमान एवं अखण्डानन्दस्वरूप हैं वह सर्वाकार हैं, नित्य है, फिर भी एक हैं—

'शक्तिमान् नित्यं सर्वाकारतया स्फुरन् पुनः स्वेनैव रूपेण एकएवावशिष्यते।।' (४।१२)

वह परमकारण है, परम ईश्वर है, परात्पर है, शिव है, स्वस्वरूपतया सर्वतोमुख है, सर्वाकारों में स्फुरित हैं किन्तु बिना **'शक्ति'** के कुछ भी कर सकने में असमर्थ हैं किन्तु शक्तिपरिणद्ध होकर सर्वाभासक है।

वे अनन्त शक्तिमान परमेश्वर विश्वरूप एवं विश्वमय भी हैं। वे परापर शक्ति से युक्त परमेश्वर अनन्त शक्तिमान हैं और सर्वविश्वाधिष्ठाता है।[१]

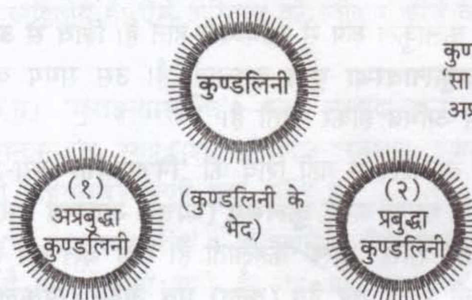
* कुण्डलिनी शक्ति *

[२]परापरस्वरूपा कुण्डलिनी शक्ति सिद्धों के देहपिण्ड में विद्यमान हैं।

[३]कुण्डलिनी के प्रभाव से योगी **'कायसिद्ध'** हो जाते हैं—

'सिद्धानां च परापरस्वरूपा कुण्डलिनी वर्तते।।' (सि०सि०प० १४)

* कुण्डली के विभिन्न स्वरूप *



कुण्डलिनी के भेद—
'सा कुण्डलिनी प्रबुद्धा अप्रबुद्धा चेति द्विधा।
—गोरक्षनाथ

---

१. 'अतएवैकाकारोऽनन्तशक्तिमान निजानन्दतयावस्थितोऽपि नानाकारत्वेन विलसन् स्वप्रतिष्ठां स्वयमेवभजतीति **व्यवहारः**।

'अलुप्त शक्तिमान्नित्यं सर्वाकारतया स्फुरन् पुनः स्वेनैव रूपेण एकएवावशिष्यते।।
—(सिद्धसिद्धान्तपद्धति) (४।१२)

१. "अतएव **परमकारणं परमेश्वरः परात्परः** शिवः स्वस्वरूपतया सर्वतोमुखः सर्वाकारतया स्फुरितुं शक्नोतीत्यतः शक्तिमानः शिवोऽपि शक्तिरहितः शक्तः कर्तुं न किञ्चन। स्वशक्त्यासहितः सोऽपि सर्वस्याभासको भवेत्।। (४।१३)

३. 'अतएवानन्तशतिभानपरमेश्वरः सविश्वरूपी विश्वमयो भवतीति ।। (सि०सि०प०४।१३)

(१) **'अप्रबुद्धा कुण्डलिनी'**—यद्यपि कुण्डलिनी शरीर में चेतनस्वरूप में ही अवस्थित है तथापि वह स्वभाव से अनेकरूप चिन्ता-व्यापारों को बढ़ाने में प्रवृत्त रहती है और प्रपञ्चस्वरूपा है। यह कुटिलस्वभावा है। इसके इसी स्वरूप को अप्रबुद्धा कहते हैं।[१]

(२) **'प्रबुद्धा' कुण्डलिनी**—जब वही अप्रबुद्धा कुण्डलिनी योगियों के द्वारा जागृत की जाती है तब अपने जागृतस्वरूप में **'प्रबुद्धा'** कही जाती है। इस स्थिति में वह मूलाधार चक्र का त्याग करके सुषम्णा मार्ग में ऊर्ध्वगामिनी स्थिति में रहा करती है। इस समय वह योगी के भीतर विद्यमान समस्त मानसिक विकारों को ध्वस्त करने में प्रयत्नशील रहती है।[२]

कुण्डलिनी के अन्य स्वरूप

(१) भगवती कुण्डलिनी **सर्वतत्त्वान्विता** है।

(२) भगवती का यथार्थ स्वरूप (स्वस्वरूप) ऊर्ध्व में ही विद्यमान है

(३) वह **विमर्शरूपिणी** है।

(४) उसी के द्वारा योगी **स्वस्वरूप (आत्मा) का ज्ञान** प्राप्त करते हैं।

* मध्यशक्ति-प्रबोधन और परमपद *

(नाभिदेश में अवस्थित 'मणिपूर चक्र' में विद्यमान कुण्डलिनी **'मध्यशक्ति'** कही जाती है।

(१) मूलाधार चक्रस्थ कुण्डलिनी = 'अध: शक्ति'

(२) मणिपूर चक्रस्थ कुण्डलिनी = 'मध्यशक्ति'

(३) सहस्रदलपद्मस्य कुण्डलिनी = 'ऊर्ध्वशक्ति'

'मध्यशक्ति' को जागृत करने से और 'अध:शक्ति' को ऊपर की ओर आकर्षित करने से एवं 'ऊर्ध्वशक्ति' को ऊप्र की ओर आकर्षित करने से एवं 'ऊर्ध्वशक्ति' कुण्डलिनी के निपात-संयोजन से **'परमपद'** की प्राप्ति हुआ करती है।[३]

(१) **आधार चक्र (मूलाधार चक्र) की कर्णिका में** त्रिकोणाकार योनि

---

१. 'अप्रबुद्धेतितत्र पिण्डचेतनरूपास्वभावेन नानाचिन्ता व्यापारोद्यमप्रपञ्चरूपा कुटिलस्वभावा कुण्डलिनी ख्याता।।' (सि०सि०प० ४।१४)

२. 'विकाराणां निवारणोद्यमस्वरूपा कुण्डलिन्यूर्ध्व **गामिनी**प्रसिद्धा भवति।। (सि०सि०प० ४।१४)

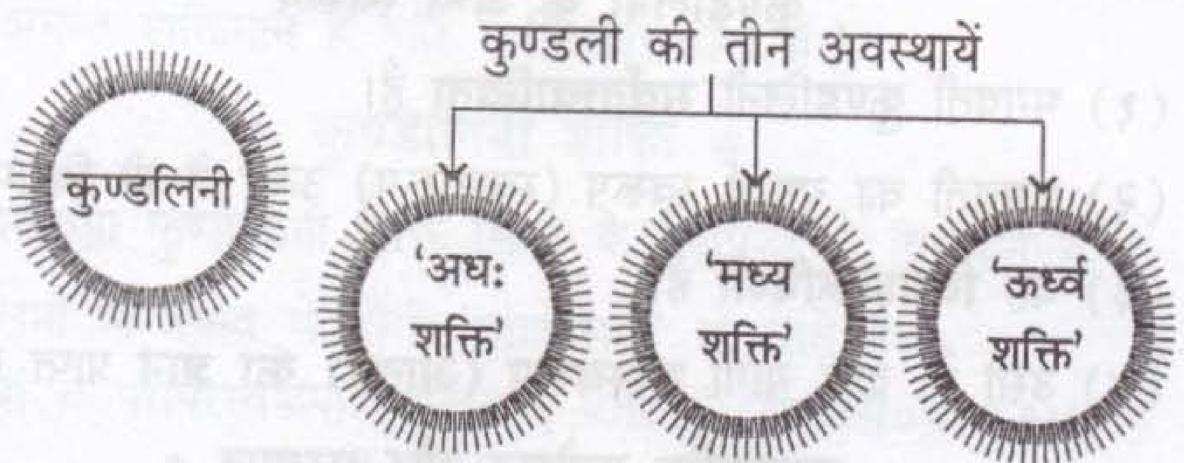
३. मध्यशक्ति प्रबोधेन अध:शक्तिनिकुञ्चनात् ।
ऊर्ध्व शक्तिनिपातेन प्राप्यते परमं पदम् ।।६।।

कामगिरि पीठ में "**अधः शक्ति कुण्डलिनी**" रहती है। इस शक्ति को अपानवायु के निकुञ्चन (आकर्षण) से ऊर्ध्वमुखी करके जागृत किया जाता है। सुषुम्णाद्वार को अपावृत करके इसे ऊर्ध्वमार्ग में चढ़ाया जाता है।

(२) '**नाभिचक्र' (मणिपूरक चक्र)** में आठ वलयों वाली इसी कुणलिनी को '**मध्य कुण्डलिनी**' कहा जाता है।

(३) कुण्डलिनी 'बन्धत्रय' के अभ्यास से समुत्थित होती है।

(४) प्राण से अपान का ऐक्य स्थापित होना '**ऊर्ध्वशक्तिपात**' है। षट्चक्रभेदनोपरान्त (एवं ग्रंथित्रयभेदनोपरान्त योगी) "**सहस्रार**" में कुण्डलिनी के साथ पहुँचकर '**परमपद**' प्राप्त करता है।



'अधःशक्ति' कुण्डलिनी का स्वरूप—

(१) कुण्डलिनी का यह स्वरूप बाह्येन्द्रिय व्यापारों से युक्त एवं नाना चिन्ताओं से संयुक्त है—

'बाह्येन्द्रिय व्यापार-नानाचिन्तामया **सैवाधः शक्तिरित्युच्यते।**"

—(सि०सि०प० ४।१८)

(२) 'अतएव योगिनस्तस्या आकुञ्चने रता यस्या आकुञ्चन मूलाधारबन्धनात्सिद्धं स्यात्।'

—(सि०सि०प० ४।१८)

योगी मूलाधार में स्थित इस शक्ति के आकुञ्चन-संकोचन में तत्पर रहते हैं। 'मूलाधार चक्र' के बन्ध के अभ्यास (अपान और प्राण का ऐक्य स्थापित होने पर उड्डियान एवं जालन्धर बन्ध की सिद्धि) से यह शक्ति ऊर्ध्वमुखी होकर जाग जाती है और साधक को परमानन्द की प्राप्ति करा देती है।

(क) '**मूलबन्ध**' (ख) '**उड्डियान बन्ध**' (ग) '**जालन्धर बन्ध**'—बंधत्रय से कुण्डलिनी महाशक्ति 'सहस्रार' में पहुँच जाती है।

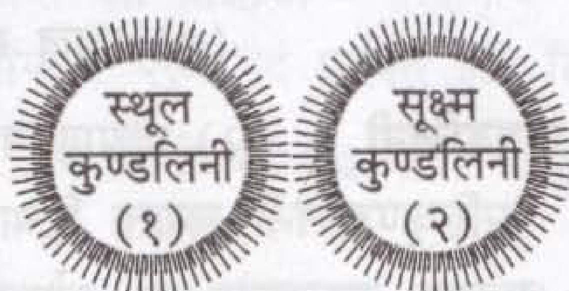
(३) जिससे चराचर, स्थावर जंगम एवं चिद्-अचिद् **समस्त जगत की उत्पत्ति**

होती है—वही **'मूलाधार'** है। जिसके संकोच-प्रसरण से कुण्डलिनी का प्रबोधन होने पर ज्ञान की वृद्धि होती है।—यह **मूलाधार ही संवित्प्रसारण भूमि है।**[१]

(४) **मूलशक्ति**—समष्टिरूप सर्वेश्वरी कुण्डलिनी 'महाशक्ति' के व्यापार कार्य से ही (संकोच-प्रसरण से ही) जगत का सृजन एवं संहार होता है। योगी इस मूल शक्ति का ध्यान कर जगत की सृष्टि और संहार कर सकता है। मूलाधार चक्रस्थिता महेश्वरी शक्ति **'मूल शक्ति'** है। यही कारण है कि सारे सिद्ध **मूलाधाररत होते** हैं।[२]

(५) **मध्याशक्ति**—यह कुण्डलिनी चिद्रूप होने से जीवात्मा, का यथार्थ स्वरूप है। अविद्या के कारण संसार-बंधन में एवं विषयादि मृगतृष्णा में आसक्त जीवात्मा को यह **'मध्या शक्ति'** अपने चिद्रूप स्वप्रकाश में धारण करने में समर्थ है। कुण्डलिनी शक्ति— (क) स्थूल (ख) सूक्ष्म दो प्रकार की है।

कुण्डलिनी के दो रूप हैं—



गोरक्षनाथ कहते हैं कि तरङ्गित स्वभाव वाली जो जीवात्मायें व्यर्थ में भटकती रहती हैं वे भी अपने आत्मप्रकाश के मध्य स्वस्वरूप प्राप्त कर सकती हैं, क्योंकि **'मध्या शक्ति' कुण्डलिनी** अपने चिद्रूप स्वप्रकाश में जीवात्मा को धारण करने में समर्थ है।[३]

स्थूल-सूक्ष्म कुण्डलिनी—'स्वस्वरूपतया सदा धारयितुं समर्था या सा कुण्डलिनी मध्याशक्तिर्गीयते।''

''**स्थूलसूक्ष्मरूपेण** महासिद्धानां प्रतीयते।।''

[४]यद्यपि मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी योग-सिद्ध पुरुषों के अतिरिक्त संसार में

---

१. 'यस्माच्चराचरं जगदिदं चिदचिदात्मकं प्रभवति तदेव मूलाधारं संवित्प्रसरं प्रसिद्धम्।।' (४।१९)

२. 'सर्वशक्तिप्रसरसंकोचाभ्यां जगत्सृष्टिः संहतिश्च भवत्येव न सन्देहस्तस्मात्सा मूलभित्युच्यते। अतः प्रायेण सर्वे सिद्धा मूलधाररता भवन्ति। (४।२०)।।

३. तरङ्गितस्वभावं जीवात्मानं वृथाभ्रमन्तीमपि स्वप्रकाश मध्ये स्वस्वरूपतया सदा धारयितुं समर्था या सा कुण्डलिनी मध्याशक्तिर्गीयते स्थूलसूक्ष्मरूपेण महासिद्धानां प्रतीयत इति निश्चयः।।—(सि० सि० प० ४।२१)

४. 'स्थूलेति निखिलग्राह्या धारविग्राह्य स्वरूपापि पदार्थन्तरे भ्राम्यमाणा चिद्रूपा या वर्तते सा कुण्डलिनी साकारास्थूलापुनस्त्वियमेव स्वप्रसारचातुर्यतया वर्तमाना योगिनां परमानन्दतया कुण्डलिया निश्चयभूता वर्तते सा सूक्ष्मा निराकारा प्रबुद्धा महासिद्धानां मते प्रसिद्धाः।। (सि०सि०प०४।२२)

विषयासक्त एवं परिबद्ध जीवमात्र के लिए सूक्ष्म है तथापि यह शब्दात्मक **स्थूल जगत** की सृष्टि करने के कारण **साकार स्थूल कही जाती है।** वह रूपादि विषयों में भ्रमण-संचार करती रहती है यही निज विस्तार-कौशल से नाभिस्थान (मणिपूरक) में अपने आनन्ददायक व्यापक अखण्ड आत्मा का निश्चय कराती है। जागृत होने पर यह **सूक्ष्म** रूप से **निराकार** और सर्वत्र व्यापक रहती है।

सृष्टि कुण्डलिनी—भगवती कुण्डलिनी के दो स्वरूप हैं—(१) स्थूल (२) सूक्ष्म।

'सृष्टि कुण्डलिनी'—यह कुण्डलिनी स्थूल जगत की सृष्टि करती है। यह नाभिचक्र (मणिपूर) में प्रबुद्ध होकर उपाधि-सम्बंध छोड़कर अखण्डस्वरूप में ऊध्वमुखी होकर प्रतिष्ठित होती है।

(१) स्थूल रूप।
***सृष्टि कुण्डलिनी *** (२) प्रत्यगात्मिका अपरा, सर्वगा, सूक्ष्म

'सृष्टिकुण्डलिनी ख्याता द्विधा भागवती तु सा॥
एकधा स्थूलरूपा च लोकानां प्रत्यगात्मिका।
अपरा सर्वगा सूक्ष्मा व्यापि-व्यापकवर्जिता।
तस्या भेदं न जानाति मोहिता प्रत्ययेन तु॥''

—सिद्धसिद्धान्त पद्धतिः (४।२३)

(१) स्थूल जगत की निर्मात्री कुण्डलिनी = सृष्टि कुण्डलिनी।

(२) इसके दो स्वरूप हैं—

(क) 'एकधा **स्थूलरूपा** च **लोकानां प्रत्यगात्मिका।**

(ख) **अपरा सर्वगा सूक्ष्मा व्यापि-व्यापकवर्जिता।।**

(३) जब यह कुण्डलिनी नाभिचक्र (मणिपुर) में प्रबुद्ध होकर अपने अखण्डस्वरूप में ऊर्ध्वमुखी होती है तब **सूक्ष्म, सर्वव्यापक** एवं व्याप्यव्यापकभाव से रहित होती है। अज्ञानी उसे नही जान पाते।

(४) सूक्ष्मा, चिद्रूपिणी एवं निर्विषया मध्य कुण्डलिनी को देहसिद्धि हेतु गुरु के उपदेश से अपनी आत्मस्वरूप की अभिव्यक्ति हेतु जगाना चाहिए। यह **संवित्स्वरूपा** मध्य कुण्डलिनी नितान्त प्रबोधनीया है।[१]

---

१. तस्मात् सूक्ष्मापंरा **संवित्स्वरूपा मध्या शक्ति कुण्डलिनी** योगिमिर्देहसिद्धयर्थ सद्गुरुमुखाज्ज्ञात्वा स्वस्वरूप दशायां प्रबोधनीया॥ (४।२४)

ऊर्ध्वशक्तिनिपात और ऊर्ध्व कुण्डलिनी—

(१) मध्य शक्ति कुण्डलिनी का सहस्त्रदलपद्म में प्रवेश ही **'ऊर्ध्वशक्तिनिपात'** कहलाता है।

(२) भौतिक पदार्थों, लौकिक एषणाओं एवं निःशेष विषयों से ऊपर विद्यमान रहने की स्थिति ही **'ऊर्ध्व'** है।

(३) नामरूपातीत आदिनाथ ही **'परमपद'** है।

(४) परमात्मा की स्वरूपाभिव्यक्ति करने वाली शक्ति ही—**'ऊर्ध्वशक्ति'** (परम प्रबुद्धा भगवती कुण्डलिनी) कही जाती है।

(५) षट्चक्रों का भेदन करके महाकुण्डलिनी सहस्त्रार में शिव से ऐक्य प्राप्त करके शिव में ऐकात्म्य प्राप्त करती है॥[१]

'परमपद' और उसकी प्राप्ति की प्रक्रिया—गोरक्षनाथ कहते हैं कि—

'अत ऊर्ध्वशक्तिनिपातेन योगिभिः परमं पदं प्राप्यत इति सिद्धम् ॥''

अर्थात् ऊर्ध्वशक्तिनिपात के द्वारा योगी परमपद प्राप्त करते हैं।





[२] **'ऊर्ध्व शक्ति'** (भगवती कुण्डलिनी का सहस्त्रारस्थ प्रबुद्ध स्वरूप के **निपात से** परमपद की प्राप्ति होती है।

परासंवितस्वरूप और उसका व्यापक स्वरूप—गोरक्षनाथ कहते हैं—

''सत्वे-सत्वे सकलरचना राजते संविदेका।
तत्त्वे-तत्त्वे परममहिमा संविदेवावभाति।
भावे-भावे बहुलतरला लम्पटा संविदेषा।
भासे-भासे भजनचतुरा बृंहिता संविदेव॥'' (४।२८)

परासंवित्स्वरूप शिवशक्ति के **सामरस्य** का स्वरूप यह है कि व्यष्टि-समष्टिस्वरूप समस्त भौतिक पदार्थों के साथ वह एक है और वह निखिल पिण्डों का मूलाधार है—

---

१. 'अथ **ऊर्ध्वशक्तिनिपातः** कथ्यते। सर्वेषां तत्त्वानामुपरिवर्तमानत्वान्निनमि **परमंपदमेवमूर्ध्व प्रसिद्धं**। तस्याः स्वसंवेदन नानासाक्षात्कारसूचनशीलाया **सोऽर्ध्वशक्तिरभिधीयते**। तस्या निपातनमिति स्वस्वरूपद्विधाभासनिरासः किन्तु स्वस्वरूपाखण्डत्वेन भवति। (४।१५)

२. सि०सि०प० (४।२७)

'किमुक्तं भवति परापरविमर्शरूपिणी संविन्नाना शक्तिरूपेण निखिलपिण्डाधारत्वेन वर्तते इति सिद्धान्तः॥' —सि०सि०प० (४।२९)

* पिण्डपदसामरस्य *

गोरक्षनाथ जी कहते हैं कि—

(१) परपिण्डादि से लेकर स्वपिण्ड पर्यन्त सारे पिण्डज्ञान को जानकर उसका परमपद में समरसीकरण कर देना चाहिए—

'महासिद्धयोगिभिः पूर्वोक्तक्रमेण परपिण्डादिस्वपिण्डान्तं ज्ञात्वा परम पदे समरसं कुर्यात्॥'' (५।१)

[1]परासंवित् स्वरूप शिवशक्ति को अभिन्न जानकर, 'अधःशक्ति' (मूलाधार में सोई हुई कुण्डलिनी) को जगाकर **'मध्यशक्ति'** के प्रबोधन के साथ **'ऊर्ध्वशक्ति'** का सहस्रार में निपात करना चाहिए।[1]

(२) **'व्यष्टि पिण्ड'** एवं सच्चिदानन्द परमात्मस्वरूप **'परपिण्ड'** का ज्ञान प्राप्त करके **'परमपद'** (परमात्मा) में उसका सामरस्य करना चाहिए।

'परमपद' का क्या स्वरूप है?

(१) परमपद **द्वैताद्वैतविवर्जित** है।

(२) यह अत्यन्त **स्वानुभवैकगम्य** है। यह **स्वसंवेद्य** है।

(३) यह अत्यन्त भासाभासकमय है।[2]

(४) **यह वह पद है** जहाँ बुद्धि, मन, तत्ववित्, अपरा, कला, ऊहापोह, वाणीगोचरता, वाग्मिता एवं वाणी की पहुँच नहीं है तथा जो स्वसंवेद्य एवं अनिर्वाच्य है और जो गुरु द्वारा भी वर्ण्य नहीं है।[3]

(५) यह निरुपाधिक है और प्रमाणादि साधनों से भी अप्राप्य है।

(६) गुरुचरणैकप्रवण शिष्य पर गुरु की परमकरुणा होने पर ही इसका बोध होना संभव है। यह स्वसंवेद्य मात्र है।[4]

---

१. सि०सि०प० (४)

२. **परमपदमिति** स्वसंवेद्यमत्यन्तभासाभासकमयम्। (५।१)

३. यत्र बुद्धिर्मनोनास्ति तत्त्वविन्नापराकला।
ऊहापोहौ कर्तव्यौ, वाचा तत्र करोति किम्।
वाग्मिनागुरुणा सम्यक् कथं तत्पदमीर्यते।
तस्मादुक्तं शिवेनैव स्वसंवेद्यं परपदपदम्।

४. अतएव नानाविधविचार्यचातुर्यचर्चाविस्मयाङ्गत्वाद् गुरु चरणकृपातत्त्वमात्रेणा, निरूपाधिकत्वेन निर्णेतुं शक्यत्वात् स्वसंवेद्यमेव परमपदं प्रसिद्धमिति सिद्धान्तः। (५।४)

* सन्मार्ग, पाखण्ड मार्ग एवं गुरु *

(१) **सन्मार्ग** = योगमार्ग

(२) **पाखण्ड मार्ग**—योगमार्ग से इतर समस्त साधन-मार्ग

(३) **गुरु** = सन्मार्ग सन्दर्शनशील

'गुरुत्रय सम्यक् सन्मार्ग सन्दर्शनशीलो भवति
सन्मार्गो योगमार्गस्तिदितरः पाखण्ड मार्गः॥'

—गोरक्षनाथ : सिद्धसिद्धान्तपद्धति (५।४)

आदिनाथ ने कहा है—

'योगमार्गेषु तन्त्रेषु दीक्षितास्तांश्च दूषकाः।
तेहि पाखण्डिनः प्रोक्तास्तथा तैः सहवासिनः॥'

गुरुवाद = जिस समय सिद्ध गुरु द्वारा परमपद की प्राप्ति के उपायभूत योगमार्ग के उपदेश से परमात्मबोध कराया जाता है उसी समय स्वसंवेद्य अलख निरञ्जन परमेश्वर का साक्षात्कार हो जाता है। परमपद की प्राप्ति का **गुरुकृपा ही एक मात्र उपाय है**[१] 'गुरु रेवात्र कारणमुच्यते॥'

गुरु और सामरस्य—यही कारण है कि सिद्ध योगी गुरु के **कृपाकटाक्ष** और अपनी योगसाधनासंभूत स्वरूपबोधात्मक स्वसंवेद्यता के द्वारा अपने व्यष्टि शरीर की निरुत्थानानुभूति (व्यष्टि-समष्टि पिण्ड-अभेदता) द्वारा व्यष्टि पिण्ड से परपिण्ड के सामरस्य की अनुभूति करते हैं।[२]

निरुत्थान-प्राप्ति के उपाय—

(१) महासिद्ध योगी स्वस्वरूपानुन्धान के द्वारा (स्व-परपिण्ड की अभेदता द्वारा) **'निजावेश'** का साक्षात्कार करता है अर्थात् साधक परमेश्वर को अपने ही स्वरूप में प्रतिष्ठित देखता है।

(२) **स्वपिण्ड-परपिण्ड की अभेदता की अनुभूति** से परमात्मपिण्ड में **'निजावेश'** (आत्माभिव्यक्ति) का संचार होता है।

(३) **'निजावेश'** के परिणामस्वरूप **'निरुत्थान'** या **'सामरस्य'** का उदय होता है। योगी को **स्वाभिव्यक्तिपूर्वक** यह अनुभूति होती है कि यह **परपिण्ड (परमात्म पिण्ड)** मेरा ही **व्यष्टिपिण्ड** है।

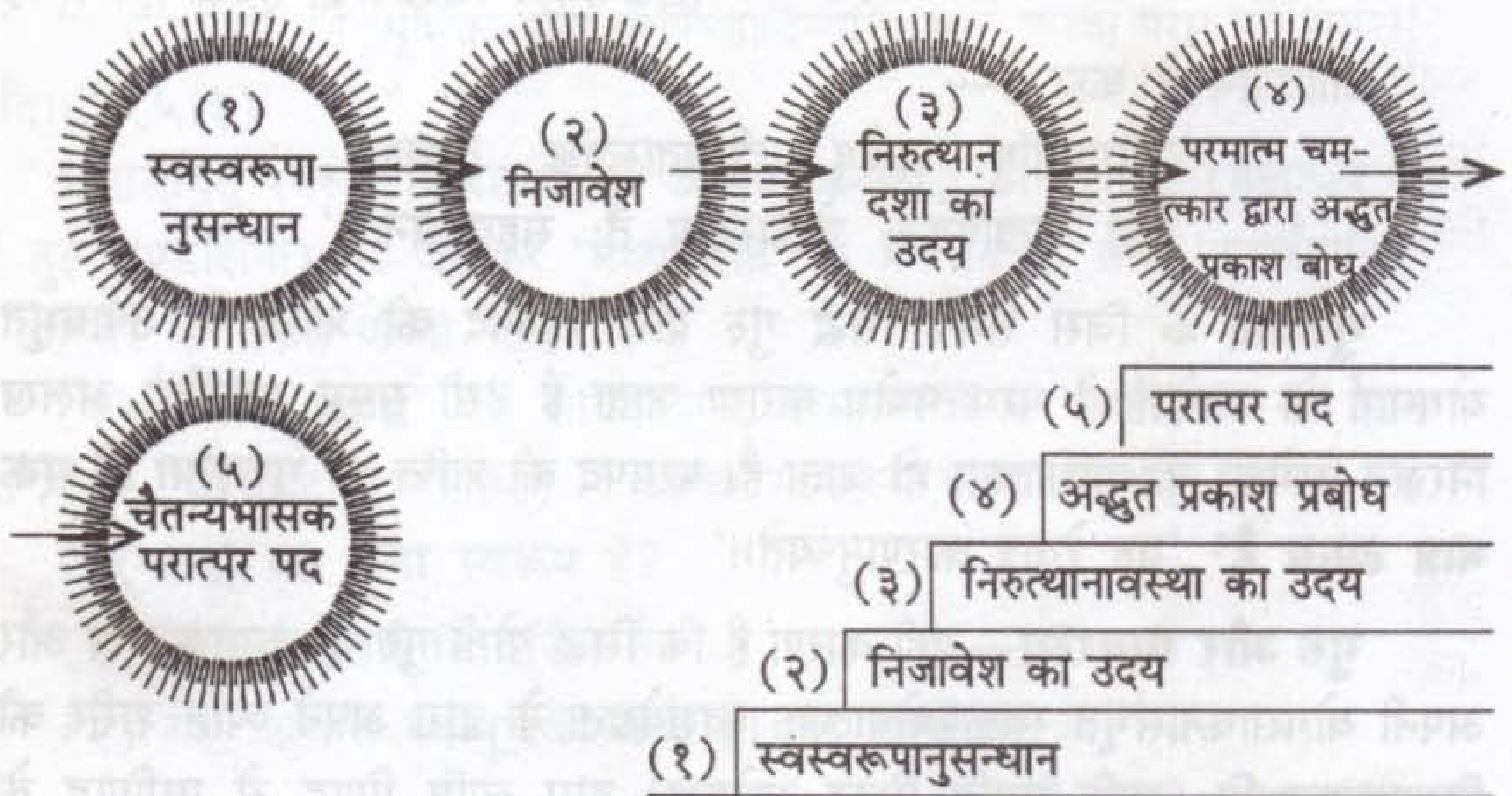
१. 'यस्मिन् दर्शिते सति तत् क्षणात् स्वसंवेद्य साक्षात्कारः समुत्पद्यते ततो गुरु रेवात्र कारणमुच्यते॥ (सिद्धसिद्धान्त पद्धति ५।६)

२. 'तस्मात् गुरुकटाक्षपातात् स्वसंवेद्यतयाच महासिद्धयोगिभि स्वकीय पिण्डनिरुत्थानानुभवेन समरसं क्रियत इति सिद्धान्तः। (५।७)

(४) सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा की स्वसंवेद्य अनुभूति के चमत्कार से अद्भुत प्रकाश स्वरूप **आत्मबोध** का उदय होता है।

(५) इन व्यापारों से (निरुत्थान, निजावेश एवं सामरस्य से) 'द्वन्द्व' (**स्वपिण्ड एवं परमात्मपिण्ड में भेद दृष्टि**) का अवसान हो जाता है और फिर अखण्ड परमात्म स्वरूप **'परमपद'** का प्रत्यक्षीकरण होता है।

निरुत्थान-प्राप्ति के उपाय[1]



(६) इस प्रकार हम देखते हैं कि **महासिद्धयोगी गुरुप्रसाद** प्राप्त करके अपने अवधान बल से **स्वपिण्ड एवं परपिण्ड में ऐक्यानुभूति** के द्वारा तत्क्षण **परमपद** की अनुभूति प्राप्त कर लेते हैं।[2]

(७) योगी अपने अनुभव के द्वारा **'व्यष्टिपिण्ड' के साथ 'परपिण्ड' (परमात्मा) का अभेद-ज्ञान** प्राप्त करके अपने व्यष्टि पिण्ड का **'परमपद'** से **एकीकरण** करते हैं। अपने व्यष्टि पिण्ड की उस परमपद के साथ एकात्मता की

---

१. निरुत्थान प्राप्युपायः कथ्यते—

(१) महासिद्धयोगिनः **स्वस्वरूपतयानुसन्धानेन निजावेशो** भवति। (२) निजावेशान्निः पीडित **निरुत्थानदशामहोदयः** कश्चिज्जायते। (३) ततः **सच्चिदनन्दचमत्काराद्भुताकार प्रकाशप्रबोधो** जायते। (४) प्रबोधादखिलमेतद् द्वयाद्वयप्रकटतया **चैतन्यभासकं परात्परपरपदमेव** प्रस्फुटं भवति।। (गोरक्षनाथ : सि०सि०प० ५।८)

२. अतएव महासिद्धयोगिभिः सम्यग् गुरुप्रसादं लब्ध्वावधानबलेनैक्यं भजमानैस्ततक्षणात् परमं पदमेवानुभूयते।। (५।८)

अनुभूति करते हुए योगी अपने पिण्ड को सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा में अभिव्यक्त करके (परपिण्ड के साथ अभेदता की अनुभूति करके) परमपदानुभूति करते हैं।[१]

समरसीकरण—निजपिण्ड परीक्षा (अपने शरीर में भी परमात्मस्वरूप रश्मि रूपआनन्द का विकास) और इस प्रकाशोन्मेष को अपने ही व्यष्टिपिण्ड के भीतर समेट कर परमात्मा से अभिन्नता (अभेद) की अनुभूति करना ही **'समरसकरण' है।**[२]

(८) अपने व्यष्टिपिण्ड के भीतर परमात्मप्रकाश का प्रत्याहरण करने के परिणाम स्वरूप यह शरीर **महाप्रकाश पुञ्ज के रूप में आकार ग्रहण** करता है अर्थात् यह सच्चिदानन्दस्वरूप हो उठता है। इस प्रकार अपने व्यष्टि पिण्ड से परमात्मप्रकाश के प्रत्याहरण-समरसकरण द्वारा सिद्धयोगी देहसिद्धि (चिन्मय स्वानन्द विग्रह) की प्राप्ति से चिरकाल तक अमर रहते हैं।[३]

'पिण्डसिद्ध' का आचार एवं उसकी वेषभूषा—पिण्ड योगी को—

(१) शंखमुद्रा धारण करने के साथ ही केश रोम भी धारण करना चाहिए।

(२) अमरी क्रिया द्वारा सहस्त्रार स्रवित अमृत का पान करना चाहिए।

(३) एकान्त वास, संध्या जप, भैरव की पूजा, शंखनाद, कौपीन, पादुका, अङ्गवस्त्र, बहिर्वस्त्र, कम्बल, छाता, वेत्र, कमण्डल, भ्रस्मधारण, त्रिपुण्ड्र एवं गुरु वन्दन भी उसके लिए आवश्यक है।

पिण्ड-सिद्धि के कारण योगी को समस्त योग-सिद्धयाँ प्राप्त हो जाती हैं।[४]

योगमार्ग की श्रेष्ठता—गोरक्षनाथ जी कहते हैं कि श्रुति एवं स्मृति दोनों में योग से बढ़कर कोई मार्ग बताया ही नहीं गया है अतः योगमार्ग ही श्रेष्ठतम मार्ग है इसी बात को गोरक्षनाथ ने 'योगशतक' में भी कहा है—

---

१. अतएव महासिद्धयोगिभिः सम्यग् गुरुप्रसादं लब्ध्वा..............तदनुभवबलने स्वकीयं सिद्धं सम्यङ् **निजपिण्डं** ज्ञात्वा तमेव परमपद एकीकृत्य तस्मिन् प्रत्यावृत्या रूढ़ैवाभ्यन्तरे स्वपिण्ड सिद्ध्यर्थे महत्वमनुभूयते॥ (सि०सि०प० ५।१०)

(२) निजपिण्डपरीक्षा च स्वस्वरूप-किरणानन्दोन्मेषमात्रं यस्योन्मेषस्य प्रत्याहरणमेव समरसकरणं भवति॥ (५।११)

३. अतएव स्वकीयं पिण्डं महद्रश्मिपुञ्जं स्वेनैवाकारेण प्रतीयमान स्वानुसन्धानेन स्वस्मिन्नुरीकृत्य महासिद्धयोगिनः पिण्डसिद्ध्यर्थं तिष्ठन्तीति प्रसिद्धम् ॥ (५।१२)

४. तेषां पिण्डसिद्धौ सत्यां सर्वसिद्धयः संनिधाना भवन्ति॥ (५।१७)

यस्मिञ्ज्ञाते जगत्सर्वसिद्धं भवति लीलया।
सिद्ध्यः स्वयमायान्ति तस्माज्ज्ञेयं परंपदम् ॥१८॥
परंपदं न वेषेण प्राप्यते परमार्थतः।
देहमूलं हि वेषः स्याल्लोकप्रत्ययहेतुकः॥१९॥

५. योगमार्गात्परो मार्गो नास्ति नास्ति श्रुतौ स्मृतौ।
शास्त्रेष्वन्येषु सर्वेषु शिवेन कथितः पुरा॥ (५।२१)

'द्विजसेवितशाखस्य श्रुतिकल्पतरोः फलम्।
शमनं भवतापस्य योगं भजत सत्तमाः॥' (गो०श०६)

गोरक्षनाथ जी ने यहाँ **'योग'** को 'संहननोपाय' कहा है—
'योगः संहननोपायः ज्ञानसङ्गतियुक्तिषु॥' (५।२२)

योग दो वस्तुओं के सम्मिलन को कहते हैं।

नाथयोगियों का अद्वैतवाद—गोरक्षनाथ जी कहते हैं कि—

(१) पिण्ड-सिद्धि हो जाने पर

(२) अखण्ड ज्ञान प्राप्त्यर्थ (**महासिद्धों के मत में**) शिवतत्त्व रूप **'परमपद'** ही ध्येय एवं उपास्य है।

(३) उस **आत्मस्वरूप अखण्ड शिवतत्त्व** में यह भावना करनी चाहिए कि—"मैं ही शिव हूँ। मुझमें और शिव में पूर्ण तादात्म्य है॥'

(४) परमशिव से अभिन्न जीवात्मा का यथार्थ आत्म स्वरूप **'सहज संयम'** **'सोपान'** एवं **'अद्वैतक्रम'** से लक्षित है—

'तस्मिन्नहं भावे जीवात्मा च सहजसंयम सोपायाद्वैतक्रमेणोपलक्ष्यते॥" (५।१५)

'सहज' 'संयम' 'सोपाय' एवं 'अद्वैत' क्या हैं?

(१) **'सहज'** क्या है?

विश्वातीत परमेश्वर के विषय में यह समझना चाहिए कि **विश्व के रूप में तो वही अवभासित हो रहा है और वही** अद्वैततत्त्व एकात्मक है और मैं भी उसके एकीभूत (अभिन्न) हूँ। इस प्रकार का स्वस्वभावज जो ज्ञान है वही **'सहज'** है।

(२) **'संयम'** क्या है?

अपने विषय-ग्रहण में निरन्तर संलग्न इन्द्रियों को विषयाभिमुख होने से निरुद्ध करके उन्हें आत्मा में लगाना ही **'संयम'** है।

(३) **'सोपाय'** क्या है?

'मैं स्वयमेव स्वप्रकाश स्वरूप परमात्मा हूँ'—इस प्रकार अपनी परमात्मा के

---

१. **'सहज'**—तत्र सहजमिति विश्वातीतं परमेश्वरं विश्वं रूपेणावभासमानमिति ज्ञात्वै कमेवास्तीति स्वस्वभावेन यज्ज्ञानं तत्सहजं प्रसिद्धम् ॥ (सि०सि०प० ५।२६)

२. **'संयम'**—संयम इति सावधानानां प्रस्फुरदव्यापाराणां निज वर्तिनां संयमं कृत्वाऽऽत्मनि धीयत इति संयमः॥ (२७।

३. **'सोपाय'**—'सोपायमिति स्वयमेव प्रकाशमयं स्वेनैव स्वात्मन्येकीकृत्य सदा तत्त्वेन स्थातव्यम् ॥ (५।२८)

साथ तत्त्वत: अभिन्नता मानते हुए आत्मस्वरूप में संलीन रहना चाहिए। जिस ज्ञान से इस अखण्डस्वरूपता का बोध होता है, वही **'सोपायज्ञान'** है।

(४) **'अद्वैत'** क्या है?

योगी कुछ किये बिना ही नित्यतृप्त, निर्विकल्प, एवं निरुत्थानदशावस्थित रहता है। उसकी यह अवस्था ही अद्वैत है।

(५) जीवात्मा और परमात्मा में पूर्ण अभेद है—इत्याकारक ज्ञान ही **'सहज'** है। इन्द्रियों के सहित मन को निगृहीत करके आत्मा में संलग्न रखना ही **संयम** है। अपने सत्स्वरूप में विश्रान्ति ही **सोपाय** है। अद्वैतस्वरूप ही 'परमपद' है

'सहजं' स्वात्मसंवित्तिः, **'संयमः'** स्वस्वनिग्रहः।
सोपायं स्वस्वविश्रान्तिर**द्वैतं परमं पदम्** ॥' (५।३०)

सद्गुरु का सर्वोच्च स्थान—गोरक्षनाथ कहते हैं कि चाहे करोड़ों शास्त्रों का अध्ययन कर लिया जाय, चाहे विज्ञान, तर्क, आचार, वेद, वेदान्त, तत्त्वमसि 'सोऽहं हंसः जप', जीवात्मा-परमात्मा में एकात्म्य, ध्यान एवं जप आदि में कितना भी कौशल, सिद्धि एवं विज्ञता प्राप्त कर ली जाय किन्तु—

'असाध्याः सिद्ध्यः सर्वाः सद्गुरोः करुणां विना।
अतस्तु गुरुरासेव्यः सत्यमीश्वरभाषितम्॥३५॥'[२]

सद्गुरुशरणागत योगी के योग साफल्य के क्रमिक-सोपान

	वर्ष
खेचरत्व	सातवें वर्ष
शस्त्रादि से अप्रभावित	छठवें वर्ष
वाक्सिद्धि	पाँचवें वर्ष
शीतोष्ण आदि द्वन्द्वों से मुक्ति	चौथे वर्ष
देहसिद्धि। दिव्यतेज	तीसरे वर्ष
कृतार्थता। सर्वभाषण	दूसरे वर्ष
मलादि दोषों से निर्मुक्त एवं निरोग	पहले वर्ष

	वर्ष
शिव एव भैरव की समतुल्यता	१२वें वर्ष
सर्वज्ञता सर्वसिद्धि प्राप्ति	११वें वर्ष
वायुगति	१०वें वर्ष
शरीर का वज्री करण	९ वें वर्ष
अणिमादिक सिद्धयाँ प्राप्ति	आठवें वर्ष

---

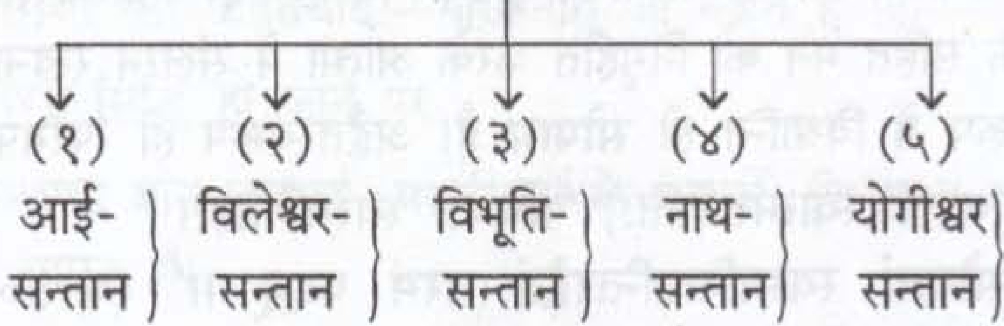
१. **'अद्वैत'**—अद्वैतमित्यकर्तृतयैव योगी नित्यतृप्तो निर्विकल्पः सदा निरुत्थानत्वेन तिष्ठति। (५।२९)

२. सिद्धसिद्धान्तपद्धति (५।३१-३५)

यथाक्रम इस प्रकार सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं—

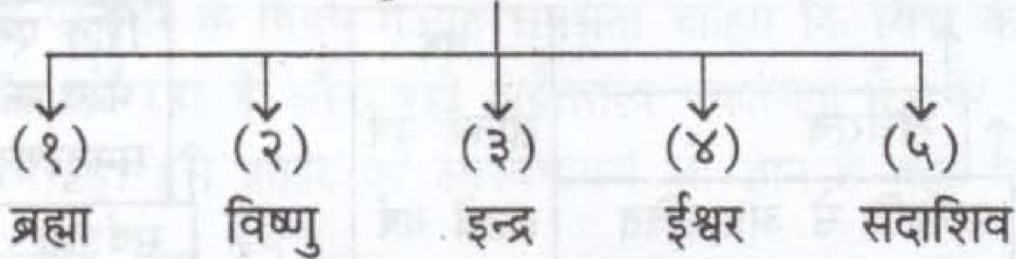
(१) एवं द्वादशवर्षैऽस्तु सिद्धयोगी महाबलः।
जायते सद्गुरोः पादप्रभावन्नात्रसंशयः॥[१]

(२) अनुवुभूषित योनिजविश्रमं स गुरुपादसरोरुहमाश्रयेत्।
तदनुसरणात्परमं पदं **समरसीकरणे** न च दूरतः॥[२]

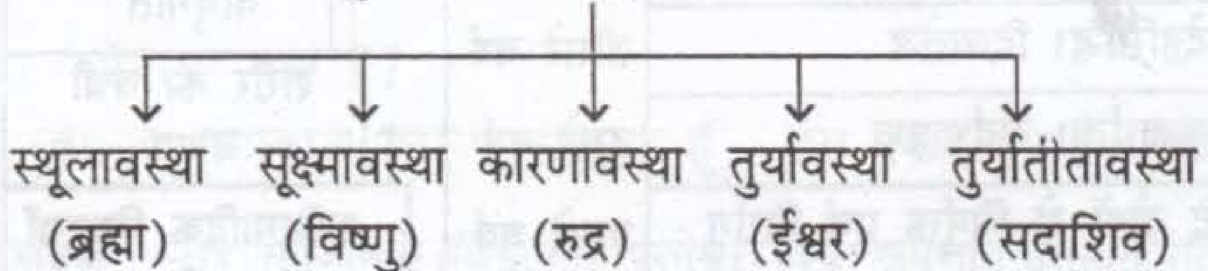


सारांश—(१) पारमार्थिक दृष्टि से **सारे पदार्थ पाञ्चभौतिक** हैं।
(२) **आत्मा अजन्मा** है।
(३) आत्मा सद्ज्ञानस्वरूप शिव है।
(४) शिव से इतर सारे पदार्थ अज्ञान मात्र हैं। अज्ञान प्रकृति है।
(५) शिव मात्र ही ज्ञानहै।[३]

गुरु-सन्तान—ये संख्या में ५ हैं।



आदिनाथ शिव ही **परमगुरु** हैं।



---

१. सि०सि०प० (५।४४)

२. तत्रैव (५।४५)

३. परमार्थतः **सर्वपाञ्चभौतिकं न जाताः पुरुषाः** सम्बोध मात्रैकरूपः **शिव-स्तदितरत्**सर्वमज्ञानमव्यक्तं भवति तत्र **शिवस्तु** ज्ञानम् ॥ (सि०सि०प० ५।४७)

'ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च
ईश्वरश्च सदाशिवः।
एताश्च देवताः प्रोक्ता,
सन्तानानां क्रमेण तु॥''[१]

गुरु का महत्व—गोरक्षनाथ कहते हैं कि गुरु से अधिक कोई है ही नहीं।[२] गुरु (१) अपने कथन (२) शक्तिपाद (३) अवलोकन एवं (४) प्रसाद से शिष्य को 'परमपद' प्राप्त करा देता है।

'कथनाच्छक्तिपाताद्वा यद्वापादाव लोकनात्।
प्रसादात्स्वगुरोः सम्यक् प्राप्यते परमं पदम्॥' (५।६५)

योगी को चाहिए कि वह—

(१) सम्यक निजविश्रान्तिकारक महायोगी **सद्गुरु की सेवा** करे।

(२) सम्यक रूप से सावधान होकर **परमपद का ज्ञान** प्राप्त करे।

(३) फिर अपने व्यष्टिपिण्ड में **समरसभाव** या परमपद रूप में अपने **व्यष्टि पिण्ड में व्याप्त आत्मा का सामरस्य या** ऐक्य स्थापित करे।

(४) अद्वैत स्वरूप में परमात्मा में स्थित होकर परमपद में स्वरूपावस्था प्रतिष्ठित करे॥

'परमपद' की प्राप्ति—यह विधि, शौच, पुण्य, विज्ञान, वैराग्य, नैराश्य, अनाहार, प्राणधारण, मुद्राधारण, विरक्ति, कायक्लेश, देवार्चन, भक्ति, षडदर्शन, मुण्डन, जप, तप, अनन्त उपाय, ध्यान, यज्ञ एवं तीर्थ सेवन आदि से संभव नहीं है। यह केवल गुरुकृपा-प्राय है।[३] ये सारे साधन देहसाध्य हैं। इनमें आसक्ति त्याज्य है। साधक केवल **'परमपद'** (आत्मस्वरूप) में ही स्थिर रहते हैं।[४]

---

१. स्थूल-सूक्ष्म-कारण-तुर्य-तुर्यातीतमिति पञ्चावस्थाः क्रमेण लक्ष्यन्ते। एतेषामपि सर्वेषां विज्ञाता यः स योगी **सिद्धपुरुषः** स योगीश्वरेश्वर इति पररहस्यं प्रकाशितम् ॥ (५।५५)

२. न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं।
शिवशासनतः शिवशासनतः शिवशासनतः शिवशासनतः॥ (५।६६)

३. अतएव सम्यग् निजविश्रान्तिकारकं महासिद्धयोगिनं सद्गुरुं सेवयित्वा सम्यक् सावधानेन **परमंपदं** सम्पाद्य तस्मिन्निजपिण्डे च **समरसभावं** कृत्वात्यन्त**निरुत्थानेन** सर्वानन्दत्वे निश्चलं स्थातव्यं ततः स्वयपेव महासिद्धो भवतीति सत्यम् ॥ (५।५६)

४. न जपान्न तपो ध्यानान्न यज्ञतीर्थ सेवनात् । नानन्तोपायत्नेन प्राप्यते परमं पदम् ॥ (५।६२)

सद्गुरुवाद—सद्गुर की ही शरण में जाना चाहिए अन्य तथाकथित भ्रष्ट, पथ विचलित, विडम्बक योगियों एवं गुरुओं का त्याग करना चाहिए॥[१]

'ज्ञानहीनो गुरुस्त्याज्यो मिथ्यावादी विडम्बकः।
स्वविश्रान्तिं न जानाति परेषां स करोति किम्?
शिलया किं परं पारं शिलासंघः प्रातार्थ्यते।
स्वयंतीर्णो भवेद्योऽसौ परान्निस्तारयत्यलम्॥'

अतएव **महासिद्धानां मते** प्रोक्तं वाङ्मात्रेण सम्यगवलोकनेन वा तत्क्षणान्मुहर्विश्रान्तियुक्तं करोतीति यः स सद्गुरुर्भवति। नो चेन्निजविश्रान्तिं विना **पिण्डपदयोः समरसकरणं** न भवतीति सिद्धान्तस्त स्मान्निजविश्रान्तिकारकः सद्गुरुरभिधीयते नान्यः। पुनर्वागादि शास्त्र दृष्ट्यनुमान तर्कमुद्रया भ्रामको गुरुस्त्याज्यः॥[२]

गुरु कौंन हैं? जो सम्यक् रूप से चैतन्य में विश्रान्ति दिला सके और परात्परपद को साक्षात्कृत करा सके॥[३]

नाथ सम्प्रदाय में भक्ति की उपेक्षा—नाथ-सम्प्रदाय में **'ज्ञानमार्ग'** एवं **'योगमार्ग'** का तो अत्यधिक महत्व है किन्तु इसमें भक्ति का सार्वशिक अभाव है। मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, जालन्धरनाथ, कृष्णापाद, गोपीचन्द, भरथरी आदि किसी भी नाथयोगी की रचना में भक्ति की प्रवृत्ति दृष्टिगत नहीं होती।

ज्ञानेश्वर और उनकी भक्ति के प्रति दृष्टि—नाथपंथी योगी ज्ञानेश्वर के ग्रंथों में (अभंग एवं हरिपाठ में) अवश्यमेव भक्ति के प्रति गहन निष्ठा दिखाई पड़ती है। वे कहते हैं—

'भगवान के द्वार पर जो एक क्षण भी खड़ा रहता है वह चारों मुक्तियों को साध लेता है। मुँह से हरि का नाम लो, मुँह से हरि का नाम लो। इस पुण्य की बराबरी कौन कर सकता है? संसार में रहकर जिह्वा से हरिनाम भजन की वृद्धि करो, ऐसा वेदशास्त्र आदि हाथ ऊँचा करके निरन्तर कहते हैं—

'देवाचिये द्वारीं उभाक्षणमरी।
तेणें मुक्ति चारी साधियेल्या॥
हरि मुखेंम्हणा हरि मुखेंम्हणा॥
पुण्याची गणना कोण करी॥

---

१. एतानि साधनानि सर्वाणि दैहिकानि परित्यज्य परमपदेऽहिके स्थीयतेसिद्ध पुरुषैरिति॥ सि०सि०प० (५।६३)

२. सिद्धसिद्धान्तपद्धति (५।७२)

३. गुरुरिति गृणाति शं सम्यक् चैतन्यविश्रान्तिमुपदिशति विश्रान्त्या स्वयमेव परात्परं परमपदमेव प्रस्फुटं भवति तत्क्षणात् साक्षात्कारो भवति।

असोनि संसारीं जिव्हे वेगु करी।
वेदशास्त्र उभारी बाह्या सदा।।'

ज्ञानेश्वर कहते हैं—'चारों वेद हरि की महिमा गाते हैं। दही मथकर जिस प्रकार नवनीत प्राप्त किया जाता है उसी प्रकार ऐ मन ! तू अनन्त परमात्मा को अपना ले और व्यर्थ के झगड़ों और झंझटों का गाल बजाना छोड़ दे। संसार के सब प्राणी, आत्मा और हरि एक ही हैं और जीव तथा शिव समान हैं। हरि का भजन ही स्वर्ग है और भजनानन्दी के लिए भजन अणु-अणु में सर्वत्र ओत-प्रोत है—

''चहुँ वेदीं जाण षट् शास्त्रीं कारण।
अठराहिं पुराणें हरि सी गाती।
मंथुनि नवनीता तैसे घे अनन्ता।
वायां व्यर्थ कथा सांडी मार्गु।
एक हरि आत्मा जीव शिव सदा।।''

योगी ज्ञानेश्वर कहते हैं—'मेरे ध्यान और मन में निरन्तर श्री राम एवं श्री कृष्ण ही बसे हैं। यह अनन्त जन्मों के पुण्य का श्रेष्ठतम फल है—

'ज्ञानदेवा ध्यानीं रामकृष्णमनीं। अनन्त जन्मानीं पुण्य होय।।'

भाव और भक्ति—ज्ञानेश्वर कहते हैं कि—'भाव' के बिना भक्ति और भक्ति के बिना मुक्ति संभव नहीं है। 'भगवान शीघ्र ही प्रसन्न हों'—यदि मन में ऐसी कामना रखते हो तो व्यर्थ का कष्ट मत सहन कर प्रत्युत् मन को स्थिर करो।

'भावे वीणा भक्ति भक्तिवीण मुक्ति।
बलें वीण शक्ति बोलूं नये।।'

ज्ञानदेव कहते हैं कि—तू हरि-भजन कर। इससे संसार सागर से तर जायेगा—

'ज्ञानदेव म्हणे हरिजप करणें।
तुटेल धरणों प्रपंचाचें।।'

योगी ज्ञानेश्वर योग-साधक होकर भी कहते हैं कि—'यज्ञ और योग-विधि से सिद्धि प्राप्त हाने से ईश्वर-प्राप्ति नहीं होती। ये केवल उपाधियाँ मात्र हैं और दंभधर्म उत्पन्न करते हैं। बिना भाव के भगवान की प्राप्ति नहीं होती—

'योगयाग विधी येणों नोहे सिद्धी।
वायांची उपाधी दंभ धर्म।
भावे वीण देव न कले नि:सन्देह।'

ज्ञानेश्वर कहते हैं—'रामनाम का जप जो आशुतोष का प्रिय मंत्र है उसे अपनी

हिह्वा पर निरन्तर स्थापित करो। तू निरन्तर 'राम राम' जपा कर। संसार का श्रेष्ठतम तत्त्व हरि का नाम है। जो इसे प्राप्त कर लेता है, उसे द्वैत का बन्धन पीड़ित नहीं करता। योगियों को अपनी श्रेष्ठतम कला में जो अमृतपान का अनुभव होता है वही श्रेष्ठ आनन्द वैष्णवों को हरिनाम लेने से प्राप्त होता है। परमात्म-प्राप्ति का सुलभ साधन भगवान नाम स्मरण ही है—

'रामकृष्ण वाचा भाव हा जिवा चा।
आत्मा जो शिवाचा राम जप।।
एक तत्त्व नाम साधिती साधन।
द्वैताचें बंधन न बाधिजे।।
नामामृत गोडी वैष्णवा लाधली।।
योगिया साधली जीवन कल।
ज्ञानदेव म्हणे नाम है सुलभ।
सर्वत्र दुर्लभ विरला जाणे।'

भक्ति के बिना जप और ज्ञान भी व्यर्थ है—और जिसका मन राम कृष्ण के रूप में रँगा नहीं है उसका जप और ज्ञान व्यर्थ है। **ज्ञानेश्वर कहते हैं**—

विष्णूवीणा जप व्यर्थ त्याचें ज्ञान।
रामकृष्णीं मन नाहीं ज्याचें।।

जन्म लेकर द्वैतभाव सहित ऐसे अद्वैत परमात्मा को प्राप्त करने का जिसे ज्ञान नहीं है वह प्राणी भाग्यहीन है क्योंकि—

'एक तत्त्व नाम साधिती साधन।
द्वैतांचें बंधन न बाधिजे।'

ज्ञानेश्वर कहते हैं श्री हरि के सगुण ध्यान एवं भजन से मुझे प्रपञ्च के प्रति मौनभाव प्राप्त हुआ है अतः प्रपञ्च मुझे स्वतः भूल गया है—

'ज्ञानदेव म्हणे सगुण हें ध्यान।
नामपाठ मौन प्रपंचाचें।।'

तीर्थयात्रा और हरिनाम—ज्ञानेश्वर कहते हैं कि त्रिवेणी और गंगा-जमुना-सरस्वती के सङ्गम आदि नाना तीर्थों का भले ही भ्रमण कर लिया जाय किन्तु यदि भगवन्नाम में रुचि नहीं है तब सब कुछ व्यर्थ ही व्यर्थ है—

'त्रिवेणी संगमीं नाना तीर्थें भ्रमी।
चित्त नाहीं नामी तरी तें व्यर्थ।।'

ज्ञानेश्वर कहते हैं कि "जो व्यक्ति हरिनाम से विमुख है वह पापी है। उसे मुक्त

करने के लिए भगवान के अतिरिक्त दूसरा कौन दौड़कर आ सकता है? हरिभजन से तीनों लोकों का उद्धार होता है। जो हरिभजन करता है उसकी सारी पीढ़ियों का उद्धार हो जाता है। ज्ञानेश्वर कहते हैं—

"नामासि विन्मुख तो नर पाषिया।
हरि वीण धोवया न पवे कोणी।
ज्ञानदेवम्हणे नाम जपा हरीचें।
परम्परा त्याचें कुल शुद्ध।।"

ज्ञानेश्वर की दृष्टि में तो भले ही पापों की अनन्त राशि खड़ी हो किन्तु हरि का नामोच्चारण करने से वह क्षणमात्र में नष्ट हो जाती है।

हरि उच्चारणीं अनन्त पापराशी।
जातील लयासी क्षणमात्रें।।

जिस प्रकार तृण का अग्नि से संयोग होते ही तृण, अग्निरूप हो जाता है उसी प्रकार निरन्तर जपकर्ता हरिरूप हो जाता है—हरिनाम का उच्चारण अगाध मंत्र है—

'तृण अग्निमेळें समरस झालें।
तैसे नामें केलें जपतां हरि।।
हरि उच्चारण मंत्र हा अगाध।'

ज्ञानेश्वर कहते हैं कि मेरे हरि तो इतने सामर्थ्यवान है कि उनके यथार्थ स्वरूप का निर्णय करने में तो वेद-उपनिषद भी असमर्थ हैं—

'ज्ञानदेव म्हणे हरि माझा समर्थ।
न करवे अर्थ उपनिषदां।।'

ज्ञानेश्वर साधना में बाह्य प्रदर्शन एवं भक्तिहीन साधन को व्यर्थ मानते हुए कहते हैं कि यदि **तीर्थ, व्रत** और **नियमादिक** पर श्रद्धा न हो तो व्यर्थ की उपाधि क्यों एकत्रित की जाय? यदि हथेली में आँवले की भाँति हरि का ज्ञान प्राप्त करना हो तो वह केवल श्रद्धा से ही संभव है। पारा भूमि पर गिरते ही सैकड़ों कणों में विभक्त हो जाता है और उसे एकत्रित करना अत्यन्त कष्टप्रद होता है उसी प्रकार भगवद्भजन के बिना मुक्ति-प्राप्ति के समस्त साधन कष्टप्रद हैं।[१]

परमात्म प्राप्ति का साधन और अद्वैत दृष्टि—ज्ञानेश्वर कहते हैं कि जब तक द्वैत बुद्धि का प्रणाश नहीं होता और (प्रत्येक अणु में परमात्मव्याप्ति रूप) 'समत्वबुद्धि' का उदय नहीं होता तब तक जीव की हरि के साथ एकता (**समाधि**), **तदाकाराचित्तवृत्ति** एवं **आत्मस्थिति** नहीं हो पाती।

---

१. हरिपाठ (११)

यदि मन में भगवान का वास न हो तो समस्त ऋद्धि-सिद्धयाँ व्यर्थ हैं। वे केवल उपाधि मात्र हैं अत: उनका अहर्निश चिन्तन होता रहता है।

ज्ञानेश्वर का कथन है कि—

(१) जो प्राणी निरन्त नाम का भजन करता रहता है उसके ऊपर कलि क्रूर दृष्टि नहीं डालता।

(२) राम एवं कृष्ण का निरन्तर जप **'तप'** की अनन्तराशिका उदय है और साथ ही साथ अनन्त जन्मों के पाप-समूहों का प्रणाश है।

(३) 'हरि हरि' का जप शिव का महामंत्र है। जो इसका जप करता है उसे मोक्ष तथा सुख की प्राप्ति होती है।[१]

(४) केवल भगवन्नाम मात्र का ज्ञान भी द्वैतभावना को दूर कर देता है। समबुद्धि होकर हरि को सर्वत्र देखने से साधक हरिरूप हो जाता है। (ज्ञानेश्वर का यह भी कथन है कि)—"मैंने अपने मन में हरिभजन निरन्तर करने का नियम बना लिया है अत: जन्म-मृत्यु के चक्र से पृथक हूँ॥"[२]

(५) जिसकी बुद्धि में हरिनाम व्याप्त है और राम-कृष्ण नाम वाणी में स्थित है वे दुर्लभ हैं। राम कृष्ण के परम पवित्र नामोच्चारण से **उन्मनी अवस्था** प्राप्त हो जाती है और समस्त सिद्धियाँ मिल जाती हैं। नाम-साधना से सिद्धि, सामर्थ्य, बुद्धि धर्म सभी प्राप्त हो जाते हैं। ज्ञानेश्वर कहते हैं कि—"मेरे अन्त:करण में रामकृष्ण की मोहक मूर्ति इस प्रकार समा गई है कि मुझे दसों दिशाओं में आत्माराम ही दृष्टिगोचर होते हैं।[३]

(६) नाम-जप एवं हरि-कीर्तन से शरीर पवित्र हो जाता है। नाम-जप ऐसा तप है कि इसके प्रभाव से साधक १४ मन्वन्तर (४३२०००००००) पर्यन्त वैकुण्ठ में निवास कर सकता है। उसके कुटुम्बी **'सारूप्य मुक्ति'** प्राप्त करते हैं। हरि भजन एवं हरिनाम-कीर्तन करने वाला वैकुण्ठ प्राप्त करता है और तीर्थाटन का फल प्राप्त करता है। ज्ञानेश्वर कहते हैं कि मुझे सदैव हरि का नाम प्रिय है। अत: मुझे हरिनाम में ही आनन्द प्राप्त होता है॥

(७) श्रीनारायण का नाम ही सब कुछ है, उसका ही भजन करना चाहिए। जप तप आदि कर्म करने का फल हरि-भजन के बिना व्यर्थ है। नाम-जापक हरिरूप हो जाता है। ज्ञानेश्वर कहते हैं कि—हरिनाम ही मेरा मूल मंत्र है यही मेरा शास्त्र भी है—

---

१. हरिपाठ (१४)
२. हरिपाठ (१५)
३. हरिपाठ (१६)

'ज्ञानदेवीं मंत्र हरिनामाचें शास्त्र।।'

(८) ज्ञानेश्वर कहते हैं कि नाम-स्मरण एवं हरि-गुणगान की युग्मता वैष्णवों ने निर्मित की है। यह अनन्त कोटि पापों का संहारक है। अनन्त कोटि कृत तप का फल हरिनाम स्मरण है। **योग, याग, क्रिया, धर्म** और **अधर्म** ये सभी **'माया'** हैं। यज्ञ, याग, किया धर्म सभी **हरिरूप** है। हरि-स्मरण के अतिरिक्त अन्य कोई नियम धर्म इस असार संसार में नहीं है—

'योगयाग क्रिया धर्माधर्म माया।।'
'ज्ञानदेवीं यज्ञ याग क्रिया धर्म।
हरि विण नेम नाहीं दुजा।।'

(९) ज्ञानेश्वर कहते हैं कि मैंने अपने गुरु निवृत्ति नाथ से पूँछा तो उन्होंने कहा 'नाम आकाश से भी विशाल है।।'—'गगनाहूनि वाड नाम आहे।।''

(१०) ज्ञानेश्वर कहते हैं कि ''नाम सभी साधनों में श्रेष्ठतम है। उससे कोई कष्ट नहीं होता। अजपा जप का फल लिए साधक के मन को इसी मार्ग पर जाने का निश्चय करना पड़ता है। हरिनाम-स्मरण के बिना जीना व्यर्थ है अत: मैंने श्रीराम एवं श्रीकृष्ण के नाम के स्मरण का मार्ग स्वीकार किया है—

'ज्ञानदेवा जिणें नामे विण व्यर्थ।
रामकृष्णी पंथ क्रमियेला।।'

'सिद्धसिद्धान्तसंग्रह' (बलभद्र-प्रणीत) नामक ग्रंथ में बलभद्र ने नाथदर्शन का निचोड़ प्रस्तुत करते हुए कहा कि नाथमत पूर्ववर्ती मतों से भिन्न है यथा—**'परमतत्त्व'** को ही ले लीजिए।

'परमतत्त्व'—सृष्टि के पूर्व कार्य-कारण-भाव से शून्य कर्तृत्व से शून्य, कुलाकुल, सजातीय-विजातीय-स्वगत भेदों से अतीत (अव्यक्तावस्था में विद्यमान) शिव ही परमतत्त्व है जिसकी आख्या **'स्वयं'** हैं—

कार्यकारणकर्तृत्वं यदा नास्ति कुलाकुलम्।
अव्यक्तं परमं तत्त्वं स्वयं नाम तदा भवेत्।।

उसकी शक्ति 'अवस्थामात्रधर्माधर्मिणी **निजाशक्ति'** थी। निजा शक्ति ही परासंवित् का एक ऐसा अभिन्न अङ्ग है जो अपने आपको विश्व-ब्रह्माण्ड के लिए प्रकट करती है। जब अव्यक्त परम में सिसृक्षा होती है तब वह **'सगुण'** कहलाता है। सिसृक्षा ही उसकी **'शक्ति'** है। यह 'शक्ति' सांख्य की जड़ प्रकृति नहीं है और न तो अद्वैत वेदान्त की अनिर्वचनीया एवं मिथ्या माया शक्ति। यह चिद्रूपिणी और अनन्त शक्ति

सम्पन्ना एवं परमशिव की समवायिनी शक्ति है और इसी का परिणमन (परिणाम) जगत है। शक्ति को चिद्रूपा कहना ही वेदान्त के मायावाद का खण्डन है।

द्वैताद्वैतविलक्षणवाद की नाथ-दृष्टि परमतत्त्व को द्वैत एवं अद्वैत दोनों से अतीत स्वीकार करती है।

शिव और शक्ति में अभेद का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि **'शिव'** शक्ति में एवं **'शक्ति'** शिव में चन्द्र-चन्द्रिकावत स्थित हैं—

"शिवस्याभ्यन्तरे शक्तिः शक्तेरभ्यन्तरे शिवः।
अन्तरं नैवपश्यामि चन्द्रचन्द्रिकयोरिव॥"[१]

'प्रलय' सृष्टि का विनाश नहीं है प्रत्युत् यह शिव के द्वारा शक्ति को अपने में लीन करने की एक अवस्था या व्यापार है। सृष्टि के प्रसार-संकोच की साम्यावस्था ही **परममुक्ति'** है। **जगत का आभास** ही 'शक्तिभाव' एवं उसका **निराभास** ही **'शिवभाव'** है। शिव एकरस एवं अपरिणामी हैं किन्तु शक्ति परिणमनशीला है। 'शक्ति' का तिरोभाव ही जगत का **'प्रलय'** है। शक्ति-उपासना साधन है और शिवत्व-लाभ साधना का फल है।[२]

नाथों की मुक्ति के विषय में महामहोपाध्याय डा० गोपीनाथ कविराज का कथन है कि—

(१) नाथ-योग-साधना पातंजल योग-साधना से पृथक है। यह बौद्धदर्शन एवं शांकर दर्शन की साधना से भी पृथक है। दोनों की **योग-साधना के लक्ष्य भिन्न-भिन्न हैं।**

(२) नाथों का आदर्श, अनद्वैतवादी आगमिक दर्शनों से साम्य रखता है। इसे **'सामरस्य'** कहते हैं। यह सामरस्य द्वैत एवं अद्वैत दोनों से परे है। यह **पुरुष और प्रकृति** में एकता (UNIFICATION) की स्थापना को लक्ष्य में रखता है और इस प्रकार शिव और शक्ति में अपृथकत्व एवं ऐक्य का प्रतिपादन करता है और—

"The attainment of this ideal is the Supreme Unity of Parama Shiva, where Shiva and Sakti are one, Undivided and indivisible whole. It is called Maha Sakti in th language of Saktas and represents the absolute of the Sakta Agams : —Phisosophy of Gorakhnath

शक्तिरहित शिव सामर्थ्यहीन हैं।

---

१. सि०सि०प० (४।३७)

२. सि० सि० सं० ()

गुणत्रय की निरन्तर समता ही **'महामाया'** **'माया'** एवं **'प्रकृति'** है। इन तीनों के ऊपर पराशक्ति या चितशक्ति है। शक्ति का प्रसार एवं सङ्कोच ही जगत की सृष्टि एवं लय है—

'शक्तिप्रसारसङ्कोचौ जगतः सृष्टिसंहृती।'

शिव की 'निजाशक्ति' ही इच्छा-शक्ति या संकल्प है जो 'एकोऽहं बहुस्याम्' की इच्छा के रूप में उन्मिषित होती है। शक्ति ही जगत का कारण है।

परमपद में व्यष्टिपिण्ड का लीन होना अर्थात् समष्टि-व्यष्टि का समरसीकरण—पिण्डपद और परमपद में समरसीकरण होना ही—नाथ योग का लक्ष्य है। नाथ योगियों की साधना का अन्तिम आदर्श—**'समरसकरण'** ही है। वैषम्यरहित अवस्था ही समरसभाव है—अद्वयावस्था है—चिदानन्दमयी अद्वैतनिष्ठा है। इससे परे अनाम है। वह **निर्विकल्प निरुत्थान निर्द्वन्द्व स्थिति** है। द्वैताद्वैत-विवर्जित परमपद स्वसंवेद्य एवं स्वप्रकाशरूप है। गुरु के अनुग्रह से साधक का चित्त विश्रान्त हो जाता है। फिर परमानन्द ज्योति का आविर्भाव होता है। शक्ति के प्रकाश से **'पिण्ड-सिद्धि'** होती है। इसी समय स्वपिण्ड, ब्रह्माण्ड और शक्ति का परमपद से एकत्व स्थापित होता है। इसे ही **समरसीकरण** कहते हैं। इसकी निरन्तरता से**आत्यन्तिक निरुत्थान दशा** प्राप्त होती है। **डा० गोपीनाथ कविराज** कहते हैं—'नाथ पंथ का आदर्श है—**पहले पिण्ड-सिद्धि द्वारा जीवन्मुक्ति प्राप्त करना** और तत्पश्चात् **समरसीकरण द्वारा परामुक्ति।।**[१]

बलभद्र कहते हैं कि नाथमत के अनुसार—**घण्टा, ढोल, मृदङ्ग एवं महाभेरी** निनाद सदृश अनाहत नाद का जो **स्वपिण्ड** एवं **ब्रह्माण्ड** में सम्यक् रूप से निरन्तर श्रवण करते हैं उन्हीं को **सिद्धपद एवं परमपद** की प्राप्ति होती है अन्य को नहीं।

घण्टा-काहल-मर्दल त्वथ महाभेरी निनादं यथा।
सम्यङ् नादमनाहतं ध्वनियुतं शृण्वन्ति ये तादृशम्।।
पिण्डे सिद्धिपरं निरन्तरतया ब्रह्माण्डमध्येऽथवा।
तेषां सिद्धमतेस्कतेः समुदितं सत्यं परं लभ्यते।।
'सत्यक्त्वाखिलभावमेकममलं प्राप्नोत्यहो **स्वं पदम्।।**'[२]

'मुक्ति' प्रदान करने वाला केवल **'नाथ'** है। क्योंकि—

(१) **'शक्ति'** सृष्टि करती है।	'अस्माकं मते **शक्तिः**
(२) **'शिव'** पालन करते हैं।	सृष्टिं करोति, **शिवः**

१. गोरखदर्शन (गोपीनाथ कविराज)

२. सिद्धसिद्धान्तसंग्रह

(३) **'काल'** संहार करते हैं। पालनं करोति, **कालः**

(४) **'नाथ'** मुक्ति प्रदान करते हैं। संहरति, **नाथो** मुक्तिं ददाति।'

मोक्ष का मूल अवधूत हैं—'मूलं मोक्षस्यावधूतो।।''

निरुत्थानरूप अलखनिरञ्जन, द्वैताद्वैतविवर्जित, स्वसंवेद्य परमपद ही ज्ञेय है—

'तन्नित्यं फलनोज्झितं गुरुमयं ज्ञेयं निरुत्थं पदम्।।'

—(सिद्धसिद्धान्तपद्धति)

(१) **मन-मार्ग**—सायुज्यमुक्ति की प्राप्ति। (२) **बुद्धि-मार्ग**—सामीप्य मुक्ति (३) **चित्तमार्ग**—स्वरूप मुक्ति (४) **अहंकार-मार्ग**—'अतः सालोक्य मुक्ति। (५) **अन्तःकरणमार्ग**—महामुक्ति।

'अन्तःकरण मारग जीव अनुसरै तौ महामुक्ति (भोगवै) आत्मा परमात्मा भवति। जोगेस्वर एकं भवति। परमशून्य भावे स्थिति। पारब्रह्म भावे लीनां।[१]

—०—

१. महादेव गोरख पुष्टि

श्रीविद्यान्तर्गतम्

श्रीचक्रनिरूपणम्

'ज्ञान'-'सपर्या'-खण्डात्मकम्।

सविमर्श-'प्रह्लाद'-हिन्दी-व्याख्या-सहितम्।

लेखक: सम्पादकश्च—**गोस्वामी प्रह्लाद गिरि 'वेदान्तकेशरी'**

'**श्रीविद्या**' साधना का सर्वश्रेष्ठ साधन दश-चक्रात्मक '**श्रीचक्र**' है। प्रस्तुत ग्रन्थ में दश-चक्रात्मक यन्त्रराज 'श्रीचक्र' का निरूपण किया गया है। श्रीदक्षिणामूर्त्ति शिव ही गुरु हैं; श्रीमहाषोडशीमन्त्र ही मन्त्रराज है तथा श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी ही परदेवता है। श्रीदक्षिणामूर्त्ति गुरु परम्परा में 'भौतिक, दैविक तथा आध्यात्मिक' तीन प्रकार की साधना की जाती हैं। भौतिक सम्पदा का अधिकारी 'शिष्य' है। दैविक सम्पदा का अधिकारी 'आचार्य' है तथा आध्यात्मिक सम्पदा का अधिकारी 'गुरु' है। शिष्य के लिए अनुरोधात्मक '**शिष्यक्रम**', आचार्य के लिए उपदेशात्मक '**आचार्यक्रम**' तथा गुरु के लिए आदेशात्मक 'गुरुक्रम' है। साधक इन तीन क्रमों से 'पूर्णपीठ' पर आरूढ़ होकर, पूर्णपीठेश्वरी भोगरूपा सच्चिदानन्दमयी इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मिका पूर्णा शक्ति के विमर्शात्मक वृत्तिरूपता को प्राप्त कर, पूर्णपीठस्वरूप मोक्षरूपी सच्चिदानन्दस्वरूप पूर्ण शिव के प्रकाशात्मक परब्रह्मस्वरूप को प्राप्त कर लेता है। यही 'श्रीविद्या' है। इसकी उपासना 'सोलह आवरण, पाँच कल्प तथा उपसंहार' के माध्यम से की जाती है जो कि अत्यन्त सरल है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में दो खण्ड हैं—१. ज्ञानखण्ड तथा २. सपर्याखण्ड।'**ज्ञानखण्ड**' में 'श्रीविद्या' के पारम्परिक अत्यन्त गूढ़ रहस्यों का निरूपण सरल भाषा में किया गया है; जबकि '**सपर्याखण्ड**' के अन्तर्गत अपने आप दीक्षित होने की विधि, पूजाविधि तथा वन्दना का निरूपण हुआ है। यह एक सम्पूर्ण पद्धति है। ग्रन्थ का मूल संस्कृत तथा अनुवाद हिन्दी भाषा में निरूपित है। यह संस्करण 'पराशक्ति श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी की श्रीमहाषोडशी परम्परा' का अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थरत्न है। **मूल्य : रु. ४५०.००**

ISBN : 978-81-218-0271-7 Price : Rs. 175.00